प्राकृतिक सौन्दर्य्य



लेखक—

ठाकुर कल्याणसिंह शेखावत बी. ए.



प्रकाशक—

हिन्दी पुस्तक एजेन्सी

१२६, हरिसन रोड,

कलकत्ता।



प्रथम बार] दीपावली सं० १९८२ [मूल्य २)

प्रकाशक—
वैजनाथ केडिया
प्रोप्राइटर हिन्दी-पुस्तक-एजेन्सी,
१२६, हरिसन रोड,
कलकत्ता।



मुद्रक—
गंगाप्रसाद भोतीका
एम०ए०, बी० एल०, काव्यतीर्थ,
वणिक् प्रेस
१, सरकार लेन,
कलकत्ता

निवेदन ।

हिन्दी-पुस्तक एजेन्सी-मालाके प्रेमी पाठक अवश्य ही मालाके ५० वें रत्नके लिये उत्सुकतापूर्वक प्रतीक्षा कर रहे होंगे, क्योंकि इस रत्नको पाठकोंके समक्ष उपस्थित करनेमें अवश्य ही कुछ विशेष विलम्ब हो गया है । परन्तु यदि कविका यह कथन सत्य है कि 'वदेर आयद, दुरुस्त आयद' और यदि हमारे प्रेमी पाठकों को यह रुचिकर प्रतीत हुई तो हमें इस विलम्बके लिये कुछ क्षोभ न होकर हर्ष ही होगा, क्योंकि ५० वा रत्न पाठकोंके सामने रखनेके वादसे आजतक निरन्तर परिश्रमके बाद ही आज भी इसको इस रूपमें उनके समक्ष रखनेमें समर्थ हुए हैं । इसका नाम है 'प्राकृतिक सौन्दर्य ।' यह अंग्रेजी भाषाके प्रसिद्ध विद्वान तत्ववेत्ता सर जान लवकके Beauties of Nature नामकी पुस्तकका हिन्दी अनुवाद है ।

संसारकी अन्यान्य वस्तुओंके निरीक्षण परीक्षण और अध्ययनके साथ-साथ प्रकृतिके सूक्ष्म मर्मोंके अध्ययनके प्रेमी भी अनेक हो गये है । जिस प्रकार डारविन संसारका परिभ्रमण कर प्राकृतिक सौन्दर्य्य का अद्भुत वर्णन कर अपनी निरीक्षण-शक्ति और गम्भीर पाण्डित्यका परिचय दे अपना नाम अमर कर गया है, उसी प्रकार प्रकृतिके सौन्दर्य्यके वर्णनद्वारा आज भी रवीन्द्रनाथ अक्षय कीर्ति कमा रहे है । प्रकृतिके पञ्चतत्त्वोंके अध्ययनसे ही आज पाश्चात्य

वैज्ञानिकोंने ससारको अपने आविष्कारोंसे चकित कर दिया है। प्रकृति और पुरुषसे ही ससारकी सृष्टि हुई है। प्रकृतिका ज्ञान हो जानेपर पुरुषका ज्ञान भी हुए बिना रह नही सकता। कृत्रिम शोभाको देखकर हम कभी-कभी बहुत प्रसन्न हो जाते हैं, फिर प्राकृतिक सौन्दर्य्यकी तो बात ही क्या ? गगनकी नीलिमा, सूर्य्यास्तकी लालिमा, हिमाच्छादित पर्वतो की स्वेतता, वृक्षो और पौधों की हरियाली, पुष्पो के लुभावने रङ्ग, हीरे-मोती, लाल-जवाहिर, सूर्य-चान्द, तारे-बिजलीकी चमक, जुगनू जैसे कीडों की करामात, पहाड़ों से झर-झर झरते हुए झरने, चिड़ियों की चहचहाहट आदिकी सुन्दरता प्रकृतिके उपासकों को कितनी सुखद होती है—इन्हीं बातों का वर्णन इस पुस्तकमें किया गया है।

प्राणिशास्त्र, उद्भिजशास्त्र, वनस्पतिशास्त्र, जल, थल, पर्वत, समुद्र, वायुमण्डल एव आकाशमण्डल आदिके सम्बन्धमें अभी-तक हमें पूरी जानकारी नही है। यूरोप आज प्राणपणसे प्रकृतिके इन भिन्न-भिन्न तत्वोंकी पूर्ण जानकारी प्राप्त करनेमें लीन है। अंग्रेजी साहित्यमें इन विषयोंपर अनेक ग्रन्थ-रत्न प्रकाशित भी हो चुके है, परन्तु हिन्दी इसमें विषयकी पुस्तकोंका सर्वथा अभाव है। इसी विचारसे यह पुस्तक निकाली गयी है। इसमें कई सुन्दर सादे और रङ्गीन चित्र भी दिये हैं। आशा है हमारे प्रेमी पाठक इसे अपनानेकी कृपा करेंगे।

—प्रकाशक।

वक्तव्य



सर जान लबक (Sir John Lubbock) जो पीछेसे उपाधि प्राप्त करके लार्ड आवरी (Lord Avebury) कहलाये थे, इङ्गलैण्डमें एक असाधारण वैज्ञानिक विद्वान् हो गये हैं। इन्होंने अपने निरीक्षण और अनन्त परिश्रम द्वारा अंग्रेजी विज्ञान (विशेषत प्राणी और उद्भिद् विज्ञान) तथा साहित्यकी श्लाघनीय सेवा की थी। इसी कारण अंग्रेजी सरकारने उन्हें लार्डकी पदवीसे विभूषित किया था। इन्होंने जन्तुओं और उद्भिजोंके विषयमें बहुत सी पुस्तकें लिखी हैं। नीति, सदाचार और अध्यात्मपर भी इन्होंने कतिपय ग्रन्थोंकी रचना की है। ये बड़े ही ज्ञानी, उत्साही और अन्तर्दृष्टा पुरुष थे और इसीलिए उनके अधिकाश ग्रन्थ मर्मस्पर्शी और विद्वत्तापूर्ण हैं। उनकी दो-चार पुस्तकोंके हिन्दीमें अनुवाद हो भी चुके हैं।

उपर्युक्त महोदयकी 'The Beauties of Nature' नामक एक महत्वपूर्ण पुस्तक है, जिसके अद्यावधि कई सस्करण निकल चुके हैं। अंग्रेजी जनताने इसका बडा मान किया है और इसी ... यह हजारोंकी सख्यामें छप चुकी है। इस पुस्तकमें लार्ड ... नके सौन्दर्य और उसकी अद्भुतताओंका दिग्दर्शन ... सीके मुख्याधारपर मैंने इस पुस्तकको लिखा ... इसका एक प्रकारसे छायानुवाद अथवा आधा-



श्रीयुक्त ठाकुर कल्याणसिंहजी शेखावत बी ए

वक्तव्य



सर जान लबक (Sir John Lubbock) जो पीछेसे उपाधि प्राप्त करके लार्ड आवरी (Lord Avebury) कहलाये थे, इङ्गलैण्डमें एक असाधारण वैज्ञानिक विद्वान् हो गये हैं। इन्होंने अपने निरीक्षण और अनन्त परिश्रम द्वारा अंग्रेजी विज्ञान (विशेषत प्राणी और उद्भिद् विज्ञान) तथा साहित्यकी श्लाघनीय सेवा की थी। इसी कारण अंग्रेजी सरकारने उन्हें लार्डकी पदवीसे विभूषित किया था। इन्होंने जन्तुओं और उद्भिजोंके विषयमें बहुत सी पुस्तकें लिखी हैं। नीति, सदाचार और अध्यात्मपर भी इन्होंने कतिपय ग्रन्थोंकी रचना की है। ये बड़े ही ज्ञानी, उत्साही और अन्तर्द्रष्टा पुरुष थे और इसीलिए उनके अधिकाश ग्रन्थ मर्मस्पर्शी और विद्वत्तापूर्ण हैं। उनकी दो-चार पुस्तकोंके हिन्दीमें अनुवाद हो भी चुके हैं।

उपर्युक्त महोदयकी 'The Beauties of Nature' नामक एक महत्वपूर्ण पुस्तक है, जिसके अद्यावधि कई सस्करण निकल चुके हैं। अंग्रेजी जनताने इसका बडा मान किया है और इसी लिये यह हजारोंकी सख्यामें छप चुकी है। इस पुस्तकमें लार्ड आवरीने प्रकृतिके सौन्दर्य और उसकी अद्भुतताओंका दिग्दर्शन कराया है। इसीके मुख्याधारपर मैंने इस पुस्तकको लिखा है। मैंने मूल पुस्तकका एक प्रकारसे छायानुवाद अथवा आधा

रानुवाद किया है। निरे अनुवादसे कदापि काम नहीं चलता, क्योंकि पुस्तकके पठनसे पाठक जान जायंगे कि यदि मूलका निरा अनुवाद ही कर दिया जाता तो वह एक जटिल, कठिन, नीरस तथा शुष्क पाठ हो जाता। हिन्दी पाठकोंके लिये इसको यथासाध्य एतद्देशीय, सुगम और उपयोगी बनानेके लिये मैंने इसके लिखनेमें खासी स्वतन्त्रतासे काम लिया है। मूल ग्रन्थ-की कई बातोंको नितान्त छोडना पडा, तो कई अन्य पुस्तकों तथा निजके अनुभवोंको इसमें जोडना पडा है। ऐसे अनेकानेक परिवर्त्तन तथा परिवर्द्धन मुझे पद पदपर करने पडे हैं। परन्तु मुझे आशा है कि इस कार्य्यसे मूल ग्रन्थकी उपयोगिता बढ़ी ही है न कि घटी है।

पुस्तकके एक-एक अध्यायमें एक एक प्रकारकी प्राकृतिक रचनाकी सुन्दरताओं और विचित्रताओंका सिंहावलोकन किया गया है। इसलिये इसके भिन्न भिन्न अध्याय भिन्न-भिन्न वैज्ञानिक शास्त्रोंसे सम्बद्ध हैं। दूसरे और तीसरे अध्याय प्राणि शास्त्रसे, चौथे और पाचवे उद्भिज्ज-शास्त्रसे, छठेसे नवेंतक भूगोल, भूगर्भ, भौतिक तथा रसायन-शास्त्रोंसे, दसवां रसायन तथा भौतिक शास्त्रसे और ग्यारहवा खगोल (ज्योतिष) शास्त्रसे सम्बन्ध रखता है। दसवा अध्याय मेरा स्वतन्त्र परिवर्द्धन है, यह मूल पुस्तकमें नहीं है।

इस पुस्तकका अध्ययन आरम्भ करनेके पूर्व इस बातका स्मरण रखना चाहिये कि लार्ड आवरीका और मेरा उद्देश्य

प्रकृतिकी नाना प्रकारकी सृष्टियोंकी सुन्दरताओं तथा विचित्रताओंका दर्शन कराना है, न कि उनका नियमित ढङ्ग और क्रमसे वैज्ञानिक ज्ञान कराना। इस हेतुसे तो पाठकोंको वे शास्त्र स्वयं पढ़ने होंगे। उनका सम्पूर्ण तथा क्रमागत ज्ञान और वर्णन शास्त्रका विषय है। निस्सन्देह इस पुस्तकके अध्ययनसे उन शास्त्रोंका भी खण्डांशमें ज्ञान होगा। मेरा लक्ष्य बहुतसे भाँति-भाँतिके स्थावर और जङ्गम, जड़ और चैतन्यके सौन्दर्यों और उनकी विचित्रताओंका दिग्दर्शन कराना ही है।

खाचरियावास
चैत्र कृष्ण १०
विक्रम संवत् १९७८

मातृभाषाका एक तुच्छ सेवक—
ठाकुर कल्याणसिंह शेखावत
बी० ए०



विषय-सूची



ॐ

प्राकृतिक सौन्दर्य



पहला अध्याय

प्राक्कथन

यदि हमें दस-पांच बीघा भूमि मिल जाय तो हम समझते हैं हमें कुछ लाभ हुआ, परन्तु परमात्माने जो हमें समस्त भूतल दे रक्खा है, उसको हम लाभ नहीं समझते। यदि हमें थोड़ासा सुवर्ण या रजत मिल जाय तो उसको हम एक लाभ-दायक प्राप्ति समझते हैं, परन्तु संसारकी सोने-चांदीकी अगणित, अतुल और अमूल्य खानोंको हम अपना धन नहीं मानते। यदि हमें कोई मकान मिल जाय, जिसमें अच्छी सजधज हो, जिसकी छतपर सुन्दर बेल बूटे अङ्कित हों, तो उसको हम कुछ कम लाभ नहीं मानेंगे; पर ईश्वरने हमारे लिये एक ऐसा विशाल और विस्तृत भवन बनाया है जिसका अग्नि वर्षा और भूकम्पसे कदापि विनाश नहीं हो सकता, जिसकी छत नीली है, और जिसमें दिनमें सूर्य्य चमकता और रात्रिमें चन्द्रमा और अगणित तारे जगमगाते हैं; परन्तु उसको हम अपना निजी घर नहीं

मानते। हम जो श्वास लेते हैं उसके लिए वायु कहांसे आती है? हम जिस प्रकाशके द्वारा जीवित रहते और देखते तथा काम करते हैं, वह प्रकाश कहांसे आता है! जिन वस्तुओंको हम खाते हैं, वे कहां उत्पन्न होती हैं? उसी परमात्माने वायु, प्रकाश, जल और वनस्पतिको बनाया है जो हमारे काममें आते हैं। उसकी यह समस्त और नाना प्रकारकी सृष्टि है। हम स्वय उस सृष्टिके अङ्ग हैं, परन्तु हम इतने स्वार्थी हो जाते हैं कि उस सृष्टिसे अपनेको पृथक् समझकर अपनी छोटीसी सृष्टि रचनेका दावा करने लगते हैं। हम उसीको अपना समझते हैं जो केवल हमारा ही है और जिसपर दूसरेका अधिकार नहीं है। क्या यह भ्रान्ति नहीं है? क्या यह माया नहीं है?

जिस संसारमें हम रहते हैं वह अत्यन्त सौन्दर्य्यपूर्ण रचना है। हमारा स्वकीय जीवन ही एक महान् आश्चर्य्य है। परन्तु हममेंसे ऐसे बहुत थोडे हैं जो अपने चारों ओरकी प्रकृतिकी सुन्दरताको भलीभांति देखते और समझते हैं। दीर्घसे दीर्घ आयुवाला—प्रतिदिन चलनेवाला यात्री भी संसारका पूरा भ्रमण नहीं कर सकता। दूरकी बात जाने दीजिये, हमारे नेत्रोंके सामने जो कुछ है, उसको भी तो हम पूर्णतया नहीं देखते और जानते।

जो कुछ हम देखते हैं वह हमारे स्वार्थपर अवलम्बित है। जो हमें अपने लिये देखना है उसीको हम देखते हैं, उस वस्तुके लिये हम उसे नहीं देखते। जब हम नभकी ओर देखते हैं तो बहुधा इसीलिये देखते हैं कि आंधी, बादल या वर्षा है या नहीं।

एक ही क्षेत्रमें कृषक अपनी खेतीको देखेगा, भूगर्भशास्त्र-वेत्ता वहांकी मिट्टीको देखेगा, वनस्पति शास्त्रका पंडित वहाके पुष्पोंको देखेगा, चित्रकार वहाके दृश्योंको देखेगा, शिकारी वहाके आखेटके जन्तुओंको देखेगा। यह सब स्वार्थपूर्ण और नाना प्रकारका देखना हुआ। जो हमारा स्वार्थ है, ठीक उसी दृष्टिकोणसे हमने क्षेत्रको देखा। यह प्रकृतिके सौन्दर्य्यको देखना नहीं कहा जा सकता। इससे स्पष्ट ही है कि यदि हम किसी वस्तुपर दृष्टि डाल रहे हैं तो उसका यह अर्थ नहीं है कि हम उसके वास्तविक स्वरूपको देख रहे हैं।

स्वर्गमें कितने अच्छे-अच्छे दृश्य भांति भांतिके धर्मशास्त्रोंमें बताये गये हैं। हूरें, अप्सरायें, अगूरोंकी लताएं, अमृतफल, अनेक स्वादिष्ट और मीठे पदार्थ वहांपर दिखाये जाते हैं, मानों सुन्दरताके अतिरिक्त वहा किसी प्रकारका भद्दापन है ही नहीं। परन्तु इस ससारमें भी सुन्दरताकी कौनसी न्यूनता है—मिष्ठ फलोंकी कौनसी कमी है। कमी तो केवल निस्स्वार्थताकी है, और उसके बिना स्वर्ग भी नहीं मिल सकता। यदि अहकारका त्याग हो जाय तो यहीं स्वर्ग है, नहीं तो कदाचित् कही नहीं है। जब हमारी आत्मा परमात्मामें मिल गई तब सौन्दर्य्य ही सौन्दर्य और आनन्द ही आनन्द है।

कई देशी तथा विदेशीय पंडितोंका मत है कि सौन्दर्यके देखनेसे हृदय खिन्न हो जाता है, परन्तु यह सिद्धान्त उदासीनता और खिन्नताहीके कारण माना गया है। यथार्थमें बात यह है

कि प्राकृतिक सौन्दर्यके दृश्यसे हमारे भावोंमें उत्तेजना आती है—हमारे क्षोभों और संवेदनाओंमें चंचलता उत्पन्न होती है। इसलिये सुन्दरताके दर्शनसे आनन्द भी बढ़ जाता है और खेद भी बढ़ जाता है, अर्थात् जब मन पहलेसे ही खिन्न है तो सौन्दर्य दर्शनसे उसकी खिन्नता बढ़ती ही जाती है, और जब वह पहलेहीसे आनन्दित है तब उसका आनन्द अधिकाधिक होता जाता है, प्रकृति, कला और गायनसे हमें सुख मिलता है। इसके कहनेका स्पष्ट अर्थ यह है कि पर्देके उठ जानेसे हमारा समस्त अस्तित्व तेजमें संचलित हो जाता है, कुछ ऐसी बात हममें प्रवेश कर जाती है कि जिसके द्वारा जो दुःखी होता है वह अधिकतर दुःखी और जो सुखी होता है वह अधिकतर सुखी हो जाता है। जब श्रावण मासमें घटाएं उमड़ती हैं, मेघ-मण्डल मंडराता है, बिजली चमकती है, तो हम अधिकांश लोगोंको वह दृश्य कितना हर्षदायक जान पड़ता है, परन्तु कुछ लोग ऐसे भी हैं जिनके लिये व्यवस्था उलटपलट हो जाती है। मेरे एक मित्र हैं। उनको जब बादलोंकी गरज और विद्युत्की दमक दिखाई देती है, तब वे अत्यन्त घबरा जाते, नेत्र मूंदकर कानोंमें अङ्गुलियां डाल कमरेमें घुस जाते और किवाड़ बन्द करके सो जाते हैं। ऐसा स्वभाव एक प्रकारका रोग माना गया है, जिसको साइकिक मेनिया कहते हैं। स्वयं मुझको अनुभव है कि कुछ वर्ष पहले जब मैं दो-चार मासके लिये किसी कारणसे खिन्नमन रहता था, उस समय यदि माड राग या सोहनी और

पार्जकी गजलें सुनता तो रोने लग जाता था। परन्तु अधिकांश मनुष्योंके लिये तो प्राकृतिक दृश्य सुखकर ही होते हैं बल्कि प्राकृतिक सौन्दर्य्यके दर्शनोंसे हमारी आत्माएं अहंकारके पिंजडे को तोडकर बाहर निकलने लगती हैं। एक अंग्रेज कविने जो इस प्रकार लिखा है वह कितना सत्य है —"जिस हृदयने प्रकृति-से प्रेम किया, उसको कभी धोखा नहीं हुआ। प्रकृतिका ऐसा धर्म्म है कि वह हमारे समस्त जीवनमें सुखको बढ़ाती रहती है, क्योंकि वह हमारी अन्तरात्मामें, शान्ति और सौन्दर्य्यके द्वारा कुछ ऐसी श्रेष्ठताका सञ्चार भर देती है कि फिर निन्दकोंके कटुवचन, अन्यायोंके पक्षपातपूर्ण निर्धार और स्वार्थी पुरुषोंकी फटकारें और दैनिक जीवनकी गडवड हमपर कदापि प्रभाव नहीं डाल सकतीं—हमारी सुखी आत्माकी शान्तिमें बाधा नहीं पहुंचा सकतीं।"

किंगस्ले नामक एक अंग्रेज कवि लिखते हैं—"मैं अपने वास स्थानके चहुओरकी अद्भुत वस्तुओंसे बडा आनन्दित रहता था। मैं अपनेको अकेला कदापि नहीं समझता था। मैं यथार्थमें एकाकी नहीं था। जब वहां अन्य पुरुष नहीं होते थे, तब वहांकी मधु-मक्खियां, पुष्प और कंकर पत्थर मेरे साथी बन जाते थे, घूमते फिरते यही सब मेरे लिए पुस्तकोंका काम देते थे। यही मेरे साथी और यही गुरुजन बन जाते थे।" यह किस विद्वान्को ज्ञात नहीं है कि कण्वऋषिके आश्रममें शकुन्तला वनदेवी बनी हुई हरिणोंके बच्चोंको अपने प्यारे सखा माना करती थी।

जो प्रकृतिसे प्रेम करते हैं वे सुस्त और उदास नहीं रहते। निस्सन्देह उनको कष्ट और लालसाएं सताती हैं, परन्तु बहुत कम। वे सृष्टिके सौन्दर्यद्वारा अपने दुःखोंको तनिक-सी देरमें भूल जाते हैं। प्रकृतिका प्रेम हमें उन क्षुद्र और नीच सोच-विचारोंसे, जो हमारे मस्तिष्ककी शान्तिको भङ्ग करते रहते हैं, सुरक्षित रखनेमें बड़ी सहायता देता है। यह प्रेम बढ़ता-बढ़ता हमें पूर्ण शान्त और सुखी बना देता है। वेदान्ती और रसायन-शास्त्रीमें प्रकार और प्रणालीका अन्तर है, वरन् दोनोंका गवेषण-विषय एक और दोनोंकी अन्तिम प्राप्ति एक है। जो कुछ एक तपस्वी साधुने पाया वही जगदीशचन्द्र बोसने पाया। उसने सृष्टिके पार्वत्य स्थानमें आधेयकी प्राप्ति की और इन्होंने सायन्सकी लेबोरेटरीमें अपने अभीष्टको प्राप्त किया।

अपने यहाके तथा यूरोपके पुराणोंमें हम पढते हैं कि पुरा-कालके कई महापुरुष वनदेवियों, पर्वतदेवताओं, पक्षिदेवों इत्यादि अनेक प्राकृतिक जीवोंके साथ अभिन्न मित्रता और प्रेम करते थे और उनसे वरदान ले लेकर कृतार्थ होते थे। उन्हीं देवी-देवताओंके वरसे उन महापुरुषोंने महान् कार्य्य किये और मृत्यु-तकको जीत लिया। अस्तु, वह समय तो गया, परन्तु उससे भी अच्छा समय अब फिर आ गया और आ रहा है। थोड़ेसे लोगोंके लिये ही नहीं, अपितु बहुतोंके लिये प्रकृतिदेवी हाथ पसारे एवं प्रेमफल लिये खडी है। जो उसके उपासक बनकर

उससे प्रेम करते हैं उनसे वह भी प्रेम करती है, उनको संसारके अत्यन्त बहुमूल्य पुरस्कार देनेके लिये तत्पर रहती है, परन्तु उसके पास पारितोषिक देनेके लिये रुपये, मोहरें, गाड़ी घोड़े, पद और पदक नहीं हैं। वह उज्ज्वल और आनन्दमय विचार, शान्ति और धैर्य्य, और सत्यज्ञान देकर हमारी आत्माको उसकी वास्तविकताका सिंहावलोकन करा देती है। प्राणिविद्या और वनस्पतिशास्त्रका आचार्य्य निस्सन्देह कितना सुखी है! उसके लिए ऋतुएं पुराने मित्रोंकी नाई आती रहती हैं, पक्षी उसके लिये गान करते हैं, जब वह चलता है तब पुष्प उसकी ओर निहारते हैं, जब एक वर्ष व्यतीत हो जाता है तो वह व्यतीत ऋतुओंको सुखसे स्मरण करता है। यद्यपि आयुके व्यतीत वर्ष तो नहीं लौट सकते परन्तु जो प्रकृतिका प्रेमी है, जो उसका वास्तवमें उपासक है वह सदैव युवा रहता है, चाहे उसके सारे बाल सफेद क्यों न हो जाय।

परन्तु हमें यह देखना है कि प्रकृतिके प्रेमका अर्थ क्या है। इसका यह तात्पर्य नहीं है कि सुगन्धमय पुष्पोंको वृक्षों और पौदोंसे तोड़कर हम उन्हें अपनी मेजके गुलदस्ते (फूलदान) में लाकर रख लें। यह तो एक स्वार्थ कामना हो गई। उनको तोड़कर लाना तो मानों दूसरे दिन उनके मुरझानेपर उनको कूड़ेमें फेंकना है। क्या यह प्रकृतिका प्रेम कहला सकता है? कदापि नहीं, यह तो एक दुष्ट रुचि है जो पुष्पोंके लिये घातक है, क्योंकि सौन्दर्य्यका विनाश करना एक भारी विनाश है। वे जहां लगे

ग्रहोंमें वे कितनी भक्ति रखते थे! वल्कि यों कहना ठीक होगा कि प्रकृतिके सौन्दर्य और आश्चर्यजनक वस्तुओंकी पूजा करते २ ही वे मूर्त्ति-पूजा करने लगे थे। परन्तु अब विज्ञानका समय है। विज्ञानने उन सबके अस्तित्वको दिखलाकर हमारा वह भय तो अवश्यमेव निकलवा दिया जो पहले उनके देखनेसे हमारे मनमें उत्पन्न होता था। अब वनदेवी, या जलदेव अथवा सूर्य्य और चन्द्रमा, राहु और केतुका हममेंसे अधिकांशको भय नहीं रहा। परन्तु विज्ञान-चक्षुने उनकी सुन्दरता तथा अद्भुतताको हमें और भी उज्ज्वल करके दिखा दिया है। सायन्सने निष्काम प्राकृतिक उपासनामें कोई परिवर्त्तन नहीं डाला है।

मानववृद्धिके वढ़नेमें प्राकृतिक शोभाको एक और धक्का पहुंचा है। जैसे-जैसे मनुष्य-संख्या बढती जा रही है, उनके जीवनकी सामग्रियां प्राप्त करनेके लिये जङ्गलके जङ्गल काटे जा रहे हैं और वे वासस्थान तथा खेतीके, मैदानोंमें बदले जा रहे हैं। परन्तु इस कार्य्यसे भी कहीं कहीं प्राकृतिक सौन्दर्य्यका नाश नहीं हुआ है। उदाहरणार्थ, जहां पहले एक सुन्दर वृक्षोंका क्षेत्र था, वहां अब अनाजका सुन्दर क्षेत्र हो गया है। वह भी उतना-ही प्यारा प्रतीत होता है। जबतक हम पृथ्वी और प्रकृतिको प्यारसे काममें लाते हैं, वे हमें उपहार और पुरस्कार दिये विना नहीं रहतीं। ऐसा भले ही हो जाय कि एक प्रकारके सौन्दर्य्यके स्थानमें दूसरे प्रकारका सौन्दर्य्य उपस्थित कर दिया जाय, जैसे जङ्गलके स्थानमें खेतीका मैदान।

हमारी भारत-भूमिमें जितने प्रकारकी अद्भुत और सुन्दर वस्तुएं हैं उतनी कई देशोंमें मिलाकर भी नहीं हैं। एक जगह कड़ी धूप, तो एक जगह हिम। मध्यभारत, दक्षिण और राजपूतानाकी गर्मी और काश्मीर, देहरादून और दार्जिलिङ्गकी कड़ाकेकी सर्दी! कितनी विभिन्नता! कहा चीरापूंजीकी अतिवृष्टि और कहा बीकानेर और जैसलमेरकी अनावृष्टि! कहा मध्यभारतका नीला आकाश तो कहा हिमालयका सदा मेघाच्छन्न नभोमण्डल! कहा गंगा-यमुनाके दुआवकी अति उर्वरा भूमि और कहा मरुस्थलकी कम उपजाऊ धरती! कहा जमशेदपुरकी लोहेकी खानें और कहा गोलकुण्डेकी हीरेकी खान! सङ्गमरमर निकलता है तो सगमूसाकी भी कमी नहीं है। जैसे गधक, पारद और अभ्रककी खानें हैं वैसे ही पोटाश और सोडियमके ऊसर भी कोसोंतक विस्तृत हैं। यदि पजाबमें एक स्थानमें खानसे नमक निकलता है तो राजपुतानेमें साभरकी झीलमें भी नमक बनता है। छोटे छोटे नदी-नाले हैं तो महाकाय गगा, गोमती और सिन्धु भी हैं। एक जङ्गलमें बाघ, रीछ, और तेंदुए हैं तो एक जङ्गलमें केवल लोमडी, गीदड और खरगोश ही हैं। रेगिस्तान हैं तो झीलें भी हैं। यदि काश्मीर जैसा पुष्पों और फलोंसे लदा हुआ प्रान्त है तो बीसों कोसोंतक फैला हुआ सपाट मैदान भी है, जहा घास का तिनकातक नहीं मिलता। विशाल नगर बसे हुए हैं तो पास ही छोटी छोटी बस्तिया भी हैं। ऐसी-ऐसी अनेकानेक अद्भुत और सुन्दर वस्तुएं भारतभूमिमें हैं जो वर्णनातीत हैं।

परन्तु इतना सब कुछ होते हुए भी हम देखते कितना कम हैं। मेरे एक मित्र इंगलैण्ड सैर करनेको गये। जब वे रेलगाड़ीमें बैठे लण्डनको जा रहे थे तब अन्य यात्रियोंमेंसे एक व्यक्ति उनसे बातचीत करने लगा। प्रसङ्गत. उसने मेरे मित्रसे पूछा कि आप इंगलैण्डमें किस प्रयोजनसे आये हैं। उन्होंने उत्तर दिया, "केवल सैर करनेके लिये।" उस व्यक्तिने पुन. पूछा कि "क्या आपने काश्मीर भी देखा है?" मेरे मित्रने उत्तर दिया, "काश्मीर तो मैंने नहीं देखा।" वह अंग्रेज क्षुब्ध और चकित होकर कहने लगा—"वाह! अच्छी सैर ठहरी! जिसके घरहीमें काश्मीर-जैसा स्वर्गीय स्थान है वह उसको न देखकर इंगलैण्ड देखनेके लिये इतना कष्ट क्यों उठाता है?" मेरे मित्र इस मार्मिक बातको सुन-कर झेंप गये और कुछ उत्तर न दे सके।

हम खेतोंमें जाते हैं—जङ्गलोंमें जाते हैं तो क्या देखते हैं? प्रकृतिकी शोभा नहीं देखते, किन्तु यह देखते हैं कि "फसल कैसी है, कितने मन बीघेका अनाज उत्पन्न होगा, इन पांच वृक्षोंके काटनेमें कितना ईंधन हो जायगा, उसके बेचनेमें कितने टके मिल जायगे, लकड़ीवाला इस ईंधनको किस भावपर ले लेगा, यहाकी घास हम किस मूल्यपर लेसकते हैं, इन पुष्पोंकी मालाएं बाजारमें कितने दाम दिलवा देंगी? यहांपर मधुमक्खि-योंके छत्ते बहुत हैं। इनको तोड़कर शहद निकाल लें तो हमें ५०) रु० मिल जायँगे—इत्यादि।" ये मनोभाव हम कितनोंके होते हैं! क्या इन्हीं भावोंसे हम प्रकृतिके सौन्दर्यको निहारेंगे!!!

और भी मजेकी बात सुनिये। कई नगरोंमें रहनेवाले लोग अवकाश मिलनेपर सैर करनेके निमित्त बाहरके गांवों, खेतों और जङ्गलोंमें जाते हैं। उनमें जो प्रकृतिके सच्चे उपासक हैं वे पुष्पों और पौदोंको देखते, झरनों और सरोवरोंके पास बैठकर उनकी शोभा निहारते, कङ्कड़ों और पत्थरोंकी चमक-दमकसे प्रसन्न होते और कोयल, बुलबुल और तीतरकी बोलियों-पर मुग्ध होते हैं। परन्तु अधिकाश क्या करते हैं? पौदोंके लगे हुये सुन्दर पुष्पोंको टहनियों समेत कुटिल प्रहारसे तोड़-तोड़कर झोलियां भरते और नाना रङ्गके पक्षियोंको बन्दूकोंसे मार मार-कर ढेर लगा देते हैं। भरतपुरकी विशाल झीलके पास प्रति वर्ष सहस्रों पक्षी इसी प्रकार मारे जाते हैं और मज़ा यह है कि उस जीवहत्याके कार्य्यको वे बड़ा भारी विनोद—खेल—मनबह-लाव समझते हैं!! प्रभो! उनकी बुद्धिमें परिवर्त्तन कर। एक सुन्दर खरगोशको खेलता हुआ देखना अच्छा है या उसको गोलीसे नष्ट कर देना अच्छा है? तनिक सोचनेकी बात है। भगवानके लिये कुछ तो सोचा जाय।

हम गांवोंमें खेतिहरोंको खेती करते देखते हैं तो उनको तुच्छ समझते हैं। कितनी भूलकी बात है। उनका जीवन हमसे कितना पवित्रतर है। वे प्रकृतिके हमसे कितने अधिकतर उपासक हैं। खेतीका काम कितना उच्च और पवित्र है। क्या हीरे-पन्नोंमें हम नागरिकोंके प्राण बच जायगे? प्राण तो खेती करनेवालोंके उत्पन्न किये हुये अन्नहीसे बचेंगे। यथार्थमें

देखा जाय तो कोई भी ऐसा उद्योग-धन्धा, या पेशा नहीं है जो बुरा हो। जो कुछ हम धन्धा करते हैं, उसपर उस धन्धेका लघुत्व या महत्व अवलम्बित नहीं है, किन्तु जिस भावसे उसे हम करते हैं,उस भावपर वह अवलम्बित है। झाडू देनेका कार्य्य भी श्रद्धा, आदर और शान्त भावसे किया जा सकता है। इस भावसे कार्य करनेमें हमें एक बड़ा भारी सन्तोष और है। पहाड़पर होकर ठीक रास्तेसे जो कोई जाता है, वही उस मार्गको दूसरोंके लिये और भी स्पष्ट और सरल बनाता है। मार्गपर जब बहुतसे लोग चलते हैं, तभी वह साफ सुथरा होता है। इसलिये यदि एक शिक्षित मनुष्य घास काटनेका धन्धा करे तो वह दूसरोंके लिये उस धन्धेको कितना आसान और सीधा बनाता है। अस्तु, हम विषयसे दूर जाते हैं। इसलिये इसको यहीं छोड़ते हैं।

बाहरके क्षेत्र और जंगल कृषकोंके ही लिये अच्छे नहीं होते, वे नागरिकोंके लिये और भी अच्छे होते हैं। एक भारी लाभ तो यह है कि उनको परिवर्त्तन सुख कितना मिलता है। वहां नित्य परिवर्त्तन होता है। आज इस पौदेमें कली लगी। कल उसमें पुष्प निकलेगा। पांच दिनके बाद उसमें फल लग जायगा। प्रत्येक सप्ताहमें पुष्प, पत्ती, फल, पक्षी और कीड़े-मकोड़ोंमें भी हमें अन्तर दिखाई देता है। ये बात हमारे जीवनमें परिवर्त्तन करा देती हैं। इन दृश्योंसे हमारा मन और बुद्धि ताजी हो जाती हैं। इतना ही नहीं, इनसे हमारी आत्मा विस्तृत होकर

अन्तमें सर्वव्यापक हो जाती है। परिवर्त्तनसे सबको रुचि हो जाती है। कई लोग कहते हैं कि हमें परिवर्त्तनसे सुख नहीं होता, परन्तु उनका यह कहना भ्रमपूर्ण है। उनके अन्दर जो सुख होता है, उसको वे जानते ही नहीं। वे अपने आपको ही नहीं पहचानते।

कई लोग यात्रा करना पसन्द नहीं करते। वे कहते हैं कि हमें परिवर्तनकी आवश्यकता नहीं। हमें एक रस और एक सारताहीमें मजा मालूम देता है। एक ही स्थानपर रहनेमें हम कुतूहल, उद्विग्नता, निराशा इत्यादि विकारोंसे बचते हैं। परन्तु यह कहनेकी बात है—केवलभ्रान्ति है। या तो उनको अवकाश नहीं मिलता और वे लोमड़ीकी नाईं अंगूरोंको खट्टे बताते हैं या उनको अपना अन्तर्गत वृत्त मालूम नहीं है। ऐसा कहनेवाले जब कभी यात्राके लिये निकलें—प्रकृतिकी भांति भांतिकी शोभा देखें, तब उनसे कानमें पूछो—"बोलो भैया! कुछ मजा आया?" उस समय वे आनन्दसे उछल पड़ेंगे और कह उठेंगे —"बेशक। बेशक।"

पर्वतों, नदियों, सरोवरों, खानों, जङ्गलों, वृक्षों, पौदों, पुष्पों, पशु और पक्षियोंके विषयमें हम पुस्तकें तो पढ़ते हैं ही, परन्तु जब हम पर्य्यटन करते हैं तभी उनसे साक्षात् होता है। अध्ययन और साक्षात्में बहुत अन्तर पड़ जाता है। सबमें वही शक्ति सञ्चार कर रही है—वही आत्मा काम कर रही है जो हममें करती है। जब हम प्राकृतिक दृश्योंका ध्यानपूर्वक साक्षात्

करते हैं तब हमारी आत्माको परमात्माका साक्षात् अवश्यमेव होता है। यही कारण है कि हमारे यहांके ऋषि, मुनि, महात्मा पुरातन कालमें तथा अब भी जङ्गलों और पर्वतोंमें रहते हैं। कुशाग्रबुद्धियोंके लिये तो वनों और खेतोंमें रहना मानों अनुकूल प्रदेशमें रहना है।-जो सदैव ऐसे स्थानोंमें न जा सकें उनको भी कभी कभी जाना अत्यावश्यक है। मन्दिरों, विहारों, देवस्थानों आदिमें जैसे 'ठाकुरजी'के दर्शन करने जाना किसी पवित्र भावको प्राप्त करनेके लिये आवश्यक है, वैसे ही प्राकृतिक सौन्दर्य्यके स्थलोंमें भी एक उच्च भावको धारण करनेके निमित्त जाना परम आवश्यक है। पार्वत्य और सामुद्रिक स्थानोंमें यथावकाश जाना मन और शरीर दोनोंहीको ताजा करना है।

इसमें सन्देह नहीं कि बहुतसे लोगोंका ऐसा उत्तर नितान्त उचित और सत्य है कि सब पर्वत प्रकृतिके दुर्ग हैं परन्तु वे नगरोंसे बहुत दूर पड़ते हैं। नगरोंके आस पासके रहे सहे जङ्गल और क्षेत्र भी दिनदिन काटे जारहे हैं। और उनपर धूआँ बरसानेवाले कारखाने और मकान बनाये जा रहे हैं और प्राकृतिक दृश्य नष्ट किये जा रहे हैं। ऐसी दशामें हम क्योंकर बाहर जा सकते हैं। न सबको इतना अवकाश है और न इतनी शक्ति ही। जो इस प्रकार नितान्त अशक्त और बाध्य हैं, उनको चाहिये कि कमसे कम पुस्तकों, चित्रों और नकशों द्वारा ही प्रकृतिके शोभास्थानोंको देखें। उनसे इतना तो अवश्य हो सकता है। हम सब यात्रा नहीं कर सकते। और जो यात्रा करते हैं,वे भी समस्त

संसारको थोड़े ही देख सकते हैं। फिर इसका भी ध्यान रखना चाहिये कि यद्यपि कश्मीर या नैपालका एक बार देखना बिलकुल विस्मृत नहीं हो सकता, परन्तु स्मृति धुँधली और अस्पष्ट अवश्य हो जाती है। ऐसी दशामें पुस्तकों और चित्रों द्वारा उसका स्मरण कर लेना भी दोबारा देखनेके ही बराबर हो जाता है।

प्रकृति-दर्शनके विषयमें एक और बात भी स्मरण रखने योग्य है। वह यह है कि हम भ्रान्तिसे समझ बैठते हैं कि किसी देशमें भ्रमण करना और उसको देखना एक ही बात है। परन्तु यह ठीक नहीं है। दोनोंमें बड़ा अन्तर है, जिस दृष्टिसे रस्किनने स्वीज़रलैण्डको देखा और स्वामी रामतीर्थ परमहंसने हिमालयको देखा अथवा रवीन्द्रनाथ ठाकुरने अमेरिकाको देखा वही वास्तविक देखना है। ऐसा देखना सब नहीं देखते, ऐसे महानुभाव अपने देखे हुए स्थानोंका जो वर्णन लिखते हैं वह इस कारण मनोहर, सुन्दर और भावपूर्ण नहीं होता कि उनको बढ़िया भाषा लिखना आता है, बल्कि वह इसलिये होता है कि उन्होंने उन स्थानोंको उस दृष्टिसे देखा है जिस दृष्टिसे मजनू ने लैलाको देखा था। उन महापुरुषोंके किये हुए प्राकृतिक दृश्योंके वर्णन जिनको हम बहुत बड़े अनुभवी और प्रकृतिके प्रेमी समझते हैं, बड़े आनन्ददायक और चित्ताकर्षक होते हैं, उनके पढ़नेसे हमें स्पष्ट ज्ञात हो जाता है कि उनका कैसा रङ्गीला हृदय था। यहापर कतिपय महानुभावोंके किये हुए वर्णनोंके कुछ अंश उद्धृत

किये जाते हैं। स्वमी रामतीर्थ परमहस गगा और हिमालयका वर्णन करते हुए कहते हैं —

"पवित्र गंगा रामके विरहको न सह सकी। मास भर भी न होने पाया था कि उसने रामको फिर अपने पास बुला लिया। सारी स्वाभाविक सभ्यताको भूलकर वह उसके ऊपर हर्षके अश्रु कण बरसाने लगी। प्यारी गगे! गगोतरीमें तुम्हारी दिन दिन बढ़ती छविकी छटा और पल पल चचल कलबलका कौन वर्णन कर सकता है! गोरे गोरे गिरि और भोले भोले देवदार—यही तुम्हारे साथी हैं। उनका सीधा सच्चा स्वभाव कैसा प्रशंसनीय है। वृक्ष तो विशेषकर फारसी कविकी प्रेयसीसे ऊंचाईमें बराबरीका दावा करते हैं और उनकी मधुर मधुर मूर्ति तो बस अपूर्व ही है। वह चित्तको उत्तेजित वा उल्लसित और मनको दूना करती है। यहापर यह कितना स्पष्ट मालूम होता है कि परमात्मा पत्थरोंमें सोता है—लताओंमें श्वास लेता है—पशुओंमें चलता फिरता है, और मनुष्योंमें जीता-जागता है।

फूलोंकी वहा इतनी घनी उपज है कि सारा मार्गका मार्ग एक जरीका खेतसा दीख पड़ता है। नीले, पीले, बैंगनी भाति भातिके फूल जङ्गलमें भरे पड़े हैं, ढेरके ढेर कमल और वनफशे, गुलेलाल और गुलजहार—सौ सौ वर्णके एक एक फूल, गुगल-धूप, ममीरा, मीठातेलिया, सलद, मिश्री आदि अनेक रुचिर रगीन लतायें, केसर इत्रभू आदि अपार महामधुर सुगन्धिसे भरे पौदे, मेड गद्दे, तथा तुहिन शीकरोंसे भरे गर्भवाले, गर्वीले ब्रह्मकमल

इन सबोंने तो गिरिराजको मानों स्वर्गलोक और मृत्युलोकके स्वामीका प्रमोदवन हीसा बना दिया है, गोल चादका यौवन फूट फूट कर बाहर निकल रहा है। चारों ओर सुन्दरता ही सुन्दरता बरस रही है, जिधर देखो उधर मरुद्गण निडर होकर खेल रहे हैं। जो मिलता है उसीका वे चुम्बन करते हैं। चटकीले चमकीले फूलोंको तो वे खूब ही चूमते हैं। जगह जगहपर गन्धके झकोरे पवनके प्रवाहपर लहरें लेते हुए रामको ऐसे लग रहे हैं जैसे मधुर मनोहर आनन्ददायक गान। मृदु और मधुर प्रेमियोंके विरह-विलापके बिन्दुओंसी मृदु और उनके मञ्जुमिलापकी मुस्कानसी मधुर वाहित गन्धकी यहा बेहद बहुतायत है। इन बड़े बड़े विराट् पहाड़ोंकी चोटियोंपर ये सुन्दर सुन्दर खेत ऐसे बिछे हुए हैं जैसे कामदार कालीनें। देवता! यह तुम्हारी भोजनकी मेजें हैं या नृत्यकी भूमि! कलकल करते हुए नाले और दरारों और कगारोंपर धड़धड़ाती हुई नदियां—ये दोनों ही दिव्य दृश्योंमें उपस्थित हैं। कुछ चोटियोंपर तो दृष्टिको बिल्कुल स्वतन्त्रता ही मिल जाती है, कुछ रोक टोक ही नहीं। बेखटके चारों ओर दूरतक मनमानी चली जाती है। न उसकी राहमें कोई स्थूल शैल ही आकर खड़ा होता है और न उसके रास्तेको कोई दुष्ट मेघ ही रोकता है, कुछ शिखरवरोंको तो गगनभेदी और घनच्छेदी होनेका इतना अधिक उत्साह है कि वे रुकना भूल ही गये हैं और उच्चसे उच्च, गगनमंडलोंमें घुसहीसे हुए जाते हैं।

अहा देखो! यह कमलदलसे लगा छोटासा चंचल, चपल,

स्लिल ओसकण मनुष्यके मनका कैसा अच्छा चिह्न है। छोटा है, चपल है, परन्तु अहा कितना पवित्र है! कैसा स्वच्छ और चमकीला है, वह सत्यका सूर्य, वह अनादि दीप्तिका प्रभाव मानों उसीके हृदयमें स्थित है। अरे मनुष्य! क्या तू वही छोटासा जलकण, वही जरासी बून्द है, या तू अनन्त आदीप्त है। सचमुच वह तनिकसी बून्द नहीं। तू "ज्योतिषा-ज्योति." प्रकाशोंका भी प्रकाश है। सब वेद यही कहते हैं। राम यही कहता है। इसमें कुछ सन्देह नहीं कि यह तेरा ही तेज और तेरा ही प्रकाश है, जो ऐसे ऐसे दिव्य देशोंको ज्योति और जीवनसे भर देता है। ऊपर नीचे, इधर-उधर तेरा ही प्रकाश और तेरी ही प्रतिभावान् मूर्ति विराजमान है। तू ही वह शक्ति है जो किसी परिमाणकी परवा नहीं करता, परन्तु छोटे और बडे सबसे काम निकालता है। तू ही उष कालको उसकी मुस्कान देता है और तूही पाटल पुष्पको प्रभा प्रदान करता है।

अर्ध रात्रिके छटा भरे तारे चमकीले।
प्रात समयके ओस विन्दु समुदाय छबीले॥
जो कुछ सुन्दर और स्वच्छ है अश कहींपर।
है तेराही नाथ! सभी प्रतिबिम्ब मनोहर॥
तारापति शुभ चन्द्र रातमें स्वामी तू है।
संध्याकी द्युति ओस प्रातमें स्वामी तू है॥
शोभा और प्रकाश यहा है जो कुछ माया।
तूनेही निर्माण किया और जगत् सजाया॥

है व्यापक तव तेज वस्तुयें जगकी सारी।
कहती हैं चुपचाप यहां हैं त्रिरविहारी॥

रामका वर्तमान निवासस्थान एक सुघड आनन्ददायक पहाडी कुटि है। उसके आस पास एक हरी भरी और सुनसान प्राकृतिक वाटिका है। उससे गंगाका एक सुरम्य दृश्य दिखाई देता है। यहां पर रामबूटी बहुत उत्पन्न होती है, गौरैया और इतर पक्षी दिनभर मनमाना गान करते हैं। यहांकी वायु स्वास्थ्यकर है, गंगाका गायन और पक्षियोंका गूंजना यहांपर सर्वदा स्वर्गीय उत्सवसा बनाये रखते हैं। यहांपर गंगाकी घाटी बहुत विस्तीर्ण है। मानों गंगा एक बडे मैदानमें बहती है। परन्तु प्रवाह बहुत जोरका है, तथापि रामने कई बार तैरकर पार किया है। केदार और बद्रीने बडे प्रेमसे अनेक बार राम-बादशाहको आमन्त्रित किया है, परन्तु प्यारी गंगाको विरहकी कल्पना-मात्रसे बहुत दुःख होता है और उसका मुखचन्द्र म्लान पड जाता है। राम उसे अप्रसन्न नहीं करना चाहता और न उसे उदास होते हुए देख सकता है।"

कुछ लोग पर्य्यटन तो नहीं करते, परन्तु घर बैठे ही प्राकृतिक सौन्दर्य्यके अत्यन्त प्रेमी होते हैं। श्रीमान् ज्येफ्रोज जिन्होंने दुर्भाग्यवश कोई यात्रा नहीं की, घर बैठे ही प्रकृतिके इतने उपासक थे कि जिसका कुछ वर्णन नहीं हो सकता। वे अपनी सम्मति इस प्रकार प्रकाशित करते हैं —"सब मधुर वस्तुओंमें स्वच्छ वायुके तुल्य कोई वस्तु नहीं है। वायु एक विशाल पुष्प

है जिसकी परिधि भूतलपर्य्यन्त है। उसकी विस्तृत पंखडियोंमें हमारी समस्त सृष्टि समाई हुई है, उस फूलकी उन्नतता आकाश-तक पहुंची हुई है। इसी वायुपुष्पकी सुगन्धि घर घरमें व्याप्त है। इसी पुष्पके ऊपर आकाशमें सूर्य्य, चन्द्र और तारोंके चमकीले पुष्प हैं . ।"

श्रीमान् रवीन्द्रनाथजी ठाकुरके प्राकृतिक सौन्दर्य्य-वर्णनोंसे हिन्दीपठित संसार भलीभांति परिचित है। उनके चित्ताकर्षक वर्णनोंको यहांपर उद्धृत करके पृष्ठ-संख्या ही बढाना है।

जब वे प्राकृतिक दृश्योंको देखते हैं तो उनकी आत्मा तन्मय हो जाती है। उस समय उनका अहंपद दूर हो जाता है और वे विश्वमें लय हो जाते हैं। यदि यह बात न होती तो वे निरी कृत्रिमताके द्वारा प्राकृतिक शोभाओंका विलक्षण और चुभता हुआ वर्णन भी न लिख सकते। यदि वे ऐसा अनुभव नहीं करते तो केवल शब्दोंकी ठूंसठांस होती और उनके वर्णन बेल्जियम, स्विजरलैण्ड, जर्मनी, इंगलैण्ड, अमेरिका और जापान आदि देशोंमें नहीं पढ़े जाते। सुप्रख्यात डारविनने संसारका पर्य्यटन करके कहा है —"पुरातनकालके चित्रोंका स्मरण करनेपर पैटेगोनियाके क्षेत्र मेरी दृष्टिके सन्मुख उपस्थित हो जाते हैं, लोग वृथा ही इन क्षेत्रोंको बुरे और निकम्मे बताते हैं। वे निर्जनता और शून्यका अस्तित्व प्रकट करते हैं। न वहां घरबार, न जल, न वृक्ष, न पर्वत हैं, वहां केवल कुछ नन्हेसे पौधे हैं। फिर भी उन क्षेत्रोंने मेरे मनपर अधिकार क्यों जमा लिया है? उनसे

?तर स्थान जहा हरियाली कोसोंतक विस्तृत है, जहा मनु-
के लिये उपयोगी वृक्ष इत्यादि पुष्कल हैं, मेरे मनपर उनके
?र प्रभाव क्यो नहीं डालते । इन भागोंको मैं कठिनतासे भी
समझता। सम्भवत उनसे मेरी विचारधारापर गहरी
: पड़ी है। पैटेगोनियाके क्षेत्र असीम हैं, पर उपयोगी न
के कारण वे अज्ञात हैं। वे इसी सिद्धान्तके प्रमाण हैं कि वे
ाब्दियोंसे वैसेके वैसे चले आ रहे हैं, और उनके ज्योंके त्यों
ोका भविष्यमें भी अन्त नहीं प्रतीत होता। जैसा कि पुरा-
ळके लोगोंने समझ रखा था कि चिपटी पृथ्वी चारों ओर-
?क दुर्गम जल-राशिसे या अत्यन्त उष्ण रेगिस्तानसे वेष्टित
यही सिद्धान्त कहीं सच्चा हो तो फिर इन क्षेत्रोंको जो मनुष्य-
ात स्थानोंकी सीमा हैं—गहरे परन्तु दु परिभावित सवेद-
मोंके साथ कौन नहीं देखेगा ?

महाकवि कालिदास, भवभूति, वाण, श्रीहर्ष आदि प्राकृतिक
न्दर्यके कितने भारी उपासक थे। इन्होंने पहाड, नदी, वन
तिके जो वर्णन अपने अपने ग्रन्थोंमें किये हैं वे बड़े ही रोचक
? मनोहर हैं।

श्रीमान् हैमरटन जिनका अनुभव और सौन्दर्य प्रेम मान-
? है अपनी सम्मति इस प्रकार देते हैं —"हिमसे आच्छादित
त जिसका इस क्षणिका प्रतिविम्ब निम्नस्थित सरोवरमें
: रहा हो—तडक भडक और पवित्रताके मिश्रणका इस दृष्ट
सारमें एक ऐसा उदाहरण है, जिसके बराबरका कोई दूसरा

उदाहरण मिल नहीं सकता। जब सूर्य्य ढलता है, इसकी सहस्रों छायायें लम्बी होती हैं—पानीमें तैरती हुई बर्फकी चट्टानोंमें वे प्रतिबिम्ब हरे, नीले और पवित्र दिखाई देते हैं—सूर्य्यके ढलते प्रकाशमें हिम पहले तो श्वेत गुलावका-सा हलका रंग धारण करता है—फिर गुलाबी और तब लाल दिखाई देता है। आकाश पीला और हरा दिखलाई देने लगता है और फिर यह विचित्र दृश्य भयंकर भूरेपनमें परिवर्त्तित हो जाता है। परन्तु ये सब दृश्य दर्शकोंके हृदयपटलपर अस्थिर सौन्दर्य्यका एक स्थायी स्मरण छोड जाते हैं।"

गगनकी नीलिमा, सूर्य्यास्तकी लालिमा, हिमाच्छादित पर्वतोंकी पवित्र श्वेतता, पृथ्वीपर लगे हुए वृक्षों और पौदोंकी हरियाली, पुष्पोंके अनेकानेक रंग प्रकृतिके उन उपासकोंके लिये जो अपने नेत्रोंका सदुपयोग करते हैं, अनन्त हर्ष देनेवाले हैं। परन्तु एक निर्निमेष बदलते हुए अद्भुत चित्रके ये सब हाशिये और पृष्ठ-दृश्य हैं। इनके बराबरके या इनसे भी बढिया रङ्ग पशुओं और पक्षियोंमें पाये जाते हैं—सुवर्ण, रजत, हिंगलू, हीरे, पन्ने आदि खनिज पदार्थोंके रंग और चमकदमक और भी चित्ताकर्षक होते हैं। इस रंग-वैभवका हमारे मस्तिष्क और अध्यात्मसे विशाल और गम्भीर सम्बन्ध है। शिशु तथा जङ्गली मनुष्य दोनों ही पुष्पों, परिन्दों और कीट-पतङ्गोंके रङ्गोंकी प्रशंसा करते हैं। हममेंसे बहुतोंके लिये इनका विचार और स्मरण मानसिक और आध्यात्मिक आनन्द तथा शान्ति प्रदान करते हैं। इसलिये इस

बातके जाननेसे हमें आश्चर्य्य नहीं होगा कि प्राचीन कालमें बहुत पहिले ही अध्यात्म और प्राकृतिक रंग व्यवस्थाका सम्बन्ध विचार लिया गया था। और यद्यपि इसमें सन्देह नहीं कि मनुष्यके सहस्रों वर्षोंके गहन विचारोंके पश्चात् भी प्रकृतिके कई एक सुन्दर और हर्षदायक रहस्य हैं, परन्तु वे शनैः शनैः मनुष्यको ज्ञात हो जायगे और उसके आनन्दको बढानेमें पूर्ण भाग लेंगे।

एक प्रकारसे देखा जाय तो एक वर्ष प्रकृतिके दृश्योंकी एक पुस्तक है जिसके ३६० दिन उसके तीन सौ साठ पृष्ठ हैं और जिसकी छः ऋतुएं उसके छः अध्याय हैं। प्रति वर्ष इस पुस्तक-का—इस प्राकृतिक सौन्दर्य्यके चित्राङ्कित ग्रन्थका सिंहावलोकन किया जा सकता है। प्रत्येक दिनमें हमें नई नई प्रतिमाएं, शोभाएं और सौन्दर्य्य एक ही क्षेत्रमें दिखाई देते हैं। एक ही क्षेत्रमें आज हम भूरी मिट्टी, आठ दिनके पश्चात् उगता हुआ अनाज आदि—फिर पन्द्रह दिनके पश्चात् लहलहाते हुए हरे पौदे देखते हैं। यही पौदे प्रतिदिन रङ्ग पलटे चले जाते हैं। एक दिन पककर वे पीले और श्वेत हो जाते हैं। वे काट लिये जाते हैं—फिर उसी पीली भूरी मिट्टीकी जुताई होती है। दूसरी फसल बोयी जाती है। वह भी अपना भाँति भाँतिका रङ्ग दिखाती बढती जाती है। उसी क्षेत्रमें कभी हम मूसलधार बरसता मेह तो कभी पवित्र ओसकण या कुहरा, कभी सुनहली धूप तो कभी धुंधली छाया देखते हैं। यदि प्रतिदिन देखनेके अभ्याससे, हमारी स्वार्थपरतासे, या हमारे विवेकके ह्राससे एक क्षेत्र अपने नाना

लीजिये। कितना छोटासा जन्तु है, परन्तु इसका उपर्युक्त प्रकारसे यदि कोई सध्यान अध्ययन करे तो भले ही अपनी समस्त आयु व्यतीत कर दे। वनस्पति और प्राणि-शास्त्रके आचार्योंने ऐसा ही किया है।

जब हम इस बातपर ध्यान देते हैं कि श्वान, अश्व, गो, बैल, भेड, बकरी इत्यादिने हम मनुष्योंपर कितना उपकार किया है, तो हम उनके प्रति गम्भीर कृतज्ञता प्रकट किये बिना नहीं रह सकते। उनके उपकारका हम यथोचित बदला नहीं दे सकते। पुराने समयमें तो इनको पूजा और उपासनातक की जाती थी और कई लोग अब भी करते हैं। परन्तु हममेंसे अधिकाश उनको पूजनीय तो क्या समझेंगे, बल्कि उनमें आत्मातक नहीं समझते—वे हमें केवल लकडी-पत्थरके समान प्रतीत होते हैं। तभी तो हम उनके प्राण हरते देर नहीं लगाते।

पशु और पक्षी तथा स्वेदज (पिस्सू, खटमल आदि) करोडों प्रकारके हैं। उनमें कई और विशेषत जो जाति बनाकर समूहोंमें रहते हैं और उदासीनता, हास्य या उद्योगशीलताका परिचय देते हैं, वे अधिकतर ध्यानाकर्षक हैं—उनके जीवन मानवजीवन-से अधिकतर सादृश्य रखते हैं।

इनके जीवन प्रकार अगणित भांतिके हैं। कई भूमिपर, तो कई जलमें रहते हैं। जलवासियोंमें भी बहुत भेद हैं, कई तटों-पर, कई पानीके ऊपर और कई कुछ नीचे और कई बहुत गहरेमें रहते हैं, कई नदियोंमें, कई झीलों या तालावोंमें, कई समुद्रोंमें,

कई मैले-कुचैले नालोंमें रहते हैं। कई पृथ्वीके ऊपर मैदानोंमें, कई पहाडोंमें और कई वातावरणमें रहते हैं। कई आर्कटिक प्रदेशोंमें तो कई जलते रेगिस्तानोंमें निवास करते हैं। इसी प्रकार उनके आहार भी भाति भातिके हैं। कई मासाहारी हैं और प्रकट रूपसे शिकार खेलते हैं। कई छिपकर—गुप्तरीत्या अन्य जीवोंको खा जाते हैं। कई मास भी खाते और शाकपात भी खाते हैं। कई केवल वनस्पतिहीका आहार करते हैं। एकका दूसरा आहार है। इन सबकी प्रकृतिया भिन्न भिन्न हैं। एकको एक वस्तु खानेमें अच्छी लगती है तो दूसरा उसको मुह भी नहीं लगाता। इनके शरीर, आहार या बनावटके हिसाबसे विभाग बनाना बडा कठिन कार्य्य है, कई बार एक ही प्राणी नाना प्रकारके रूप धारण कर लेता है।

वृद्धि और परिवर्त्तन

कई जीवोंकी जन्मसे परिपक्वणतक वास्तवमें वृद्धि नहीं बल्कि परिवर्त्तन है। प्रकृतिके प्रेमियोंको बहुत समयसे कई कीट पतङ्गोंके परिवर्तनने दग कर रखा है। कई छोटे कीडे अण्डोंसे निकलते समय कुछ और ही दिखते हैं और बडे होनेपर रूपान्तरित हो जाते हैं। वास्तवमें बात यह है कि वे अण्डोंसे कच्चे ही निकल आते हैं,इसलिये वे परिपक्वणके पूर्व ही बाहरी मौसमके प्रभावसे अन्य रूपके दीखने लगते हैं। रेशमके कीडोंको देखिये। परिपक्व होनेपर वे सुन्दर तितलिया हो जाते हैं। एक विशेष प्रकारकी मक्खीकी बडी विचित्र दशा है। इसके नन्हे बच्चे छ छ

उनके सौन्दर्य्यसे मनुष्य तृप्त होते थे। उस समय भी कई परिवर्त्तन ऐसे होते थे जो ध्यानमे आये विना नही रहते थे। परन्तु तोभी प्रकृति या सृष्टिकी पुस्तक यद्यपि एक उज्ज्वल लेख थी तथापि उसकी भाषा कुछ ऐसी थी जो समझमे नहीं आती थी। उस पुस्तकके सुन्दर और सुनहले अक्षर, रङ्गीन पृष्ठ, चित्राङ्कित जिल्द मनुष्योंकी रुचि, वैचित्र्य और प्रशंसा भावको उत्तेजित करते थे, परन्तु उसके लेखका अर्थ ज्ञात नही होता था। अब शनैः शनैः उस ग्रन्थके अक्षर पहचाने जाने लगे। उनका अर्थ समझमें आने लगा। और अबतक मनुष्योंने कमसे कम इतना तो पता लगा ही लिया कि चर और अचर सृष्टिमें जो कुछ रूप-रङ्ग और रचनाके अन्तर तथा समानताएं हैं, वे व्यर्थ नहीं बल्कि कारणोंद्वारा संघटित हुई हैं। प्रत्येक नस, पट्ठा, हड्डी, पर, बाल इत्यादिका कुछ न कुछ कारण और प्रयोजन है।

रङ्ग

जन्तुओंका रङ्ग बहुत करके उनके सुरक्षणके लिये ही रखा गया है। किसी जन्तुमें नारीकी अपेक्षा नरका अथवा नरकी अपेक्षा नारीका रङ्ग इसलिये भड़कीला रखा गया है जिससे परस्पर आकर्षण और मुग्धता बनी रहे। उसका अत्युत्तम उदाहरण मयूर है। मयूरीसे वह कितना सुन्दरतर होता है।

रङ्गके वैभवमें पक्षी और कीट पुष्पोंसे भी बराबरीका दावा रखते हैं। बीरबहटी (एक लाल रङ्गका गोल छोटा-सा कीड़ा जो अषाढ़-श्रावणमें पृथ्वीसे निकलकर पन्द्रह-बीस दिनतक

धीरे-धीरे इधर-उधर फिरा करता है) कितनी सुन्दर होती है! उसका शरीर लाल, मखमल जैसा कोमल और चमकदार होता है। यह गुलेलालाके पुष्पको रङ्गकी व्यवस्थामें अच्छी तरह झेंपा देती है। पुष्पोंपर कई तितलियां देखी जाती हैं। वे पुष्पोंको भी नीचा दिखा देती हैं। उनके भांति भांतिके रङ्ग कितने प्यारे ज्ञात होते हैं। गरुड और तोतेके रङ्ग कितने आकर्षक और चमकीले होते हैं।

ये नाना प्रकारके रङ्ग जन्तुओं और पौधोंके सौन्दर्य्यको तो बढाते ही हैं, परन्तु ये हमें प्राणी और वनस्पतिशास्त्रोंके कई रोचक सिद्धान्तोंका परिचय भी कराते हैं। कदाचित् कई रङ्ग स्वयं रङ्गधारियोंके लिये कोई ज्ञात प्रयोजन नहीं भी रखते हों, उदाहरणार्थ सीपी। यह जन्तु आयुपर्य्यन्त छिपा हुआ रहता है और इसका रङ्ग या सौन्दर्य्य इसको कुछ भी लाभ नहीं पहुंचाता। यह केवल अनायास ही बन गया जैसा कि पन्ने, लाल, नीलम आदिके रङ्ग है। ऐसी प्रयोजनरहित व्यवस्था किसी अंशतक ठीक भी हो सकती है। परन्तु ये सब रङ्ग रङ्गधारियोंके लिये कुछ न कुछ प्रयोजन अवश्य रखते हैं। परमात्माकी रङ्गरेजी निकम्मी नहीं है। वह आवश्यकतानुसार लाल, पीला, हरा रङ्ग प्रदान करता है। एक सुविख्यात प्राणिशास्त्रवेत्ताने कहा है कि मछलियोंके ऊपरका श्यामल और नीचेका रजत्तुल्य चमकीला रङ्ग दोनों कुछ भी प्रयोजन नहीं रखते। परन्तु ऐसा कथन उचित नहीं प्रतीत होता। ऊपरसे धुंधला और काला

कुछ भय होता है तो ये पीछेको ओर सिकुडते हैं और इनके पीछे सिकुडते समय सर्पसे और भी समानता बढ जाती है। छोटे परिन्दे इन रेंगनेवाले जन्तुओंसे बहुत डरते हैं। विसमैन नामक एक जन्तु-शास्त्रज्ञने इस विषयकी अपने घरहीमें जाच की थी। वे इस प्रकार लिखते हैं—"मैंने एक दिन बडी परातमें अनाजके दाने और उनपर इस हाथीकी चालसे रेंगनेवाले एक जन्तुको रख दिया। एक पक्षी दाना चुगनेके लिये आया। उसको देखकर और दस पाच आ गये। उनमेंसे एक पक्षी परातके किनारेपर बठ गया और वह चोंच मारनेको ही था कि इतनेमें उसने उस जन्तु-को देख लिया। वह हैरानीसे अपना शरीर इधर-उधर करने लगा और डरके मारे दाना चुगनेको परातमें न उतर सका। दूसरी चिडिया भी पास आ गई परन्तु अन्दर न जा सकी। इसी प्रकार धीरे धीरे वे सब चिडिया परातके निकट तथा उसके किनारेपर बैठ गईं, परन्तु वे दाने न चुग सकीं और आश्चर्य्यसे परस्पर देखती रहीं। एक चिडिया अज्ञानवश परातमें उतर गई, परन्तु ज्योंही वह जन्तु उसको दीख पडा वह घबराकर बाहर आ गई। इस प्रकार कुछ देर प्रतीक्षा करके मैंने उस जन्तुको वहासे हटा दिया। तुरन्त ही वे सब चिडिया परातमे बैठकर दाना चुगने लग गईं।" इन कीटोंमसे कोई-कोई बडा कीट तो सर्पकी नाई फुफकार भी मारता है

अत्यन्त छोटे कीटोंको भी देखिये रङ्ग उनका भी रक्षण करता है। जो वृक्षोंके छिलकोंमें रहते हैं उनका रङ्ग

छिलकोंसे समानता रखता है। जो कङ्कड़-पत्थरोंमें रहते हैं उनका रङ्ग उनके रङ्गोंसे मिलता है।

यह सिद्धान्त उन उदाहरणोंसे और भी पुष्ट होता है जिनमें रक्षा और अन्य सुविधा रङ्गहीके द्वारा नहीं होती, वरिक आकृतिके द्वारा भी होती है। ये ऐसे कीड़े हैं जो टहनियों और पत्तियोंके सदृश दिखाई देते हैं। ऐसे भी उदाहरण हैं कि एक प्रकारका कीट रङ्ग, रूप और स्वभावमें उस दूसरे प्रकारके कीटका अनुकरण करने लगता है जो अधिकतर सुरक्षित होता है। कई मकड़िया चींटियोंसे मिलती हुई होती हैं। कई कीड़े भिड या सींगवाले कीड़ोंकी नकल करते हैं। इससे भी अनोखी बात यह है कि कई सर्प और मछलिया अपने चमड़ेका रङ्ग अपने चारों ओर या पास-पड़ोसके रङ्गके अनुसार बदल देनेकी शक्ति रखती हैं।

कई ऐसे भी उदाहरण देखनेमें आते हैं जिनमे साधारण दृष्टि डालनेसे रङ्ग रक्षाका कार्य्य करता नहीं ज्ञात होता, परन्तु यदि ध्यान और बुद्धिसे देखा जाय तो उनमे भी वही सिद्धान्त काम करता दिखायी पड़ता है, जैसे, भेड़का रङ्ग हरा न होकर श्वेत क्यों है? इसलिये कि यह पहाड़ी पशु है। जहा श्वेत पहाड़ी चट्टानोंमें यह चरती है वहा इसका रङ्ग इसको उस स्थानके रङ्गसे बहुत कुछ समान बना देता है। जब मनुष्य अपने मतलबके लिये भेड़को मैदानोंमें ले आये तो उनकी रक्षा मनुष्य करने लगे। अत रङ्ग बदलनेकी आवश्यकता न रही।

उदाहरण-मात्र हैं। लार्ड आवरीने चीटियों, मधुमक्खियों और भिडोंपर एक बहुत विचित्र और विस्तृत ग्रन्थ लिखा है। इन्होंने आयुपर्य्यन्त इन जीवोंको पाला-पोसा है और इनके इतिहासोंको बडी चाह और सहानुभूतिसे सकलित किया है।

उपर्युक्त महोदय चींटियोंहीके विषयमें एक अत्यन्त विलक्षण बात यों लिखते हैं,—"इसमें सन्देह नहीं कि इनकी नैसर्गिक बुद्धि सीमित है, परन्तु यदि कोई इनके जीवन-इतिहासका ध्यानपूर्वक अध्ययन करे तो उसको नैसर्गिक बुद्धि और मानवबुद्धिमें बहुत कम भेद मिलेगा। जब हम चींटियोंके एक परिवारको पूर्ण प्रेमभावसे फिरते और काम करते हुए देखते हैं तो हमे कठिनता पड़ जाती है कि इनको निरे सुन्दर जीव कहें या बुद्धियुक्त प्राणी। एक चींटियोंके बिलको देखिये। अहाहा! वहांपर क्या-क्या कार्य्य हो रहे हैं। उसमें सहस्रों उद्योगशील जीव काम कर रहे हैं। कई अन्दर कोठरियां खोदते, कई सुरङ्ग बनाते, कई सड़क और मार्ग तय्यार करते, कई गृहकी रक्षा करते, कई आहार-सामग्री बटोरते और कई बच्चोंका पालन-पोषण करते हैं। प्रत्येक चींटी अपना कर्त्तव्य-निर्दिष्ट कार्य्य बडे परिश्रमसे कर रही है। कोई उलझन नहीं होती। सब कार्य्य ठीक चल रहा है। ऐसी दशामें उनको निर्बोध बताना बडा कठिन है। जितना कुछ हमारा ज्ञानानुभव है, वह इसी बातको पुष्ट करता है कि उनके मस्तिष्ककी शक्ति और मनुष्यके मस्तिष्ककी शक्तिमें केवल न्यूनाधिकताका अन्तर है, न कि प्रकारका।"

तीसरा अध्याय



प्राणि-जीवन

पशुओंके विषयमें सदैव कहा जाता है कि वे बड़े स्वतन्त्र हैं। रस्किन महोदय कहते हैं कि मनुष्यकी अपेक्षा मछली अधिकतर स्वतन्त्र है और पतङ्ग तो मानों स्वतन्त्रताका अवतार ही है। किसीके लिये स्वतन्त्रताका विचार करना बड़ा हर्षदायक है, परन्तु यह विचार भ्रामक और अशुद्ध है। पशु-पक्षियोंके बच्चे तो भले ही स्वतन्त्रतापूर्वक इधर-उधर विहार कर ल परन्तु वे स्वयं इतने स्वतन्त्र नहीं हैं। उनको जीवनकी बड़ी चिन्ता रहती है। मछलियों और पतङ्गोंके विषयमें तो अभीतक हमें बहुत कम ज्ञात है। परन्तु अधिकांश जीवधारियोंके लिये तो सर्वसाधारण भी विचार कर सकते हैं कि उनको कितना काम करना पड़ता है। जब वे हमें स्वेच्छापूर्वक और स्वतन्त्रतासे विचरते और विहार करते दिखाई देते हैं, तब वे वास्तवमें अपने आहारकी चिन्तामें उद्योग करते फिरते हैं। उनकी क्रियाएं निष्प्रयोजन नहीं होती हैं। मधुमक्खीके उद्योगको तो सभी प्रशंसनीय मानते हैं। शहद या पराग इकट्ठा करनेके निमित्त वह एक-एक मिनटमें बीस बीस पुष्पोंपर जाती है और अपनी ही जाति-गोत्रकी मादासे प्रेम करती है और दूसरी जातिकी सुन्दरतर

कुछ चिन्ता न करना—ये चरित्रके ऐसे अच्छे गुण हैं कि यदि मनुष्य उनका अनुकरण करें तो बहुतोंके कष्ट दूर हो जायं। यह चरित्र इस सुवर्ण नियमका परिणाम है कि यदि कोई काम न करे तो उसको खाना भी न मिलना चाहिये। 'कमाये विना कैसा खाना' यह एक कठोर परन्तु दयापूर्ण नियम है कि जिसके द्वारा सहस्रों जातियां जिनमें एक भी मंगता-भिखारी नहीं होता—स्वास्थ्य, उत्साह, दृढसंकल्प, आत्मसंयम और असाधारण आनन्दसे रहती हैं।

बहुधा कहा जाता है कि केवल मनुष्य ही एक ऐसा प्राणी है जिसमें हँसी-दिल्लगी करनेकी शक्ति है। निस्सन्देह पशु हँसते तो नहीं हैं,किन्तु खेलते वे अवश्य हैं। हम अपने ही गुणों और संवेदनाओंकी उनके गुणों और संवेदनाओंके साथ बहुधा तुलना करते हैं। परन्तु यह अवश्य मानना पडेगा कि वे शब्द और गन्धसे बडा आनन्द उठाते हैं। साप पूंगीके बाजेपर कितना मुग्ध हो जाता है! इसी कर्णेन्द्रियके रसका हरिणमें कितना बाहुल्य होता है। बहुतसे हिंसक पशु सूंघकर ही अपने आहारकी खोज लगाते हैं। बिल्ली और भेडके बच्चोंकी रंगरेलियां मानव शिशुओंकी क्रीडाओंसे कितनी मिलती हैं। सिंहनी जब किसी भैंसे या हरिण आदिका शिकार करके अपने बच्चोंको आहार कराती है उस समय वे बच्चे कितने मजेसे खेलते कूदते हैं। कबूतरोंका नाचना और कूजना तो प्रसिद्ध ही है। मिस्टर गोल्ड, मिस्टर फोगल और मिस्टर बेट्स इत्यादि प्राणिशास्त्रज्ञोंने तो चींटियोंतकका खेलना-

कूदना दृढ़तासे और बिना संकोच मान लिया है। इसमें सन्देह नहीं कि विनोदका भाव सभी प्राणियोंमें होता है। हम उस भावको उनमें न देख सकें, यह बात दूसरी है।

निद्रा

निद्रा वह वस्त्र है जो विचारोंको ढक देता है, वह आहार है जो बुभुक्षाको सन्तुष्ट कर देता है, वह पान है जो तृषाको तृप्त कर देता है, वह अग्नि है जो शीतको उष्ण कर देती है, वह शीत है जो उष्णताको कम कर देता है, वह धन है जो सब वस्तुओं-को खरीद लेता है, वह तराजू और बाट है जो गडरियेको राजाके बराबर और मन्दबुद्धिको अत्यन्त विवेकीके बराबर तौल देता है। प्रकृतिमाताकी वह दयालु धातृ निद्रा मनुष्य तथा पशु सबको आश्रय देती है। कई पशु स्वप्न देखते हुए भी जान पड़ते हैं, जैसे कुत्ते। वे स्वप्नमें अपना शिकार देखते हैं। छोटे जन्तु जो नेत्र नहीं मूंदते, हमें पता नहीं देते कि वे सोते हैं या जागते हैं। बगुलोंको रात्रिमें देखा जाय तो वे ऐसे प्रतीत होते हैं जैसे सो रहे हैं। यदि उनके आसपास किसी प्रकारकी आहट उस दशामें होती है तो वे दिनके समयकी नाईं उतनी परवा नहीं करते। यही दशा मछलियोंकी देखी गयी है।

हम सोते क्यों हैं? यह एक कैसी अद्भुत बात है कि हमारे जीवनका तृतीयांश अचेतनतामें व्यतीत होता है। साधारण समाधान यही है कि हमें विश्रामकी आवश्यकता है। परन्तु इससे भी सम्पूर्ण समाधान नहीं होता है, क्योंकि उस दशामें भी हमारा

आश्चर्यका विषय है कि एक प्रकारका तरल पदार्थ एक प्राणीके शरीरमें रहकर स्वयं उसको तो तनिक भी हानि नहीं पहुंचाता और दूसरोंके लिये कितना तीव्र और भयंकर सिद्ध होता है। काले सापके विषसे तो हम इतने प्रभावित होते हैं; परन्तु और कई जन्तुओंमें भी यह जहरीला द्रव्य कितनी तीव्र मात्रामें व्याप्त रहता है। मधुमक्खी या भिडका डङ्क एक अन्य ही प्रकारकी विष-पिचकारी है। कई जातिकी चींटियां वास्तवमें डङ्क तो नहीं मारतीं, परन्तु अपने विषको इस प्रकार फेंकती हैं कि शरीरमें इञ्चोंतक उसका प्रभाव हो जाता है।

विषसे भी अद्भुत शस्त्र एक प्रकारकी मछलीके पास होता है जिसे इलेक्ट्रिक कैटफिश कहते हैं। यह विद्युत (बिजली) की धाराका प्रहार करती है। टारपीडो नामक मछलीके लिये कहा जाता है कि वह विद्युतकी इतनी तेज धारा फेंकती है जिससे मनुष्य मर सकता है। सीपिया मछलीकी फुफकार तो प्रख्यात ही है। इसके शरीरमें एक काला रस होता है। जब इस मछली-पर कोई आक्रमण करता है तब यह उस काले रसको बाहर फेंकती है। उससे जो धुंधला बादलसा बनता है उसीमें छिप-कर यह शत्रुसे बचती हुई भाग जाती है।

बम्बारडीयर मक्खी (अर्थात् तोप चलानेवाली मक्खी) पर जब किसी प्रकारका आक्रमण होता है तब वह अपने शरीरके पीछेके भागमेंसे एक ऐसा रस फेंकती है जो वायुसे टक्कर खाकर भभकता और (छोटी) नकली बन्दूकके शब्दके अनुसार

शब्द करता है। कई जीवोंके पास उनकी दुर्गन्धि ही उनका शस्त्र है, जैसे खटमल। मकड़ीका जाल एक ऐसा अमोघ शस्त्र है कि मक्खियां या कीड़े-मकोड़े उसमें फंसकर अपने प्राण गंवा देते हैं। सूअरके दांतका तो कहना ही क्या। विष्णुभगवान्‌ने वराह अवतार धारण करके उसी दांतसे शत्रुका नाश किया था।

इसी प्रकार हम जितनी अधिक देखरेख करें उतना ही गम्भीरतर और विस्तृततर ज्ञान प्राणिक शास्त्रोंका हो सकता है। जिन्होंने आयुपर्यन्त इस विषयका गवेषण किया है उनको ऐसी अद्भुत और विचित्र बातें ज्ञात हुई हैं, जिनका इस पुस्तकमें विस्तारभयसे उल्लेख ही नहीं हो सकता।

वर्शल नामक यात्रीके विश्वसनीय कथनानुसार वैस्टवुड महाशय लिखते हैं कि, "दक्षिण अमरीकाकी एक महानदीके तटपर वास करते समय रात्रिमें जब वे एक हब्शीके साथ ज्योतिष विषयक कुछ गवेषणके लिये लालटेन लेकर बाहर निकले तो उन्होंने किनारेपर कुछ जन्तु भागते देखे। जब उन्होंने कुछको पकड़कर उनका निरीक्षण किया तब उन्हें पता चला कि वह एक प्रकारकी ब्रेचीनस जातिकी भींमरी थी। जब वे पकड़ी गईं तो वे अपनी तोपें चलाने लगीं, जिनके प्रहारसे वर्शल महोदयके चर्मपर जलकर काले धब्बे पड़ गये, जो कुछ दिनोंतक बने रहे।"

झाहू मूसा और सेहलीके पैरोंके अतिरिक्त समस्त शरीरपर

ऐसे पैने और लम्बे काटे होते हैं कि प्रहार करनेवाले पशुका इनपर दाव ही नहीं चलता।

ज्ञान वा बोध

स्वय अपने अनुसार हम पशुओंमें भी बहुधा न्यूनाधिक अशमें वही पाच ज्ञानेन्द्रिया बनाते हैं; परन्तु वास्तवमें हम अपनी ज्ञानेन्द्रियोके विषयमें बहुत कम समझते हैं, फिर पशुओंके विषयमें तो अधिकतर समझें ही क्या? हमारे कई ज्ञानोंकी पोल खुलती जाती है। उदाहरणार्थ, साधारणत कहा जाता है कि इन्द्र-धनुषमें सात रङ्ग होते हैं, लाल, नारङ्गी, पीला, हरा, नीला, फीरोजी और बनफशाही।

परन्तु अब जान लिया गया है कि हमारे रङ्ग विषयक सवेदन केवल तीन ही रङ्गोंके (लाल, हरा और बैंजनी) मिश्रण हैं। हमें इसका कुछ ज्ञान नहीं है कि हमें इन्द्र-धनुषमें सात रङ्ग कैसे दिखाई देते हैं। थामस यङ्ग नामक व्यक्तिने ऐसी सम्भावना प्रस्तावित की थी कि हमारे स्नायुकी बनावटके तीन भिन्न भिन्न प्रकार हैं। हैल्म होजने इस सम्भावनाको कुछ माना भी है। परन्तु जहातक खुर्दबीन (Microscope) के द्वारा परीक्षा की गई, इस सम्भावनाका कोई प्रमाण नहीं मिला।

इसी प्रकार कर्णेन्द्रियको लिया जाय। वायुके संचालनके आघात निस्सन्देह कानोके पर्दोंपर पडते हैं और उनसे उत्पादित लहरें श्रवण-नाडीद्वारा, जो एक सूक्ष्म अस्थियोंकी शृङ्खला होती है, मस्तिष्कतक चली जाती हैं और शब्दका ज्ञान हो जाता है,

परन्तु इतने ज्ञानके पश्चात् आगे जो कुछ होता है उसका कुछ ठीक ठीक पता नहीं है। यह श्रवण नाडीकी सुरङ्ग दो विभागोंकी होती है—(१) कोकलिया (२) अर्द्ध गोल नहरें जो तीन हैं और आपसमें समकोण बनाती हैं। ऐसा माना गया है कि उनसे शरीरकी समतुल्यता बनी रहती है, परन्तु कोई सन्तोषदायक प्रमाण उनके प्रयोजनका विज्ञानाचार्य्योंको नहीं मिला है। यह विषय बड़ा जटिल है। श्रवण नाडीके सङ्गठनके विषयमें अधिक लिखना बड़ा कठिन है। यह शरीर-विज्ञानका अनुशीलन किये विना नहीं लिखा जा सकता। परन्तु लिखनेकी बात दूर रही अभीतक तो बड़े बड़े धुरन्धरोंको भी इस विषयमें सम्पूर्ण ज्ञान नहीं हुआ है। जब विज्ञानवेत्ता घ्राण और रसना इन्द्रियोंके विषयमें भी खोजते हैं तो उनके विषयमें भी कुछ ही बातें समझमें आती हैं और आगे अन्धकार और सन्देहका पर्दा पड़ा रहता है। जब मनुष्य अपनी ही ज्ञानेन्द्रियोंके विषयमें अभीतक सम्पूर्ण गवेषण न कर सका, तब अन्य पशुओंमें यही इन्द्रिया कहातक काम करती हैं, इसका कैसे ठीक पता चल सकता है? हम बहुधा यही समझते हैं कि पशुओंकी भी ये इन्द्रियां हमारी सी ही होंगी। परन्तु वास्तवमें कई पशुओंके सम्वेदन हमारे सम्वेदनोंसे पृथक् होते हैं, उनके कई अङ्ग शरीरके असाधारण भागोंपर रखे हुए और कुछ अन्य सिद्धान्तोंके मूलपर गढे हुए हैं। कई जन्तुओंके नेत्र पीठपर और कान टांगोंमें होते हैं।

हम यह भी जानते हैं कि कई जन्तुओंमें एक इन्द्रिय प्रधान

है और बहुतोंमें दूसरी। कुत्तेमें घ्राणशक्ति बड़ी तीव्र होती है; चील्ह और गृध्रमें नेत्रशक्ति बड़ी तेज होती है। बहुत ऊपर उड़ते हुए वे पृथ्वीपर पड़ी वस्तुओंको देख लेते हैं। यह भी एक स्मरणीय बात है कि हमारे नेत्र कई रङ्गोंपर शीघ्रतर आकृष्ट होते हैं और बहुतोंपर देरसे। किरमिची रङ्गपर सबसे बादमें दृष्टि पड़ेगी; फिर लालपर, नारंगीपर, पीले, नीले और हरेपर। नेत्रको आकृष्ट करनेके लिये लालकी अपेक्षा हरा रङ्ग ७५० गुणा अधिकतर प्रिय होता है। इसीसे सम्भव है कि नाना प्रकारके जन्तुओंको पदार्थ भिन्न भिन्न रङ्गके दिखाई देते होंगे।

दृष्टिमें रङ्गोंकी श्रेणीहीका अन्तर नहीं है, किन्तु और भी कुछ है। इन्द्र-धनुषके सात रङ्ग दिखाई देते हैं और यद्यपि उसमें दोनों ओरके अन्तिम रङ्ग लाल और बैंजनी दिखाई देते हैं, परन्तु वे वास्तवमें अन्तिम रङ्ग नहीं हैं। ऐसी भी प्रकाश रश्मियां हैं जो यद्यपि हमें तो नहीं दिखाई पड़तीं, परन्तु उनके अन्तिम ओर छोरके रङ्ग लाल और बैंजनी नहीं होते। लालसे भी जो अग्रतर रङ्ग है वह एक यन्त्रसे दिखाई पड़ जाता है और बैंजनीके आगेके रङ्गका तो चित्रतक लिया जा सकता है। प्राणिशास्त्रज्ञोंने कई बार परीक्षा करके जान लिया है कि कई जन्तुओंकी दृष्टिमें बैंजनीसे आगेकी रश्मियां भी आ जाती हैं। यह एक बड़ा मनोहर विषय है कि कदाचित् ऐसे प्राणी कुछ अन्य रङ्गोंको भी देखते होंगे जो हम मनुष्योंको दृष्टिगोचर नहीं होते।

श्रवणके विषयमें भी ऐसी सम्भावना है कि कई जन्तु हमसे

स्पष्टतर ही नहीं सुनते हैं, बल्कि ऐसे शब्द जो हम सुन ही नहीं सकते वे भी इनको सुनाई देते हैं। स्वयं मनुष्योंमें भी श्रवणका कितना अन्तर रहता है। कोई कम सुनता है, कोई अधिक सुनता है। कुछ प्राणियोंमें तीव्र स्वर सुननेकी अन्योंकी अपेक्षा अधिक शक्ति होती है। कानके पर्देपर वायुकम्पनोंकी जो टक्कर पड़ती है उसीसे शब्द बनकर सुनाई देता है। एक सेकण्डमें जितने कम कम्पन होंगे, उतना ही शब्द गहरा होगा। शब्दकी लहरें ज्यों-ज्यों तेज होती हैं वैसे-वैसे ही शब्द तीव्रसे तीव्रतर होता जाता है। मनुष्यके कानमें जब एक सेकण्डमें लगभग ३५००० वायु कम्पन पहुंच जाते हैं तब श्रवणकी सीमा समाप्त हो जाती है। परन्तु सम्भव है कि पशुओंके कर्णोंमें ५०००० या १००००० कम्पन भी सुनाई देते हों। इस विषयमें प्राणिशास्त्रज्ञोंने बहुत कुछ अनुसन्धान किया है और कर रहे हैं।

कई कीड़े मकोड़ोंके दो नेत्रोंके अतिरिक्त उनके मध्यमें तीन नेत्र और होते हैं और वे त्रिकोणके आकारमें रचे हुए होते हैं। इन दो प्रकारकी आंखोंकी बनावट भिन्न-भिन्न होती है। इनका गोलक नेत्रके पृष्ठ-भागपर उल्टी दृष्टि डालता है, जैसे हमारे नेत्रोंमें होता है। परन्तु दूसरे प्रकारके नेत्रोंमें कई अङ्गस्थल होते हैं। खुर्दबीनसे देखकर एक एक नेत्रमें २०००० तक अङ्गोंका लोगोंने पता लगाया है। यह निश्चित किया गया है कि एक-एक अङ्गस्थल एक एक प्रकाश किरणका वहन करता है। इस स्थितिमें इन नेत्रोंसे देखा हुआ पदार्थ सीधा दीखता होगा। कुछ

र्गिक ही होगी। यह अपने अण्डोंको कौएके घोंसलेमें उसके अण्डोंके साथ चुपकेसे कौएकी अनुपस्थितिमें रख देती है। कौआ उन अण्डोंको अपना समझकर सेता रहता है और जब बच्चे निकल आते हैं तब भी कुछ कालतक उनको अपने ही समझकर आहार देता रहता है। जब उसका भ्रम दूर होता है तब वे बच्चे उड़कर कोयलोंमें मिल जाते हैं।

जब गधेके किसी अङ्गमें खुजली होती है, तब वह दूसरे गधेके उसी अङ्गमें जहां स्वयं उसे खुजली होती है, अपने मुंहसे रगड़कर खुजलाता है। दूसरा गधा कृतज्ञ होता है और उसका अभिप्राय समझ लेता है और वह भी उसकी खुजली शान्त कर देता है। इससे हमारे प्रान्तमें यह कहावत भी प्रख्यात है कि अमुक मनुष्यके गधाखुजाल चलती है; जिसका अर्थ यह है कि जब कोई मनुष्य मित्रोंद्वारा अपनी प्रशंसा करना चाहता है, तब पास बैठे हुए मित्रोंको प्रशंसा करने लगता है और वे अपनी बारी आनेपर उसकी प्रशंसा कर देते हैं।

जो पालतू पशु मनुष्य-समाजमें शताब्दियोंसे रहते आये हैं, वे तो मनुष्यकी सङ्गति और उसकी शिक्षा तथा प्रताडनसे इतने कुछ सुधर गये हैं कि उनकी मनुष्यके लिये उपयोगिता अनिवार्य्य हो गई है। घोड़े, बैल, ऊंट इत्यादि हमारे लिये बड़े आवश्यक और अनिवार्य्य हो गये हैं। किलकिला नामक पार्वत्य पक्षीकी समझ और अमयता सचमुच चकित करनेवाली है। सिंह मांसाहारी होता ही है। उसके दांतोंमें मांसके रेशे

फँस जाते हैं। उसको बड़ा कष्ट होता है। इसलिये वह मुख खोलकर लेट जाता है। किलकिला पक्षी वृक्षपरसे उड़कर उसके खुले हुए मुखमें प्रवेश कर जाता और फँसे हुए मासके रेशोंको चोंचसे निकाल निकालकर खाने लगता है और फिर उड़ जाता है। बाघको इतना आराम मालूम होता है कि वह जबतक किलकिला अन्दर रहता है, कभी मुख नहीं हिलाता। परस्परकी कितनी भयानक सेवा है। प्रकृतिकी लीला वैचित्र्य है। बल्कि यह कह देना भी कदापि अनुचित न होगा कि कई मनुष्योंकी अपेक्षा पशु अधिकतर सयाने होते हैं।

प्रकाश या चमक

देखने और मालूम करनेको तो जन्तुओंमें प्रकाश होता ही है। परन्तु कई अल्प प्राणियोंमें प्रकाशको बाहर दिखलानेकी भी शक्ति होती है। जुगनू तो हमारे देशमें प्रख्यात ही है। मेघाच्छन्न अन्धेरी रातमें जब यह पतङ्ग उड़ता है तो कितना चमकता है इसीलिये संस्कृत भाषामें यह द्योतक कहलाता है। कई अन्य कीट भृङ्गोंमें भी यही प्रकाश शक्ति होती है, जिसको वे आवश्यकता पड़नेहीपर काममें लाते हैं। और कई जीव भी इस प्रकाश-गुणको प्राप्त किये हुए हैं, परन्तु वह प्रकाश हमारी दृष्टिमें नहीं आता। रात्रिके समय कई सामुद्रिक नन्हे जन्तु, जैसे मैडूपी और क्रुस्टेशिया भी प्रकाश फैलाते हैं। समुद्रकी गहराईमें रहनेवाले कई जीवधारी भी प्रकाशक अङ्ग रखते हैं।

गिक ही होगी। यह अपने अण्डोंको कौएके घोंसलेमें उसके अण्डोंके साथ चुपकेसे कौएकी अनुपस्थितिमें रख देती है। कौआ उन अण्डोंको अपना समझकर सेता रहता है और जब बच्चे निकल आते हैं तब भी कुछ कालतक उनको अपने ही समझकर आहार देता रहता है। जब उसका भ्रम दूर होता है तब वे बच्चे उड़कर कोयलोंमें मिल जाते हैं।

जब गधेके किसी अङ्गमें खुजली होती है, तब वह दूसरे गधेके उसी अङ्गमें जहां स्वयं उसे खुजली होती है, अपने मुंहसे रगडकर खुजलाता है। दूसरा गधा कृतज्ञ होता है और उसका अभिप्राय समझ लेता है और वह भी उसकी खुजली शान्त कर देता है। इससे हमारे प्रान्तमें यह कहावत भी प्रख्यात है कि अमुक मनुष्यके गधाखुजाल चलती है; जिसका अर्थ यह है कि जब कोई मनुष्य मित्रोंद्वारा अपनी प्रशंसा करना चाहता है, तब पास बैठे हुए मित्रोंकी प्रशंसा करने लगता है और वे अपनी बारी आनेपर उनकी प्रशंसा कर देते हैं।

जो पालतू पशु मनुष्य-समाजमें शताब्दियोंसे रहते आये हैं, वे तो मनुष्यकी सङ्गति और उसकी शिक्षा तथा प्रताडनसे इतने कुछ सुधर गये हैं कि उनकी मनुष्यके लिये उपयोगिता अनिवार्य्य हो गई है। घोड़े, बैल, ऊंट इत्यादि हमारे लिये बड़े आवश्यक और अनिवार्य्य हो गये हैं। किलकिला नामक पार्वत्य पक्षीकी समझ और अभयता सचमुच चकित करनेवाली है। सिंह मांसाहारी होता ही है। उसके दांतोंमें मांसके रेशे

फँस जाते हैं। उसको बड़ा कष्ट होता है। इसलिये वह मुख खोलकर लेट जाता है। किलकिला पक्षी वृक्षपरसे उड़कर उसके खुले हुए मुखमें प्रवेश कर जाता और फँसे हुए मासके रेशोंको चोंचसे निकाल निकालकर खाने लगता है और फिर उड़ जाता है। बाघको इतना आराम मालूम होता है कि वह जबतक किलकिला अन्दर रहता है, कभी मुख नहीं हिलाता। परस्परकी कितनी भयानक सेवा है। प्रकृतिकी लीला वैढब है। बल्कि यह कह देना भी कदापि अनुचित न होगा कि कई मनुष्योंकी अपेक्षा पशु अधिकतर सयाने होते हैं।

प्रकाश या चमक

देखने और मालूम करनेको तो जन्तुओंमें प्रकाश होता ही है। परन्तु कई अल्प प्राणियोंमें प्रकाशको बाहर दिखलानेकी भी शक्ति होती है। जुगनू तो हमारे देशमें प्रख्यात ही है। मेघाच्छन्न अन्धेरी रातमें जब यह पतङ्ग उड़ता है तो कितना चमकता है इसीलिये संस्कृत भाषामें यह द्योतक कहलाता है। कई अन्य कीट भृङ्गोंमें भी यही प्रकाश शक्ति होती है, जिसको वे आवश्यकता पड़नेहीपर काममें लाते हैं। और कई जीव भी इस प्रकाश गुणको प्राप्त किये हुए हैं, परन्तु वह प्रकाश हमारी दृष्टिमें नहीं आता। रात्रिके समय कई सामुद्रिक नन्हे जन्तु, जैसे मेडूसी और क्रुस्टेशिया भी प्रकाश फैलाते हैं। समुद्रकी गहराईमें रहनेवाले कई जीवधारी भी प्रकाशक अङ्ग रखते हैं।

परन्तु जब उसको खुले नेत्र रखते हुए फांसेमें डालकर भेजा तो वह वापस आ गई। यही दशा कुत्तोंकी हुई। फेवर नामक व्यक्तिने जङ्गली मक्खियोंका भी ऐसा ही अनुभव किया। वह उनको काले बोरेमें बन्द कर डेढ़-दो मीलकी दूरीपर ले गये और उनको चक्राकारमें घुमाकर छोड़ दिया। पहचानके हेतु उनके रङ्ग लगा दिया गया था। उनमेंसे केवल तीन मक्खिया घरपर पहुच सकीं। उन्होंने ऐसी परीक्षाएं कई बार की। लगभग एक तृतीयाश मक्खिया लौट आई।

लार्ड आवरी फिर भी सन्तुष्ट नहीं हुए, क्योंकि एक तो दूरी अधिक नहीं थी, दूसरे सारी मक्खिया वापस न आ सकी, केवल एक तिहाई ही दिशाको पहचान सकी। उन्होंने चींटियों की भी इसी प्रकारकी परीक्षा की। बिलसे पचास गजकी दूरीपर उन्होंने चींटिया छोड दीं। वे इधर-उधर भटकती रहीं और बिलतक न पहुच सकी। कम-से-कम उनको चींटियोंमें तो दिशाके पहचाननेकी शक्ति नहीं मालूम दी। यहापर यह भी देखनेमें आता है कि जब हिमालयकी तराई वा आसपासके जलाशयोंमें हिम जम जाता है, तब वहाकी मुर्गाबिया पंजाब, राजपूताना, सयुक्तप्रान्त—बल्कि दक्षिणतक उडती हुई स्थान-स्थानके जलाशयोंमें चली जाती हैं। उनमें कईका तो शिकार कर लिया जाता है, कई जगह-जगह ठहर जाती हैं, परन्तु कई ग्रीष्म ऋतुके आगमनपर पुन तराई इत्यादिको लौट जाती हैं। ऐसा प्रतीत होता है कि दिशा पहचाननेकी शक्ति कई जन्तुओंमें किसी अश या सीमातक होती ही है।

जातियोंकी संख्या

लगभग २०००००० (बीस लाख) प्रकारकी जन्तुओंकी जातिया हैं, जिनका केवल बहुत ही न्यूनांश अद्यावधि नामाङ्कित और वर्णित हुआ है। जो जातिया लुप्त हो चुकी हैं उनकी संख्या और भी अधिक थी। भूगर्भ-विद्याके अनुसार भूगर्भके बारह कल्पक व्यतीत हुए हैं और प्रत्येक कल्पकमें एक प्रकारका भूमि-भाग या स्तर धरातलपर था। एक-एक कल्पकमें ऐसी अगणित जन्तु जातिया भूतलपर रह चुकी हैं जिनके मृतशरीर पृथ्वीके गर्भमें हैं। पूर्वकालीन कवियोंने कई ऐसे अद्भुत महानुभाव मनुष्योंका वर्णन किया है जो पाताललोकोंमें जाया करते और वहाकी विलक्षणताओंको देखकर विनोद या आनन्द लूटा करते थे। दण्डीके "दशकुमारचरित"में भूगर्भ-यात्राकी बड़ी मनोहर कहानी दी गई है। परन्तु विज्ञानशास्त्रने अब हमारे लिये ऐसी-ऐसी विचित्रताएं और अद्भुत बातें बतलायी हैं कि जो उन कवियोंको स्वप्नमें भी दृष्टिगोचर नहीं होती थीं। जो पशुजातिया अब लुप्त हो चुकी हैं, उनके विषयका ज्ञान मनुष्यको आधुनिक वर्त्तमान पशुजातियोंके ज्ञानसे भी कहीं न्यूनतर है। और इस समय विद्यमान कुछ विशिष्ट पशुओंका भी अभी पूरा पता नहीं लगा है। आधुनिक गवेषण और आविष्कार केवल परिचित जीवधारियोंहीके विषयमें हुए हैं।

अल्प जन्तुओंका महत्व

मनुष्य चाहे अपने आपको प्राणियोंमें सर्वोत्तम और अत्यन्त

दिनमें मनुष्य-सृष्टि ही लुप्त हो जाय। जख्मों और चीरफाड़के चिकित्सा-कार्योंमें भी कई प्रकारके जीव परमाणु ही हमारे कष्टोंको बढा देते हैं। जख्मोंके सड जानेका कारण यही है कि जीव-परमाणु हमारे जख्मों, क्षतों, फोडे-फुन्सियोंमें प्रवेश कर जाते हैं। कई चिकित्सा-वैज्ञानिकोंने इसीलिये कई औषधिया ऐसी खोज निकाली हैं जो इन सूक्ष्म जीवोंको मारकर क्षतोंको शीघ्र अच्छा कर देती हैं। टिंकचर आयोडीन स्वय जख्मको अच्छा नही करता, ज़ख्म तो प्रकृतिद्वारा अच्छा होता है। आयोडीनका कार्य तो यही है कि ज़ख्ममें जो ऐसे जीव-परमाणु उत्पन्न हो जाते हैं, जो उसके ठीक होनेमें कोई बाधा डालते हैं, उनको वह नष्ट कर देता है।

जन्तुओंमें दैहिक परिमाण

जन्तुओंमें दैहिक परिमाणसे अत्यन्त सूक्ष्म शरीरवालोंसे—जो बिना खुर्दबीनके नहीं दिख सकते—लेकर महाकायतकके होते हैं। कहा हैजे रोगका अत्यन्त सूक्ष्म जीव-परमाणु और कहा महाकाय अजगर! इस विषयमें भी प्रकृतिकी विचित्रताके नाना प्रकारके उदाहरण हैं। सींगवाली रे या स्केट मछली २५ फीट लम्बी और ३० फीट चौडी होती है। न्यूफाउन्डलेण्ड प्रदेशके आसपास एक ऐसी मछली होती है, जिसकी भुजाए लगभग तीस तीस फीटकी होती हैं। एक सिरेसे दूसरे सिरेतक वह साठ फीट विस्तृत होती है। जिराफ पशु बीस फीटतक ऊचा होता है। हाथी यद्यपि इतना ऊचा नहीं होता, परन्तु स्थूल

कितना होता है! मगर-मच्छ बीस फीटतक लम्बा होता है। पायथन २५ फीटतक होता है। अमेरिकाके एक स्थलका पशु टिरेनोसोरस, जो अब लुप्त हो गया है, १०० फीट लम्बा और ३० फीट उन्नत होता था। एक प्रकारकी ह्वेल मछली ७० फीटतक होती है। सीराल्डस् ह्वेल मछली ८०-६० तक पहुंच गई है।

पाशव शरीर पशु-रचनाकी विभिन्नताए

दैहिक परिमाणकी अपेक्षा दैहिक सघटनमें जन्तु और भी आश्चर्यजनक होते हैं। एक भृ गके २००० तक अङ्ग होते हैं। मनुष्य-शरीरहीमें लगभग २०००००० प्रस्वेद-छिद्र होते हैं जो चर्मको शरीरके अन्तर्भागसे मिलानेकी नलिया हैं। इनकी सयुक्त लम्बाई लगभग दश मीलकी है। नसों और रुधिर नाडियोंकी सयुक्त लम्बाईका तो कहना ही क्या, रुधिरमें अरबों खरबों बल्कि असख्य परमाणु होते हैं। एक एक परमाणुका आकार बडा मिश्रित और विचित्र है। मीनर्ट महोदय कहते हैं कि मनुष्यके मस्तिष्कके भूरे गूदेमें ६००,०००,००० पृथक् छिद्र या रन्ध्र हैं। पशु शरीरके बहुत अङ्ग प्रत्यङ्गोंकी मिश्रित रचना वर्णनातीत है, केवल खुर्दबीनहीसे उसका किसी सीमातक पता चल सकता है।

आयु

जन्तुओंके विषयमें अभीतक हमें कितना कम ज्ञान है इसका यह एक प्रज्वलित उदाहरण है कि उनका आयु सम्बन्धी परिचय हमें बहुत न्यून और अस्पष्ट है। अध्यापक लैंकेस्टर कहते हैं — "इस विषयके सम्बन्धके प्रमाणोंकी लघुता और अनिश्चितता

जिन जन्तुओंसे हम सुपरिचित हैं उनके लिये तो कोई ऐसा प्रश्न नहीं उत्पन्न हुआ। चौपायों, परिन्दों, मत्स्यों और रेंगनेवाले जन्तुओंके विषयमें तो इस बातके जाननेकी कठिनाई उपस्थित नहीं होती कि एक जीवाङ्ग (Organism) एक व्यक्तिगत प्राणी है या व्यक्तिगत प्राणीका कोई अङ्ग है। एक मक्खी अण्डा देती है। वह अण्डा धीरे-धीरे परिपक्व होकर पीप (Larva) और फिर कृमि बन जाता है और कृमि मक्खी हो जाती है। ऐसी दशामें अण्डा, पीप (Larva) कृमि और सम्पूर्ण जन्तु बनना ये सब स्पष्ट रूपसे एक व्यक्तिगत प्राणीके जीवनकी एकके पश्चात् अनुक्रमणकी स्थितिया हो गईं। परन्तु मच्छरके एक अण्डेसे कई मच्छर उत्पन्न हो जाते हैं। उसके अण्डेमें जो पीप परमाणु होता है उसके पुन परमाणु बन जाते हैं। यही चक्करमें डालनेवाली व्यवस्था हो जाती है। एक अण्डेसे एक जीव बन जाय तबतक तो व्यक्तित्वके जाननेमें कोई जटिलता प्रादुर्भूत नही होती, परन्तु जब उसमें भी कई जीव-परमाणु निकल पड़ें तब व्यक्तित्वमें बडी गडबड हो जाती है।

जूफाइट विभागके पदार्थ ऐसे होते हैं जिनमें उद्भिज और जन्तु दोनोंके गुण और धर्म्म पाये जाते हैं। इनमें व्यक्तित्व जान लेना और भी कठिन होता है। इस विभागके सुन्दर कीडे पौदों (वनस्पति) से ऐसे मिलते-जुलते होते हैं कि जब-तक इलिस नामक आङ्गल देशके प्राणि-विद्याके धुरन्धरने इनको जन्तु नहीं माना, ये उद्भिज ही समझे जाते थे। ऐसे सूक्ष्म जीव

वनस्पति माने जाते थे, इसमें कोई आश्चर्यकी बात न थी, क्योंकि इनकी टहनियोंके अन्तपर जो फाल होते हैं, उनकी बनावट जन्तुओंके शरीर-कीसी होती है और पानीके अल्प एनीमोनसे समानता रखती है। उनके भुजाए होती हैं जो आहारके पदार्थको ग्रहण कर लेती हैं और समस्त परिवारको खिलाकर पुष्ट करती रहती हैं। इन फालोंमेंसे कुछ अण्डे देते हैं। इस दशामें ये गर्भाशयकी नलिया मानी जाती हैं। परन्तु इस विभागके कई जीव समुदायसे पृथक् रहते हुए भी अपना स्वतन्त्र अस्तित्व रखते हैं। ऐसी विचित्र व्यवस्थामें इनका अस्तित्व व्यक्तिगत और सामुदायिक दोनों प्रकारका होता है।

एक प्रकारके जन्तु पानीमें तैरते हुए या लकड़ीके लट्ठों इत्यादिपर लगे हुए मिलते हैं। मिस्टर आल्मैनने इनमें व्यक्तित्व और सामुदायिकता या अङ्गत्व दोनों ही व्यवस्थाएं पायी हैं। जूफाइट विभागकी जेली मछलियोंमें भी यही बात पायी जाती है। इस विचित्र व्यवस्थाका ज्ञान पहले-पहल नारवे देशके प्राणि और उद्भिज-विज्ञानके प्रख्यात वेत्ता मिस्टर सारसने प्राप्त किया था। इंग्लैण्डके पासकी जेली मछलीका उदाहरण भी ऐसा ही अद्भुत है। उसका अण्डा नाशपातीकी आकृतिका बहुत छोटासा होता है। उसपर श्वेत बाल होते हैं। वह बालोंके द्वारा पानीपर तैरता रहता है। इसका एक विस्तृत अङ्ग आगेको रहता है। कुछ समयके पश्चात् यह अपने आप ही मुड जाता है। सीलिया (cilia) लुप्त हो जाता है। एक सिरेपर

जिन जन्तुओंसे हम सुपरिचित हैं उनके लिये तो कोई ऐसा प्रश्न नहीं उत्पन्न हुआ। चौपायों, परिन्दों, मत्स्यों और रेंगनेवाले जन्तुओके विषयमे तो इस बातके जाननेकी कठिनाई उपस्थित नहीं होती कि एक जीवाङ्ग (Organism) एक व्यक्तिगत प्राणी है या व्यक्तिगत प्राणीका कोई अङ्ग है। एक मक्खी अण्डा देती है। वह अण्डा धीरे-धीरे परिपक्व होकर पीप (Larva) और फिर कृमि बन जाता है और कृमि मक्खी हो जाती है। ऐसी दशामें अण्डा, पीप (Larva) कृमि और सम्पूर्ण जन्तु बनना ये सब स्पष्ट रूपसे एक व्यक्तिगत प्राणीके जीवनकी एकके पश्चात् अनुक्रमणकी स्थितिया हो गईं। परन्तु मच्छरके एक अण्डेसे कई मच्छर उत्पन्न हो जाते हैं। उसके अण्डेमें जो पीप परमाणु होता है उसके पुन परमाणु बन जाते हैं। यही चक्करमें डालनेवाली व्यवस्था हो जाती है। एक अण्डेसे एक जीव बन जाय तबतक तो व्यक्तित्वके जाननेमें कोई जटिलता प्रादुर्भूत नहीं होती, परन्तु जब उसमें भी कई जीव-परमाणु निकल पड़ें तब व्यक्तित्वमें बड़ी गड़बड़ हो जाती है।

जूफाइट विभागके पदार्थ ऐसे होते हैं जिनमें उद्भिज और जन्तु दोनोंके गुण और धर्म्म पाये जाते हैं। इनमें व्यक्तित्व जान लेना और भी कठिन होता है। इस विभागके सुन्दर कीड़े पौदों (वनस्पति) से ऐसे मिलते-जुलते होते हैं कि जब-तक इलिस नामक आङ्गल देशके प्राणि-विद्याके धुरन्धरने इनको जन्तु नहीं माना, ये उद्भिज ही समझे जाते थे। ऐसे सूक्ष्म जीव

अवश्य है तब कई मनुष्योंका चित्त इनकी ओर और भी विशेष रूपसे आकृष्ट हो जाता है। यदि प्रत्येक नन्हे पुष्पमें ऐसी शक्ति होती कि वह स्वयं अपने रङ्ग रूपका यथोचित कारण बता देता तो निस्सन्देह प्रकृतिकी महतीसे महती गुप्तताका मनुष्यको पता लग जाता—पता ही क्या लग जाना पूर्ण ज्ञान हो जाता। परन्तु यदि हममें वेदव्यास मुनि या प्लेटो और अरस्तू जितना भी ज्ञान या बुद्धि हो तो हम जबतक पुष्पोंका सावधानी और धैर्यपूर्वक पवित्र अध्ययन न कर हमें उनके विषयमें कुछ भी ज्ञान प्राप्त नहीं हो सकता। इस प्रकारके अध्ययनसे हम बहुत कुछ आशा रख सकते हैं। जितना कुछ थोडा या बहुत ज्ञान हमारे उद्भिज-शास्त्रज्ञोंने प्राप्त किया है उससे हम निश्चिन्त होकर मान सकते हैं कि वनस्पतिका पूर्ण इतिहास-ज्ञान हमें निश्व विषयक ऐसे अधिकसे अधिक और विस्तृतसे विस्तृत सच्चे विचार उत्पन्न करायेगा जिनको हमारी निरी कल्पनाशक्ति कदापि उपस्थित नहीं कर सकती।

वैसे देखा जाय तो उद्भिज्जोंके आकार, रङ्ग, रूप इत्यादिके बारेमें सदैवसे ही किसी-न-किसी प्रकारका अनुसन्धान होता चला आता है, चाहे वह पौराणिक प्रकारसे हो, चाहे वैज्ञानिक प्रकारसे। तुलसीके विष्णु भगवानके साथ विवाह होनेके पौराणिक वृत्तान्तसे हम परिचित हैं। इस कथानकका मूलतत्त्व उद्भिजका अनुशीलन ही जान पडता है, परन्तु इन एक-दो शताब्दियोंकी वनस्पतिके विषयकी वैज्ञानिक गवेषणाओंने हमें

मध्यमें एक या एकसे अधिक सूत होते हैं, जिनमें नन्हें डण्ठल और रेशे लगे रहते हैं। ऊपर-ही-ऊपर सिर होता है, जिसमें पुष्परेणु (पराग केसर) बनती है। (४) पुष्पके केन्द्रमें एक नन्हा डण्ठल होता है और उसके नीचे गर्भाशय होता है जिसमें एक या अधिक बीज लगते हैं।

लगभग सब बड़े पुष्प चमकीले रङ्गोंके होते हैं, कई मधु उत्पन्न करते हैं और बहुतोंमें मीठी सुगन्धि होती है। इस मिश्रित और पेंचदार बनावटका क्या प्रयोजन और उपयोग है, यह प्रश्न हमें हैरान करता है।

उद्भिजशास्त्रवेत्ताओंने यह माना है कि पुष्पोंके रङ्ग, सुगन्धि और मधुका प्रयोजन कीड़े-मकोड़ोंको आकृष्ट करना है जो पौधोंके लिये एक बहुत उपयोगी कार्य्य—एक पुष्पसे दूसरे पुष्पपर रेणु अर्थात् कुंकुम ले जानेका काम—करते हैं। ये कृमि मानों पुष्पोंका विवाह कराते हैं।

कई पौधोंमें कुंकुम वायुद्वारा ले जाया जाता है। आरम्भमें सब ही पौधोंमें यह वायुद्वारा ही ले जाया जाता है। जिन उद्भिजोंमें वायुद्वारा एक पुष्पका कुंकुम उसी पौधेके दूसरे पुष्पमें ले जाया जाता है उनमें यह डर बहुत रहता है कि कुंकुम पुष्पके बीचकी डण्डीमें जिसके नीचे गर्भाशय रहता है, ठीक मात्रामें पहुचे या नहीं, क्योंकि वायुके झोंकेसे वह इधर-उधर बहुत-सा बिखर जाता है। इसलिये ऐसे पौधोंमें बहुत कुंकुमकी आवश्यकता रहती है। यही कुंकुम पराग-केसर कहलाता है।

अधिकतर ज्ञान प्राप्त कराया है। इन गवेषणाओं और अनुशीलनोंमें सफलता भी बहुत कुछ हुई है।

वनस्पतिका यह नाना रूप क्यों है? सुन्दर आकारोंका यह अथाह भण्डार क्यों रचा गया है? क्या यह केवल प्रकृतिके सहज स्वभावहीके कारण हुआ है या यह सब सौन्दर्य्य मनुष्यके नेत्रों और यह सब सुगन्धि उसकी नासिकाके प्रसन्नार्थ निर्माण किये गये हैं? क्या पुष्पोंके आकार, रूप और बनावट सम्पूर्ण पौदेके आकार और बनावटसे समानताका सम्बन्ध रखते हैं? ये सब प्रश्न बड़े विचित्र हैं और उद्भिज शास्त्रके आचार्योंने इनके जो भिन्न-भिन्न उत्तर दिये हैं वे भी बड़े मनोहर और विचित्र हैं। परन्तु वे समझमें आ जाते हैं, और इसी कारण पुष्प-अनुसन्धानका विषय और भी चित्ताकर्षक और सुन्दर हो जाता है।

एक सम्पूर्ण पुष्प, उदाहरणार्थ जिरेनियमका पुष्प चार या अधिक छोटी या बड़ी पंखड़ियोंके बने हुए गुच्छोंका होता है। (१) सबसे छोटा गुच्छा अंग्रेजी भाषामें केलिक्स (Calyx) कहलाता है और पृथक्-पृथक् पंखड़िया—जिनका यह पुष्प बना हुआ होता है—कभी-कभी एक नलीमें मिली हुई होती हैं। इन पंखड़ियोंको सीपेल्स (Sepals) कहते हैं। (२) उससे बड़ा छोटे दूसरा गुच्छा, जिसकी पंखड़िया या पत्तिया रङ्गीन होती हैं कोरोला कहलाता है। दूसरे गुच्छेकी पखड़िया भी बहुधा नलीसे मिली हुई होती हैं। (३) छोटे-ही-छोटे बीचके गुच्छेके

मध्यमें एक या एकसे अधिक सूत होते हैं, जिनमें नन्हें डण्ठल और रेशे लगे रहते हैं। ऊपर ही ऊपर सिर होता है, जिसमें पुष्परेणु (पराग केसर) बनती है। (४) पुष्पके केन्द्रमें एक नन्हा डण्ठल होता है और उसके नीचे गर्भाशय होता है जिसमें एक या अधिक बीज लगते हैं।

लगभग सब बड़े पुष्प चमकीले रङ्गोंके होते हैं, कई मधु उत्पन्न करते हैं और बहुतोंमें मीठी सुगन्धि होती है। इस मिश्रित और पेंचदार बनावटका क्या प्रयोजन और उपयोग है, यह प्रश्न हमें हैरान करता है।

उद्भिजशास्त्रवेत्ताओंने यह माना है कि पुष्पोंके रङ्ग, सुगन्धि और मधुका प्रयोजन कीड़े मकोड़ोंको आकृष्ट करना है जो पौधोंके लिये एक बहुत उपयोगी कार्य्य—एक पुष्पसे दूसरे पुष्पपर रेणु अर्थात् कुंकुम ले जानेका काम—करते हैं। ये कृमि मानों पुष्पोंका विवाह कराते हैं।

कई पौधोंमें कुंकुम वायुद्वारा ले जाया जाता है। आरम्भमें सब ही पौधोंमें यह वायुद्वारा ही ले जाया जाता है। जिन उद्भिजोंमें वायुद्वारा एक पुष्पका कुंकुम उसी पौधेके दूसरे पुष्पमें ले जाया जाता है उनमें यह डर बहुत रहता है कि कुंकुम पुष्पके बीचकी डण्डीमें जिसके नीचे गर्भाशय रहता है, ठीक मात्रामें पहुंचे या नहीं, क्योंकि वायुके झोंकेसे वह इधर-उधर बहुत-सा बिखर जाता है। इसलिये ऐसे पौधोंमें बहुत कुंकुमकी आवश्यकता रहती है। यही कुंकुम पराग-केसर कहलाता है।

जिन वृक्षों और पौदोंमें कुंकुम वायु द्वारा एक पुष्पसे दूसरे पुष्पपर ले जाया जाता है, जैसे देवदार, वट, पीपल, एश इत्यादि वृक्षोंमें या बहुतसी जडी-बूटियोंमें, उनके पुष्प बहुधा छोटे, कम भड़कीले, हरे रंगको लिये हुये, सुगन्धरहित या मधुरहित होते हैं। दूसरे, इनमें पुष्प जल्दी निकल आते हैं ताकि रेणु पत्तोंसे न रोकी जा सके और अनायास ही अन्य पुष्पोंपर जा सके। इस लिये ऐसे उद्भिजोंके पुष्पोंमें रेणु बहुत होती है ताकि हवाके झोकेसे इधर-उधर बिखरकर भी वह पुष्पोंमें पर्याप्त मात्रामें पहुंच सके। परन्तु जिन पौधोंमें कुंकुम ले जानेका कार्य्य कीट पतंगों द्वारा होता है उनमें कुंकुमकी मात्रा न्यून होती है, क्योंकि कीट आदि थोडेसे कुकुमहीको पुष्पोंमें ठिकाने लगा देते हैं। यह रेणु या कुकुम ही मानो उद्भिजोंका वीर्य्य है। पुष्पोंमें नर और नारी दो प्रकारके होते हैं। नर-पुष्पोंका कुकुम अर्थात् वीर्य्य नारी-पुष्पोंके रजमें वायु या कीडों-मकोडो द्वारा मिला दिया जाता है। यही उद्भिजोंका मैथुन-कर्म है। इसीसे बीजोंकी उत्पत्ति होती है। उद्भिजशास्त्रमें इसी पुष्परेणुको पराग-केसर और गर्भकेसर (वीर्य्य और रज) कहते हैं। पुष्पोंमें जो मिठास होती है, उससे कीडे आदि आकृष्ट होते हैं, और पुष्पोंमें जो सुगन्ध और रङ्ग होते हैं, उनके द्वारा कीड़े उनको ढूढ लेते हैं। रात्रिके समय कीडे पुष्पोंको देख तो सकते ही नहीं, वे केवल उनकी सुगन्धिहीसे उनका पता पा लेते हैं। यही कारण प्रतीत होता है कि सायकालमें खिलनेवाले पुष्पोंकी गन्धमें अधिक

ठास होती है, क्योंकि उस समय अँधेरा हो जाता है, इसलिये ोडोंके द्वारा ही पुष्पोंका सौन्दर्य, सुवास और मिठास रची गई । जैसे माली लोगोंने वारम्बार छाटकर वाटिकाओंका सौन्दर्य ढाया है, इसी प्रकार कीडोंने अपने अज्ञात कार्यसे हमारे खेतों ौर जङ्गलोंके पुष्पोंकी सुरूपता, सुवास और मिष्टताको बढाया ै। उपर्युक्त सिद्धान्तोंको हम कुछ साधारण पुष्पोंपर लगाकर ीचे उनकी परीक्षा करते हैं। पहला उदाहरण श्वेत बीछूडा ौधेका लिया जाय। इस पौधेके पुष्पकी पखडियोंका दूसरा ुच्छा—जिसको कौरूला कहते हैं—एक सकीर्ण नलीका ोता है, जो ऊपरके भागमें कुछ विस्तृत होती है। वहापर एक समतलता सी होती है। उसके दोनों ओर एक-एक बाहर निकला हुआ दाँत होता है। कौरूलाका ऊपरी भाग एक महराबदार घूघट-सा होता है, जिसके नीचे दो दोके जोडे चार सूत लगे रहते हैं। उन दोनों जोडोंके बीचमें डण्डी रहती है। उसके नीचेके भागमें मिठास होती है और मिठासके ऊपर नलीमें गोल दौडते हुये बालोंकी कतार होती है। इस पुष्पकी ऐसी रचना होती है।

अब इस सघटनके विषयमें ये प्रश्न उठते हैं — पुष्पका ऐसा आकार क्यों है ? नलीकी लम्बाईका कारण क्या है ? महराबका क्या प्रयोजन है ? जो छोटे-छोटे दाँत हैं, वे हमें क्या बतलाते हैं ? नलीके अन्दर मधुके ऊपर बालोंकी झालर क्यों लगी हुई है ? सूतोंके ऊपर मुरमुरे (Stigma) क्यों झुके हुए

रहती हैं और पुष्प बन्द रहता है। परन्तु जब मधुमक्खी उसके ऊपर बैठकर अपनी सूंडको उसके अन्दर गाडती है तब पुष्प खिल जाता है और कुंकुमसे उसके शरीरको लेप देता है।

उपर्युक्त पुष्प एक बार खुलनेके पश्चात् पुन. बन्द नहीं होता। परन्तु मीठे मटर या कमलके पुष्पोंमें प्रकृतिमाताने और भी सावधानीसे कार्य्य किया है। जब मधुमक्खी ऐसे फूलपर उतरती है तब यह अपनी टंगडियोंसे उसकी पांखडियोको दबाती है। परन्तु फूल नीचे ही नीचेकी पांखडियों मे लिपटे हुए रहते हैं। इसलिये उन पंखड़ियोंको भी वह अपनी टंगडियोंकी शक्तिसे खोल देती है। इस प्रकार पुष्पके खुलनेपर उसका देह कुंकुममें सन जाता है और उसकी कुछ मात्रा मक्खीके उरुसे चिपक जाती है। जब मक्खी उस पुष्पको छोड़ देती है तब पुष्पकी पांखडिया ऊपर खडी होकर पुन बन्द हो जाती हैं और जबतक दूसरी मधुमक्खी न आवे अवशिष्ट कुंकुम को सुरक्षित रखती हैं। अपनी अङ्गुलियोंमें लगाकर भी हम दूसरे पुष्पोंपर कुंकुम पहुंचा सकते हैं।

बसन्ती गुलाब और (Cowslip) गोमुखीके पुष्पोंमें एक अन्य ही प्रकारकी रचना रक्खी गई है। यदि इन पौदोंके कई पुष्पोंका निरीक्षण किया जाय तो आधोंमें कुंकुमस्थल नलीके ऊपर और सूत्र नलीके अन्दर मिलेंगे और आधोंमें कुंकुमस्थल नलीके अन्दर और सूत्र नलीके ऊपर मिलेंगे। दोनों ही प्रकारके पुष्प बहुतायतसे मिलते हैं, परन्तु वे एक ही पौधेमें नहीं लगते।

बागवान इनको दो जातियोंके बतलाया करते हैं। डारविन महोदयने प्रथम बार इस अन्तरका कारण बतलाया था। उनको बहुत वर्षोंतक सधैर्य परिश्रम और अनुशीलन करना पडा था। परन्तु अन्तमें उन्होंने इस जटिलताको स्पष्ट कर दिखाया। व्यवस्था इस प्रकारकी है। जब मधुमक्खी बसन्ती गुलाबके लम्बे पुष्पोंमें अपनी सूंड गडाती है, तब उसकी सूडके ऐसे भागमें कुकुम लग जाता है कि जब वह छोटी जातिके पुष्पोंपर आकर सूड गडाती है, तब डण्डीके सिरके सामने वह भाग ठीक आ जाता है और उसके कुकुमस्थलपर कुछ न कुछ पहले पुष्पका कुकुम लग जाता है। इसके विपरीत जो मक्खी छोटी जातिके पुष्पमें अपनी सूंड नीचेके भागके कुकुममें लगा लेती है वह भाग लबी जातिके पुष्पपर जानेपर उसके भी डण्डीके सिरके सामने पहुंच जाता है। इस प्रकार इस सुन्दर बनावटके द्वारा एक प्रकारके पुष्पके कुकुमको मधुमक्खी दूसरे प्रकारके पुष्पमें और दूसरे प्रकारके पुष्पके कुकुमको पहले प्रकारके पुष्पमें लगा देती है।

कीट पतङ्गके द्वारा कुकुम पहुचाये जानेका पौधोंको यही लाभ नहीं है कि इसमें कुकुमका मितव्यय (किफायतशारी) होता है। अपितु एक दूसरा और भी भारी लाभ होता है। वह यह है कि एक ही जातिके दो पौदोंके पुष्पोंमें भी सङ्गम हो जाता है। एक पौदेके पुष्पोंहीमें पारस्परिक मैथुन नहीं कराया जाता, बल्कि एक जातिके कई पौदोंमें ये कीडे मकोडे पैवन्द चढा देते हैं। इसीका यह फल होता है कि कई पौदोंमें पुष्पोंके बीचकी

पुष्पोंमें दुर्गन्ध आती है। उनमें सङ्गमका कार्य्य ये मूर्ख मक्खियां ही कराती हैं। वे उस दुर्गन्धको मास आदिकी सड़ी बदबू समझ लेती हैं। कई निर्गन्ध पुष्पोंमें ये मक्खियां धूप और शीतसे शरण लेनेके लिये घुस जाती हैं। परन्तु उनमें जो बहुतसे सूत्र और बाल होते हैं वे उनको शीघ्र ही बाहर नहीं निकलने देते और तब उनपर कुंकुम बिखर ही जाता है। जब काफी कुंकुम उनपर लग जाता है तब सूत्र कुंकुमका बोझ हलका हो जानेके कारण सिकुड़ जाते और मक्खियां हवालातसे बाहर निकल जाती हैं और फिर दूसरे पुष्पोंपर इसी दशाको प्राप्त होकर कुंकुम छोड़ आती हैं।

पुष्पोंका पुराना इतिहास

जो सिद्धान्त यहांपर बताये गये हैं वे यदि सच्चे हैं तो यह मानना पड़ेगा कि आरम्भमें पुष्प छोटे और हरित रङ्गके थे, जैसे कि कई बड़े वृक्षोंके—जिनमें कुंकुम-सङ्गम वायुद्वारा होता है—अब भी हैं। ऐसे पुष्प सुस्पष्ट नहीं हो सकते। जो पुष्प रङ्गीन होते हैं जैसे श्वेत या पीत, वे अधिकतर स्पष्ट दिखाई देते और इसलिये उनपर कीट-पतङ्ग अधिकतर आते हैं। ऐसी व्यवस्थामें कई पुष्प जरद, कई श्वेत और कई लाल और नीले रङ्गके बन गये। लाल और नीले रङ्गके पुष्पमें विकास-सिद्धान्तका अधिकतर परिपक्वण हुआ प्रतीत होता है। लार्ड आवरीका अनुभव है कि मधुमक्खियां नीले और गुलाबी पुष्पोंपर अधिकतर मुग्ध होती हैं।

नलीदार पुष्पोंमे बहुधा मधु होता है और इसलिये वे भृङ्गों, कीडों,मधुमक्खियों और साधारण मक्खियोंको बहुत अच्छे लगते हैं। जिनमें कुंकुमसङ्गमका कार्य्य कीडे करते हैं वे बहुधा सायकालमें खिलते और बडी मीठी गन्धके होते हैं। उनका रङ्ग बहुधा श्वेत या हलका पीला होता है, क्योंकि ये रङ्ग सूर्य्यास्त-की लालिमामें बडे स्पष्ट दिखाई देते हैं।

सुप्रख्यात यूनानी विद्वान् अरस्तूने इस विचित्र बातका अवलोकन किया था कि एक यात्रामें मधुमक्खिया एक ही प्रकारके पुष्पोंका मधु लेती हैं। इसमें उनको ढूंढनेके परिश्रमका बचाव होता है। इससे पौधोंको भी लाभ होता है, क्योंकि एक ही जातिके पुष्पोंमें पारस्परिक कुंकुमसङ्गम होता रहता है। इसलिये कुंकुमका व्यर्थ व्यय होनेसे रुकता है।

फल और बीज

पुष्पके पश्चात् बीज होता है जो बहुधा फलमें लगा हुआ उत्पन्न होता है। फल और बीज बहुत सुन्दर और नाना प्रकार-से फैलते हैं। कई वायुके झोंकों द्वारा दूर गिरते हैं, जिनमेंसे बहुतोंके पक्ष होते हैं, जैसे शीशम, सिरस, एलम, साईके-मूर, सरकण्डा, घास इत्यादि या जिनमे बालदार मुकुट होता है, जैसे कपास, बेत, मदकरइया आदि।

कई बीजोंको मनुष्य और भोज्य पदार्थके लिये जीव जन्तु ले जाते हैं और विष्ठाद्वारा या खाकर मुखद्वारा पृथ्वीपर डाल देते हैं, जैसे आम, अमरूद, बेर, पीपल, बडवाला, घासके बीज

पत्तिया लगी रहती हैं, वास्तवमें पत्तीकी रीढ़ है और छोटी छोटी पाच पत्तियां उस वडी पत्तीके पांव भाग हैं जिसकी यह रीढ है।

पत्तियोंकी रचना, भेद और संगठन वनस्पतिशास्त्रका जितना मनोहर विषय है उतना ही विस्तृत भी है। यहाँपर उसका वर्णन करना एक प्रकारकी गड़वड मचाना है। यहा केवल हमें इतना ही प्रकट करना है कि जैसे पुष्पोंकी नाना प्रकारकी अद्भुत और सुन्दर रचनाएं हैं, वैसे ही पत्तियोंकी वनावटें आश्चर्य्य-जनक और सुन्दर हैं। परन्तु इन सबमें प्रकृतिने हिसाव और नियमसे काम किया है।

जलके वहुतसे पौदोंमें दो प्रकारकी पत्तिया होती हैं। कुछ थोडी-वहुत गोल होती और पानीपर तैरती हैं और कुछ छोटी छोटी कटी हुई सी होती हैं जो डूवी रहती और वहुत छीदी होती हैं। यदि वायुमें ऐसी पत्तिया होतीं तो वे स्वय अपना बोझ भी न सभाल सकतीं। वायुके झोंकेको तो सह ही कैसे सकती थीं। इसी कारण जलके अन्दरकी शान्त वायुमें कटे हुए पत्तोंको लाभ होता है और जो वायुके थपेडे खानेके लिये वाहर होते हैं वे उनकी अपेक्षा मोटे, वलिष्ठ और गोल होते हैं। इसी वायु प्रताडनसे वचनेके निमित्त छोटे पौधे विभक्त पत्तिया रखते हैं और वृक्ष और झाडिया पूर्ण पत्तिया रखते हैं।

ऐसे कई एक कारणोंका प्रभाव पौधोंकी अपेक्षा वृक्षोंपर अधिक पडता है, क्योंकि वृक्ष स्वावलम्वनसे पृथक्-पृथक् खडे

रहते हैं और छोटे पौधोंपर आसपासके पौधोंसे बचाव रहता है। उन्नत पत्तिया बहुधा तङ्ग और लम्बी होती हैं, जैसे कई प्रकारकी घासकी और फली हुई पत्तिया चौडी होती हैं।

पत्तियोंकी बनावटपर उस ढगका भी प्रभाव पडता है जिस ढंगसे वे कोंपलोंमें बन्द रहती हैं। ठण्डे देशोंके वृक्षोंकी पत्तिया इस बनावटकी होती हैं कि जिनपर जहातक सम्भव हो अधिकतर सूर्य्यप्रकाश पड सके और उष्ण देशोंमें उनकी रचना ऐसी होती है कि सम्भवत उनपर धूप कम पड सके। भारतवर्षमें गर्मी अधिक होनेके कारण वृक्षोंके पत्ते बहुधा घने होते हैं और सूर्य्योन्मुख नहीं होते। यहाके अधिकाश वृक्षोंकी पत्तियोंकी नोकोंपर सूर्य्यताप पडता है। यदि किसी ठण्डे देशका वृक्ष उष्ण देशमें लगा दिया जाता है तो उसकी पत्तियोंकी रचनामें भी अन्तर आ जाता है। वास्तवमें पत्तोंकी बनावट, वायु, ऋतु और स्थानके अनुसार होती है। 'धूप, छाया, गर्मी, सर्दी, ओस, कुहरा, हिम, वायु—इन सबका पत्तियोंकी रचनापर बडा प्रभाव पडता है।

बाल

पौदोंके बाल कई प्रकारकी उपयोगिता रखते हैं। (१) किसी पौदेमें बाल अधिकतर नमी (आर्द्रता) को रोकते हैं। (२) किसी पौदेमें जलको वाष्प बननेसे रोकते हैं। यदि पौदेमेंसे उष्णताद्वारा अधिकतर जल वाष्प बनकर निकल जाय तो पौदा शुष्क हो जाय। (३) किसीमें वे प्रज्वलित प्रकाशको रोकते हैं। (४)

च बजेके लगभग बन्द हो जाता है । लाल परीनेरिया नौसे तीन बजेतक विकसित रहता है। श्वेत कमल सातसे चार बजे-तक खुला रहता है । हाकवीड आठसे तीनतक खिलता है। फरमची पिमपरनैल सातसे दो बजेतक खिला रहता है।

यह तो स्पष्ट ही है कि वे पुष्प जिनमें पराग-केसरका सङ्गम रात्रिमें उडनेवाले और फिरनेवाले कीडोंके द्वारा होता है, दिनमें खिले रहनेसे कुछ भी लाभ नहीं उठा सकते और जिनमें सङ्गम-क्रिया मधुमक्खीद्वारा होती है, वे रात्रिमें विकसित रहकर क्या प्रयोजन सिद्ध कर सकते हैं, क्योंकि मधुमक्खियां रात्रिमें नहीं निकलतीं। इसलिये यह भी सम्भव है कि कई पुष्पोंका जागना और सोना उनमें कुंकुमका सङ्गम करानेवाले कीडो-मकोडो, भृङ्गों इत्यादिके स्वभावोंके अनुसार होता है। इसीसे जिन वृक्षोंके पुष्पोंमें पराग केसरका सम्मेलन वायुद्वारा होता है वे बहुधा सदैव खिले रहते हैं। उन्हें कीडोंके आगमनकी प्रतीक्षा करने-की आवश्यकता नहीं है। जो पुष्प सुगन्धिद्वारा कीडोंको आकृष्ट करते हैं, वे उसी विशिष्ट समयमें खिलते हैं जो कीडोंके आगमनका निश्चित समय होता है।

वर्षाके समय पत्तियोंका व्यवहार

वर्षाके सम्बन्धमें जो उद्भिजों और उनकी पत्तियोंके नाना भांतिके स्वभाव हैं वे भी बडे मजेके हैं । उनमेंसे यहांपर कुछ बताये जाते हैं। मूली, गाजर, चुकन्दर इत्यादिके पत्ते—जिनकी जड एक ही होती है—तनेकी ओर मुडे हुए होते हैं और उनके

एक बड़े भारी आचार्य्य हैं—उद्भिजोंमें जीवका होना प्रमाणित कर दिया है। अब हम निःसङ्कोच मान सकते हैं, पौदे और उनके पुष्प भी सोते हैं। कई पुष्प वर्षा होनेपर डियोंको बन्द कर लेते हैं। इससे यह लाभ होता है कि मधु और पराग-केसर जलसे घुलता या बहता नहीं है। तो एक रक्षाकी चेष्टा है, परन्तु हम देखते हैं कि जब वर्षा होती, तब भी कई पुष्प समय-समयपर अपनी नेत्रोंकी नाईं मूंद लेते हैं। वृक्षों और पौदोंकी पत्तियां समय-समयपर सिकुड़ी हुई और नीचे लटकती हुई आती हैं, मानों वे सो गई हों। हम हिन्दुओंने तो प्राचीन कालसे ही पौदोंमें जीव माना है। अब भी बहुतसे लोग रात्रि-समयमें उनके पत्ते नहीं तोड़ते और कहते हैं कि इस समय वे निद्रामें हैं। जैन धर्म्मावलम्बी तो इस विषयमें बड़ी सावधानी करते हैं, चाहे यह सर्वांशमें उचित न भी हो।

पुष्पोंमें भी कई सोते और कई नहीं सोते दिखाई देते हैं। हम इतना ही कह सकते हैं कि "सोते दिखाई नहीं देते", क्योंकि यदि उद्भिजोंमें निद्रा है तो सभी भांतिवालोंमें होनी चाहिये। बहुतोंके निद्रा लेनेके प्रकार अन्य रीतिके होते होंगे, जो हमें दिखाई नहीं देते। साधारण दृष्टिसे जो पुष्प हमें सोते हुए दिखाई देते हैं, उनका भी निद्राका समय समान नहीं है। डेजी इत्यादि पुष्प प्रातःकाल खिलते और सायकालमें बन्द हो जाते हैं। डैण्डेलियन पुष्पके लिये कहा जाता है कि वह सात बजे खुलता और

ाच बजेके लगभग बन्द हो जाता है। लाल परीनेरिया नौसे
ीन बजेतक विकसित रहता है। श्वेत कमल सातसे चार बजे-
क खुला रहता है। हाकजीड आठसे तीनतक खिलता है।
करमची पिमपरनेल सातसे दो बजेतक खिला रहता है।

यह तो स्पष्ट ही है कि वे पुष्प जिनमें पराग केसरका सङ्गम
ात्रिमें उडनेवाले और फिरनेवाले कीडोंके द्वारा होता है, दिनमें
खिले रहनेसे कुछ भी लाभ नहीं उठा सकते और जिनमें सङ्गम-
क्रिया मधुमक्खीद्वारा होती है, वे रात्रिमें विकसित रहकर क्या
प्रयोजन सिद्ध कर सकते हैं; क्योंकि मधुमक्खियां रात्रिमें नहीं
निकलतीं। इसलिये यह भी सम्भव है कि कई पुष्पोंका जागना
और सोना उनमें कुंकुमका सङ्गम करानेवाले कीडों-मकोडों,
भृङ्गों इत्यादिके स्वभावोंके अनुसार होता है। इसीसे जिन वृक्षोंके
पुष्पोंमें पराग केसरका सम्मेलन वायुद्वारा होता है वे बहुधा
सदैव खिले रहते हैं। उन्हें कीडोंके आगमनकी प्रतीक्षा करने-
की आवश्यकता नहीं है। जो पुष्प सुगन्धिद्वारा कीडोंको
आकृष्ट करते हैं, वे उसी विशिष्ट समयमें खिलते हैं जो कीडोंके
आगमनका निश्चित समय होता है।

वर्षाके समय पत्तियोंका व्यवहार

वर्षाके सम्बन्धमें जो उद्भिजों और उनकी पत्तियोंके नाना
भांतिके स्वभाव हैं वे भी बडे मजेके हैं। उनमेंसे यहांपर कुछ
बताये जाते हैं। मूली, गाजर, चुकन्दर इत्यादिके पत्ते—जिनकी
जड एक ही होती है—तनेकी ओर मुडे हुए होते हैं और उनके

वृक्ष देखनेमें आये हैं जो मनुष्य और बड़े पशुओंको भी चट जाते हैं। इस विषयपर कुछ वर्ष पूर्व 'सरस्वती' मासिक में विस्तारपूर्वक लेख निकला था। उस वृक्षकी मोटी मोटी चारों ओर लटकी रहती हैं। जब कोई पशु उसके निकट पहुंचता है, तब वे जड़ें सीधी होकर उसको दबोच लेती हैं और फिर मुड़ती हुई पशु-शरीरको प्रबलतासे मरोड़ देती हैं। वृक्ष जड़ों द्वारा मृत शरीरको इस प्रकार निचोड़कर रक्त इत्यादि पी लेता है जब केवल सूखी हड्डिया रह जाती हैं तब वे मुड़ी हुई जड़ें ढीली पड़ जाती और हड्डियां बाहर गिर पड़ती हैं। वृक्षके चारों ओर ढेरों अस्थियां पड़ी रहती हैं। भगवान्‌की विचित्रताओंका कुछ ही पता चला है, पूर्ण ज्ञान होना कदाचित् असम्भव ही रहे। रोएंदार पौधोंमें कुछ इस प्रकारके शिकार करनेवाले भी होते हैं। छोटे कीड़े रोओंमें फंसकर मर जाते और पौधेका आहार बन जाते हैं। विलायतका ब्लेडरवर्ट पौधा जिसके सुन्दर पीले पुष्प होते और जो इङ्गलैण्डमें छोटी नदियों और तालाबोंमें होता है मांसाहारी उद्भिज है। इसके कई थैलियां सी होती हैं। उनके मुंह पर एक ढकनसा होता है। पानीके छोटे छोटे कीड़े इन थैलियोंमें घुस जाते हैं, ढकन लग जाता है और बेचारे वहीं मारे जाते हैं।

पौधोंकी गति या चाल

उद्भिज जीवनका अवलोकन करते समय हमें केवल वृक्षों, पौधो और लताओंका ही ध्यान नहीं रखना चाहिये, अपितु उन अल्प और सूक्ष्म जीवोंका भी ध्यान रखना चाहिये जो

अनुवीक्षण यन्त्रके बिना दिखाई भी नहीं दे सकते। उनमें बहुतों-का आकार पौधोंका सा होता भी नहीं। पानीके सिवाल इतने घने और मिले हुए रहनेके कारण ही हमारे नेत्रोंको दीखते हैं, नहीं तो उनमेंसे केवल एक पौधा तो अनुवीक्षण-यन्त्र बिना कदापि दृष्टिगत नहीं हो सकता। उनके भी कई भेद होते हैं। बहुतोंकी रचना तो असंख्य सूक्ष्म छेदोंहीमें होती है, जो न समझनेवालेको जन्तुसे दिखाई देते हैं। गेहूं या जवके बढ़नेपर माघके अन्त तथा फाल्गुणके आरम्भमें जो गेरुआ (रोली) रोग लग जाता है, वह वनस्पति ही है। उसके परमाणु वातावरणमें उड़ते रहते हैं। जब मौसम बदरीला होता है तो वे अणु जव या गेहूंके पौधोंके पत्तोंपर उतर आते हैं। उस समय वे दिखाई नहीं देते, परन्तु वे इतनी शीघ्रताके साथ विस्तृत और वृद्धिङ्गत होते हैं कि एक सप्ताहमें खेतका खेत सिन्दूरी दीखने लगता है। गेरुआके परमाणु अनाजके पौधोंहीका आहार करके इतने फैल जाते हैं। वे अनाजके दानों, पत्तियों और डण्ठलोंतकके रसको चूस जाते और फसलका नाश कर देते हैं। वर्षाकालमें जब लगातार झड़िया रहती हैं, तब मकानोंकी छतों, दीवारों और आगनोंमें हरी और नीली काई जम जाती है। यह काई भी असंख्य वनस्पति परमाणुओंका समूह है। पानीमें तैरनेवाले कई सिवालोंके सूक्ष्म रोमावली होती है जिसके द्वारा वे तैरते रहते हैं। उनमें कहीं कहीं एक लाल धब्बा होता है जो प्रकाशको अधिकतर ग्रहण करता है। इस लाल धब्बेको हम नेत्र कह सकते हैं, जिसके द्वारा वे इधर-

वृक्ष देखनेमें आये हैं जो मनुष्य और बड़े पशुओंको भी चट कर जाते हैं। इस विषयपर कुछ वर्ष पूर्व 'सरस्वती' मासिक पत्रिका में विस्तारपूर्वक लेख निकला था। उस वृक्षकी मोटी मोटी जड़ें चारों ओर लटकी रहती हैं। जब कोई पशु उसके निकट पहुंचता है, तब वे जड़ें सीधी होकर उसको दबोच लेती हैं और फिर मुड़ती हुई पशु-शरीरको प्रबलतासे मरोड़ देती हैं। वृक्ष जड़ों द्वारा मृत शरीरको इस प्रकार निचोड़कर रक्त इत्यादि पी लेता है, जब केवल सूखी हड्डियां रह जाती हैं तब वे मुड़ी हुई जड़ें ढीली पड़ जाती और हड्डियां बाहर गिर पड़ती हैं। वृक्षके चारों ओर ढेरों अस्थियां पड़ी रहती हैं। भगवान्‌की विचित्रताओंका कुछ ही पता चला है, पूर्ण ज्ञान होना कदाचित् असम्भव ही रहे। रोएंदार पौधोंमें कुछ इस प्रकारके शिकार करनेवाले भी होते हैं। छोटे कीड़े रोओंमें फंसकर मर जाते और पौधेका आहार बन जाते हैं। विलायतका ब्लेडरवर्ट पौधा जिसके सुन्दर पीले पुष्प होते और जो इंग्लैण्डमें छोटी नदियों और तालाबोंमें होता है मांसाहारी उद्भिज है। इसके कई थैलियां सी होती हैं। उनके मुंह पर एक ढक्कनसा होता है। पानीके छोटे छोटे कीड़े इन थैलियोंमें घुस जाते हैं, ढक्कन लग जाता है और बेचारे वहीं मारे जाते हैं।

पौधोंकी गति या चाल

उद्भिज जीवनका अवलोकन करते समय हमें केवल वृक्षों, पौधों और लताओंका ही ध्यान नहीं रखना चाहिये, अपितु उन अल्प और सूक्ष्म जीवोंका भी ध्यान रखना चाहिये जो

सुरक्षित स्थानमें बीज पड जायं। कई पौधे अपने बीजोंको फेंक
ा गाड भी देते हैं।

छुईमुई—लाजवन्तीके पौधोंके पत्ते इतने नाजुक और सचेत
होते हैं कि तनिकसे छू जानेपर वे तत्काल सिकुड जाते हैं।
समोडियमके छोटे पत्ते सदैव घूमा करते हैं। अणुवीक्षण-यन्त्रसे
दिखाई देनेवाले परमाणुविक उद्भिज तो बहुधा आयुपर्य्यन्त ही
चला करते हैं। यही कारण है कि वर्षामें मकानोंपर लगी हुई
काई कितनी दूरतक कितने कम समयमें फैल जाती है।

हमारे ज्ञानकी अपूर्णता

जीवित उद्भिजोंकी साधारणत ५००००० पांच लाख जातियां
या भेद माने जा सकते हैं। इनमें एक भी उद्भिज ऐसा नहीं है
जिसकी रचना, उपयोग और जीवन इतिहास हमें पूर्णतया
ज्ञात हो। हमारे अजायबघरोंमें बहुत प्रकारके उद्भिज रक्खे हुए
हैं जिनके नामतक अभी वैज्ञानिकोंने नहीं निकाले हैं। इगलैण्ड,
जर्मनी, अमरीका आदि देशोंके कुशाग्रबुद्धि उद्भिज-शास्त्राचार्य
प्रति वर्ष कुछ न-कुछ नवीन पौधोंको ढूंढ लेते हैं और पूर्वमें
जाने हुए उद्भिजोंका भी अधिकतर ज्ञान प्राप्त कर लेते हैं। जिन
देशोंमें अभीतक गवेषणकारकोंका जाना बहुत कम हुआ है,
वहांके तो आधे भी पौधे नहीं जाने जा सके हैं। इनके अतिरिक्त
पृथ्वीके नीचेके भागोंमें जो भिन्न-भिन्न ... र रह
चुके हैं—ऐसे असख्य प्रकारके उद्भिज
नहीं है। यह गवेषण-विषय

उधर स्वतन्त्रतापूर्वक घूमते फिरते ऐसे उपयुक्त स्थान ढूंढ लेते हैं जहा वे अन्तमें अपना डेरा डाल देते हैं।

पूर्व कालमें समझा जाता था कि पौधोंमें प्रगति नहीं होती। वे स्थानको नहीं छोड सकते। जहा उगते वहीं रहते हैं। परन्तु आधुनिक उद्भिज शास्त्रवेत्ताओंने प्रमाणित कर दिया है कि ऐसा समझना भूल है। वास्तवमें जैसा कि डारविन महोदयने बताया है, पौधेका प्रत्येक बढ़नेवाला भाग सदैव प्रगतिके चक्करमें रहता है। लताओंके तनें कितनी फाँद मारते हैं। ककडीकी बेलको भूमिपर दूर-दूरतक पसरते कितनी थोडी देर लगती है। रताळू या सेमकी बेलको जब वृक्षकी सवारी मिल जाती है, तब वह कितनी छलाँगें भरती है। पत्तों और टहनियोंका बहुधा रात्रिको सिकुड़ जाना या लटक जाना भी प्रगति ही है। पुष्पका खिलना, फिर सिकुड जाना और फिर विकसित हो जाना भी एक प्रकारका सचलन है। व्हेलिसनेरिया नामक पौधा योरपकी नदियोंमें पाया जाता है। इसके नारी-पुष्पके लम्बा पेंचदार डंठल होता है। उसके द्वारा यह जलपर तैरता है। नर-पुष्पोंके ऐसे डठल नही होते और वे पौधेके निम्न भागमें लगते हैं। नर और नारी पुष्प इतने दूर दूर रहते हैं कि उनका सङ्गम होना असम्भव है। परन्तु प्रकृतिकी करतूत बडी विचित्र होती है। नर पुष्प नीचेके ननेसे स्वत ही टूटकर पानीके ऊपर नारीपुष्पोंमें आ आते और सङ्गम कर लेते हैं। तदनन्तर नारी-पुष्पका डण्ठल सिकुडकर नर-पुष्पको जलके पदेतक दबा देता है, ताकि वह

सुरक्षित स्थानमे बीज पड जाय। कई पौधे अपने बीजोंको फेंक या गाड भी देते हैं।

छुईमुई—लाजवन्तीके पौधोंके पत्ते इतने नाजुक और सचेत होते हैं कि तनिकसे छू जानेपर वे तत्काल सिकुड जाते हैं। डेसमोडियमके छोटे पत्ते सदैव घूमा करते हैं। अणुवीक्षण-यन्त्रसे दिखाई देनेवाले परमाणुविक उद्भिज तो बहुधा आयुपर्य्यन्त ही चला करते हैं। यही कारण है कि वर्षामें मकानोंपर लगी हुई काई कितनी दूरतक कितने कम समयमें फैल जाती है।

हमारे ज्ञानकी अपूर्णता

जीवित उद्भिजोंकी साधारणत ५००००० पाच लाख जातिया या भेद माने जा सकते हैं। इनमें एक भी उद्भिज ऐसा नहीं है जिसकी रचना, उपयोग और जीवन-इतिहास हमें पूर्णतया ज्ञात हो। हमारे अजायबघरोंमें बहुत प्रकारके उद्भिज रक्खे हुए हैं जिनके नामतक अभी वैज्ञानिकोंने नहीं निकाले हैं। इगलैण्ड, जर्मनी, अमरीका आदि देशोंके कुशाग्रबुद्धि उद्भिज-शास्त्राचार्य प्रति वर्ष कुछ न-कुछ नवीन पौधोंको ढूढ लेते हैं और पूर्वमें जाने हुए उद्भिजोंका भी अधिकतर ज्ञान प्राप्त कर लेते हैं। जिन देशोंमें अभीतक गवेषणकारकोंका जाना बहुत कम हुआ है, वहांके तो आधे भी पौधे नहीं जाने जा सके हैं। इनके अतिरिक्त पृथ्वीके नीचेके भागोंमें जो भिन्न-भिन्न कल्पकोंमें धरातलपर रह चुके हैं—ऐसे असख्य प्रकारके उद्भिज थे, उनका कुछ पता ही नहीं है। यह गवेषण विषय निस्सन्देह असीम है।

पांचवां अध्याय

जङ्गल और क्षेत्र

जङ्गल और क्षेत्रोंमें, रात तथा दिनमें, ग्रीष्म तथा शिशिरमें वृक्षोंकी छायामें बैठे हुए मनुष्यकी आत्मा जीवनकी उस गम्भीरताका अधिकतर ज्ञान प्राप्त करती है जिसको आकाश सूचित करता है। आत्माको विश्राम, जो केवल सौन्दर्य, आदर्श और पवित्रतासे प्राप्त होता है वहा मिल जाता है; भेद और दूरी, विचार और ध्यानमें लय हो जाते हैं।

सिसेरो कहते हैं :—

"गावोंका जीवन केवल इसीलिये आनन्दमय नहीं होता कि वहां अनाजके क्षेत्र और हरियाले गोचर, दाखमँढे और ... होते हैं; बल्कि वहा बाग और बगीचे, चौपायोंकी चराई, मधुमक्खियोंके झुण्ड, भाति-भातिके पुष्प इत्यादि बहुतसे सौन्दर्य होते हैं। लार्ड बेकनके विचारानुसार बाग मनुष्यकी आत्माको ताजगी पहुचानेका बहुत उत्तम स्थान है। बिना इसके विशाल भवन भी निकम्मा है।"

इसमें सन्देह नहीं कि वाटिकामें जो आनन्द अनुभूत होता है वह मानव-जीवनके अत्यन्त निर्दोष विनोदोंमेंसे है। साधारणतः जङ्गलोंमें कहीं हरित भूमि होती है, कहीं पुष्प होते हैं, परन्तु वाटिकामें हरियाली, पुष्पबहार, वृक्ष-सौन्दर्य, इत्यादि सब

एकत्रित कर दिये जाते हैं। सर्व प्रकारकी सुगन्धियां, स्वरूप, रङ्ग-बिरङ्गे पुष्प उपवनोंमें एक ही जगह मिला दिये जाते हैं। यहां बसन्ती गुलाब, सेवती गुलाब, जिरेनियम, बादशाह पसन्द, सूर्यमुखी, गुलमेंहदी, हजारा, चमेली, मोगरा, मोतिया, चम्पक इत्यादिका मिश्रण दिखाई देता है।

परन्तु वनों और उपवनोंकी शोभाओंकी न हम तुलना ही कर सकते हैं और न उसकी आवश्यकता ही है। किसी प्रकृतिके उपासकसे पूछा जाय—किसी स्वामी रामतीर्थके हृदयसे पूछा जाय, तब उत्तर मिलेगा कि जङ्गली पुष्पोंमें जो जादू है वह वाटिकाओंके पुष्पोंमें नहीं है। मनुष्योंद्वारा बगीचोंमें लगाये हुए पौधे निस्सन्देह अजायबघरोंमें रखे हुए शुष्क उद्भिजोंकी अपेक्षा बहुत कुछ अच्छे हैं। परन्तु जङ्गलों और क्षेत्रोंके प्राकृतिक पुष्प और फल लगाये हुए पौधोंके समक्ष क्या चीज हैं। उपवन और वाटिकाए तो मानों जङ्गली पौधों, वृक्षों और पुष्पों या फलोंके लिये कारावास हैं और हमारे लिये उदाहरणशालाए हैं। हममेंसे अधिकांश जङ्गलोंकी शोभा देखनेके लिये बिलकुल ही बाहर नहीं जा सकते, और जो कुछ लोग जा भी सकते हैं वे सदैव ऐसा नहीं कर सकते। इसीलिये नगरों और बस्तियोंके पास बाग बगीचे लगाये जाते हैं ताकि यदि हम जङ्गलोंकी वास्तविक शोभाको न देख सकें तो भी कम-से-कम उनकी कृत्रिम शोभाको—उनके नमूनोंको—देखकर तो अपनी आत्माओंको विश्राम और आनन्द पहुंचा लें। परन्तु कृत्रिम बाग बाग ही हैं और प्राकृतिक जङ्गल जङ्गल ही हैं। नमूना

आया ? यदि सावधानी और धैर्यसे अध्ययन किया जाय तो वेदान्तके ५० पृष्ठोंकी अपेक्षा नारङ्गीका फलों और पुष्पोंसे लदा हुआ एक पेड हमें अधिकतर ज्ञान दे सकता है। हम न अध्ययन करें तो हमारा फूटा भाग्य !

एक उद्भिज-विशेषका अन्य उद्भिज-विशेषके साथ सम्बन्ध भी एक ही प्रकारका नहीं होता। बरगद इत्यादि मोटे और घने पत्तेवाले वृक्षोंकी छायाके नीचे सिवाल और काईके अतिरिक्त और कोई पौधे भले प्रकार नहीं जम सकते। बबूलकी छाया जितनी दूरमें पडती है, उतनी दूरमें अनाजके पौधे बहुत बुरी दशामें रहते हैं। जैसे पहले कहा जा चुका है,जो या गेहूके पौधोंपर सूक्ष्म रोली (गेरुआ) इतना बुरा प्रभाव डालती है कि क्षेत्रका क्षेत्र नष्टप्राय हो जाता है। आकाशकी अमरबेल जिस वृक्ष या झाडपर फैल जाती है, उसका रस इतनी अधिक मात्रामें चूस लेती है कि वृक्ष अधमरा हो जाता है। दो चार भांति-भांतिके वृक्ष बराबरकी दूरीपर लगा दिये जाय। उनमें जो अधिक बढ जाते हैं वे अन्योंकी वृद्धिको बिगाड देते हैं। यदि एक वृक्षकी दो मोटा टहनिया उससे कम आयुवाले वृक्षकी खास टहनीपर झुक जाय तो वह इतना बुरा मानती है कि उनसे बचनेके लिये अपनी ऊद्र्ध्वगामी दिशाहीको बदल देती है। परन्तु कइयोंमें इससे विपरीत कार्य्य होता है। एकसे दूसरेको सहायता भी मिलती है। कई बराबर भी बढते हैं। शमी (खेजडी) वृक्षकी छायाके नीचे अनाज या छोटे फूलोंके पौधे बहुत बढते हैं। नींबू

और नारङ्गीके पेड़ पासपास बराबर बढ़ते रहते हैं। साईबीरिया-के जङ्गलोंमें लार्च और आरोला बड़े घनिष्ट साथी हैं। इङ्गलैण्डके जङ्गलोंमें कई ऐसे वृक्ष हैं। भारतमें भी अनुसन्धानसे सम्भवतः ऐसे वृक्ष मिल सकते हैं, जिनकी जड़ोंके अन्तिम भागोंमें एक प्रकारकी काई लगी रहती है। यह भी उद्भिज ही है। पहले ऐसा विचार किया जाता था कि यह काई उन वृक्षोंकी जड़ोंको काटकर उनको हानि पहुचाती है। परन्तु अब प्रमाणित हो गया है कि वे वृक्ष और काई पारस्परिक सहायक हैं। वह काई जिसे आवश्यक भोज्य-पदार्थ बटोरती है जो वृक्षमे जड़ोंद्वारा पहुचकर रस बन जाता है। यह रस वृक्षके काममे आता है और इसीका कुछ अवशिष्ट भाग पुन जड़ोंमें उतर आता है, जिसको काई अपना आहार बना लेती है।

इङ्गलैंड आदि शीतप्रधान देशों और भूमध्यरेखाके क्रान्तसीमा (Tropical) के अन्दरवाले देशोंके जङ्गलोंमें भी बड़ा अन्तर है। इङ्गलैण्डके जङ्गलोंमें कम प्रकारके उद्भिज हैं और उन जङ्गलोंमें थोड़ेही प्रकारके होते हैं। एक एक भातिके दो चार वृक्षोंहीसे समस्त जङ्गल भरा हुआ रहता है। परन्तु इंगलैण्डके वृक्षोंमें व्यक्तित्व और स्वतन्त्र स्वरूप है और वहाके वृक्ष इतने घने और सन्निकट हैं कि व्यक्तित्व दिखता भी नहीं। सब ही आपसमें ऐसे मिले-जुले और गुथे हुए होते हैं कि एक ही समूह बन जाता है। वृक्षोंके तने और स्कन्धतक छोटे पौधों, झाड़ियों और लताओंसे ढक जाते हैं। कहीं-कहीं तो पता भी नहीं चलता कि अमुक पुष्प और

मनुष्य द्वारा ही (प्रकृतिकी आज्ञा और प्रेरणासे) विगडकर वनमें पुनः परिणत हो जाती है। इस प्रतिक्रिया-कार्य्यमें समय चाहे कितना ही दीर्घ लगे परन्तु होता ऐसा अवश्य है। योरपका महासंग्राम इस सिद्धातका कितना प्रज्वलित उदाहरण है। वहा के सभी देशोमें जङ्गल काट काटकर गत एक दो शताब्दियोंमें कई सुन्दर वस्तियां वना ली गईं। परन्तु महा-सग्रामकी शतघ्नियों, सुरङ्गों, व्योमयानो इत्यादि अनेकानेक यन्त्रों द्वारा वे सब नष्टप्राय हो गये हैं, जहा अमेरिका आदि विदेशोंके लोग आकर अपनी कुतूहलदृष्टिको तृप्त करते हैं।

उसी फ्रांस देशमें जहाके दो विभागोंका ऊपर वर्णन किया गया है—कुछ भागोंमें उसके विपरीत कार्य्य किया गया था। उसका फल बड़ा उपयोगी हुआ। अर्थात् लैंड्रस प्रान्तमें जहां पचास वर्ष पूर्व बहुत दुर्दशा थी, वहां सनोवर वृक्षोंकी घनी खेती करनेके कारण वह बहुत सम्पन्न और सुन्दर स्थान बन गया। वहा एक अरब फ्राककी आय बढ़ गई। जहा कुछ सहस्र हीन और अस्वस्थ गड़ेरिये लोग और उनके परिवार रहते थे, जिनकी भेंड बकरी रूखी-सूखी घास-बूटी चरा करती थी, वहा लकडी, कोयला और ताडपीन तेलके विशाल कारखाने बन गये। बहुमूल्य खेतीके मैदान बन गये। अच्छी बस्तियां बस गई। (फ्रास देशके उपर्युक्त दोनों वर्णन लगभग सन १९६० के समयके हैं।)

पंजाबमें दुआबकी भूमिमें भी ऐसा ही परिवर्तन हुआ है। वह

स्थान जो कोसोंतक उजाड़ पड़ा हुआ था, वृक्षारोपणके द्वारा बहुत सुन्दर वस्तियों और धान्य-क्षेत्रोंमें परिणत हो गया और वहां लाखों रुपयेकी आय हो गई है। इसी प्रकारके परिवर्त्तन अधिक या न्यूनांशमें सब देशोंमें होते आये हैं और उनका वैसा ही अच्छा या बुरा फल भी मिलता रहा है।

पौधों, लताओं और वृक्षोंसे सुसज्जित वनोंकी मनुष्यके लिये पुष्प, फल, औषध, लकड़ी, कोयला, इत्यादिके द्वारा उपयोगिता है, यह तो स्पष्ट ही है, परन्तु उनके सौन्दर्य और शोभासे हमें आध्यात्मिक लाभ कितना भारी होता है। उनसे प्रकृतिके विस्तार और बाहुल्यका हमें कितना सरूप उदाहरण मिलता है। वृक्षोंकी उदारता और साथ ही व्यर्थ व्यय कितने सराहनीय हैं। एक वृक्ष या पौधा ढेरों पुष्प फेंक देता है। एक वृक्ष उदारतापूर्वक पशुपक्षियों और मनुष्योंको प्रत्येक वर्ष मनों फल प्रदान करता है। उदारता इनके सिवा हम किस गुरु या आचार्यसे सीखे ? हम उसपर पत्थर फेंकते हैं और वह हमें बदलेमें स्वादिष्ट और सुगन्धित फल देता है। गुलाबके पौधेको जो काटने लगता है, उसको भी वह सुगन्धसे तृप्त किये बिना नहीं रहता। बीजोंके बाहुल्यका भी क्या कहना! एक-एकके अगणित बीज लगते और चारों ओर फैलते हैं। पत्तियोंकी तो भरमार है, एक वट-वृक्षमें आवश्यकतासे अधिक लाखों पत्ते होते हैं, जिनको वह प्रतिदिन बेपरवाहीके साथ फेंकता रहता है। मितव्ययके पाठका उद्भिजोंपर कोई

छोड देते हैं। परन्तु कई वृक्षोंकी आयु बडी
है। इटली देशकी राजधानी रोमनगरको वसानेवाला
जिस अञ्जीर वृक्षके नीचे भेड़ियेके दूधसे पाला गया था,
८४० वर्षतक बादशाह नीरोके समयतक था। इससे भी
तर प्रमाणित आयु लम्बारडीके एक सोम सरू वृक्षकी
जाती है। वह अब १२० फीट ऊंचा और २३
परिधिमें विस्तृत है। यह ईसा मसीहके जन्मसे ४० वर्ष
उगा हुआ है। वह अब १९९६ वर्षका हो गया है। कहा
है कि बादशाह फ्रांसिस प्रथमने पडुवाके संग्राममें हारकर
शासे विह्वल होकर इस वृक्षके तनेमें तलवार घुसेड दी
नैपोलियन बोनापार्टने आक्रमणके समय इस वृक्षको
उधरकी ओरका मार्ग ही बदल दिया था। नर्मदा तट
के नीचे कई बादशाही सेनाओंका निवास रह चुका
आर्डिनीज पर्वतमें एक ओक वृक्ष १८२४ सन्‌में काटा
था। उसके तनेमें बहुत पुराने सिक्के निकले थे। उस
एक अनुसन्धान-कर्त्ताने इस वृक्षके लिये सम्मति दी
जिस समय रोम नगर बसा था उस समय भी यह बहुत
था। डी कन्डोल नामक अंग्रेजने विलायती वृक्षोंकी
विषयमें निम्नलिखित सारणी दी है:—

आईवी	४५०	वर्ष
लार्च	५७०	"
प्लेन	७५०	"

लैबाननका सीडार	८००	वर्ष
नीबू	११००	"
ओक	१५००	"
टैक्सोडियम डिस्टीकम	४००० से ६०००	वर्षतक

कदाचित इनमें कुछ अन्तर भी हो तोभी कुछ वर्ष कम मान लिये जायं। फिर भी उद्भिजोंकी आयु आश्चर्य्यजनक है। स्वयं मेरे गढके द्वारके बाहर तीन वटवृक्ष १०० वर्ष पूर्वके लगाये हुए हैं। अभी तो वे यौवनमें हैं। मेरी रायमें उनका दो शताब्दीतक भी कुछ नहीं बिगडेगा। कदाचित् वे इससे भी अधिक कालतक जीते रहेंगे।

जङ्गली दृश्योंमें जिनके कई उदाहरण इस अध्यायमें दिये जा चुके हैं, सब ही मनोहर हैं, परन्तु जो जङ्गल किसी पहाड़ आदि उन्नत स्थलमें सघनतासे उतरती हुई हरित भूमिमें नीचेकी ओर धीरे-धीरे खुले क्षेत्रोंमें थोड़े और दूरस्थ वृक्षोंमें परिणत होता आता है, उसकी छटा अत्यन्त है। उस दृश्यका चित्र बडा मर्म्मस्पर्शी होता है। कुछ नीचे पृथकता और फिर नीचे खुले मैदानमें स्थित वृक्ष, घास दूर्वासे छाई हुई हरित भूमि, निर्मल जलाशय, कहीं-कहीं झरने, रङ्गबिरङ्गे पौधे, बीच-बीचमें शस्यसुशोभित क्षेत्र, पक्षियोंकी भांतिकी मनोहर ध्वनियां, ऊपर नीलाम्बर, चढते हुए ... प्रताप, नीचे-ही-नीचेके गोचरमें हरी घास, चरते हुए पशु

छोड देते हैं। परन्तु कई वृक्षोंकी आयु बडी आश्चर्यजनक है। इटली देशकी राजधानी रोमनगरको बसानेवाला बादशा जिस अञ्जीर वृक्षके नीचे भेडियेके दूधसे पाला गया था, ८४० वर्षतक बादशाह नीरोके समयतक था। इससे भी अधि तर प्रमाणित आयु लम्बारडीके एक सोम सरू वृक्षकी बत जाती है। वह अब १२० फीट ऊंचा और २३ फीट परिधिमें विस्तृत है। यह ईसा मसीहके जन्मसे ४० वर्ष पूर्व उगा हुआ है। वह अब १९६६ वर्षका हो गया है। कहा ज है कि बादशाह फ्रांसिस प्रथमने पडुवाके संग्राममे हारकर नि शासे विह्वल होकर इस वृक्षके तनेमें तलवार घुसेड दी नैपोलियन बोनापार्टने आक्रमणके समय इस वृक्षको बचानेके उधरकी ओरका मार्ग ही बदल दिया था। नर्मदा तटके के नीचे कई बादशाही सेनाओंका निवास रह चुका आर्डिनोज पर्वतमें एक ओक वृक्ष १८२४ सन्‌में काटा था। उसके तनेमें बहुत पुराने सिक्के निकले थे। उस स एक अनुसन्धान-कर्त्ताने इस वृक्षके लिये सम्मति दी थी जिस समय रोम नगर बसा था उस समय भी यह बहुत था। डी कन्डोल नामक अंग्रेजने विलायती वृक्षोंकी अ विषयमें निम्नलिखित सारणी दी है —

आईवी	४५०	वर्ष
लार्च	५७०	"
प्लेन	७५०	"

तर, प्रसन्नतर और पवित्रतर ज्ञात होती है। वहां नदियोंके प्रवाह, सरोवरोंकी शान्ति, पवित्र हिमक्षेत्र और तैरते हुए हिम-खण्ड, स्वच्छ वायु, पर्वतोंकी जादूभरी चोटिया, दूर दृष्टिकी नीलिमा, प्रातःकालीन रङ्ग और सायकालकी प्रतिमा, गगन-मण्डलकी कान्ति और वायुवेगकी विशालता हमें आनन्दित और मुग्ध कर देती हैं और उनकी स्मृति हमारे मस्तिष्कसे नहीं हट सकती है।

ऊपर नीला आकाश, पर्वतपर लाल और भूरे पत्थरों और उनपर जड़े हुए हिमकी चमक, इधर-उधर खड़े देवदार, नीचे बिछी हुई हरियाली, उसपर खिले हुए नाना भांतिके सुगन्धित पुष्प, फिर नीचे गिरी चट्टानें, फिर हरे-भरे जङ्गल, नीचे घाटी, उसके नीचे हरे मैदान, चादीसी चमकती हुई बहती नदियां, चिड़ियोंकी चहक, जलका मधुर कलकल और भीषण घरघर—ये सब कैसे आनन्ददायक हैं! इनको साक्षात् देखना तो आनन्ददायक है ही, परन्तु मरुभूमिमें बैठे इनकी कल्पना करना भी कितना हर्ष-दायक है। पदार्थों के अनन्त रूप और भेद, शान्ति तथा प्रचण्डताके दोनों ही विरोधी भाव, पुरातत्वकी विशालता, यौवनकी शक्ति, रङ्गकी क्रीडा, आकारका सौन्दर्य्य, उनके सघटन और रचनाकी अद्भुतता—इन सब बातोंने पर्वतोंको गम्भीर सौंदर्यसे भर रखा है। रस्किन महाशयने कितना [illegible] प्राकृतिक दृश्यावलीके पर्वत आरंभ [illegible]

जैसा कि [illegible] यह एक

छठा अध्याय

पर्वत

"ऐसा प्रतीत होता है कि पर्वत मनुष्यजातिके लिये दुर्ग और अध्ययनशालाओंके रूपमें बनाये गये हैं। विद्यार्थीके लिये पर्वत हस्तलिखित प्रज्वलित ग्रन्थोंके भरे भण्डार हैं, कार्यार्थीके लिये वे सीधी-सादी शिक्षाके पाठ हैं, विचारशीलके लिये वे शान्त मठ और तहखाने हैं, उपासककी उपासनाके लिये वे देदीप्यमान आधार हैं, जिनमें चट्टानोंके द्वार, बादलोंका फरश (आँगन), पत्थर और जलधाराकी भजनमण्डली, हिमकी वेदिया और तारोंके चारों ओर घूमनेके बैंजनी मेहराव हैं। वे पर्वत इस पृथ्वीके दुर्ग हैं।"

—रस्किन।

हममेंसे बहुतोंके लिये पार्वत्य स्थान हर्ष और शान्ति, स्वास्थ्य तथा जीवनतककी अथाह सामग्री हैं—अनन्त द्वार हैं। जब लोग वहा जाते हैं तब कितने परिश्रान्त, जर्जर शरीर और अस्वस्थ रहते हैं। परन्तु जब वे ही वहा कुछ दिन रहकर वापस लौटते हैं, तब कितने हृष्टपुष्ट और सशक्त होकर आते हैं। निस्सन्देह हमारे सूक्ष्म तथा स्थूल शरीरपर पार्वत्य जीवनका बडा अच्छा प्रभाव पडता है। पर्वतोंमें प्रकृति स्वय और स्थानोंकी अपेक्षा स्वतन्त्र-

तर, प्रसन्नतर और पवित्रतर ज्ञात होती है। वहां नदियोंके प्रवाह, सरोवरोंकी शान्ति, पवित्र हिमक्षेत्र और तैरते हुए हिमखण्ड, स्वच्छ वायु, पर्वतोंकी जादूभरी चोटियां, दूर दृष्टिकी नीलिमा, प्रातःकालीन रङ्ग और सायंकालकी प्रतिमा, गगनमण्डलकी कान्ति और वायुवेगकी विशालता हमें आनन्दित और मुग्ध कर देती हैं और उनकी स्मृति हमारे मस्तिष्कसे नहीं हट सकती है।

ऊपर नीला आकाश, पर्वतपर लाल और भूरे पत्थरों और उनपर जड़े हुए हिमकी चमक, इधर-उधर खड़े देवदार, नीचे बिछी हुई हरियाली, उसपर खिले हुए नाना भांतिके सुगन्धित पुष्प, फिर नीचे गिरी चट्टानें, फिर हरे भरे जङ्गल, नीचे घाटी,उसके नीचे हरे मैदान, चांदीसी चमकती हुई बहती नदियां, चिड़ियोंकी चहक,जलका मधुर कलकल और भीषण घरघर—ये सब कैसे आनन्ददायक हैं! इनको साक्षात् देखना तो आनन्ददायक है ही, परन्तु मरुभूमिमें बैठे इनकी कल्पना करना भी कितना हर्षदायक है। पदार्थों के अनन्त रूप और भेद,शान्ति तथा प्रचण्डताके दोनों ही विरोधी भाव, पुरातत्त्वकी विशालता, यौवनकी शक्ति, रङ्गकी क्रीड़ा, आकारका सौन्दर्य्य, उनके संघटन और रचनाकी अद्भुतता—इन सब बातोंने पर्वतोंको गम्भीर सौंदर्यसे भर रखा है। रस्किन महाशयने कितना उचित कहा है कि प्राकृतिक दृश्यावलीके पर्वत आरम्भ और अन्त हैं।

जैसा कि गत दो अध्यायोंमें बताया जा चुका है, यह एक

अतिशयोक्ति नहीं बल्कि सत्य बात है कि समतल स्थानोंकी अपेक्षा पर्वतोंमें उत्पन्न हुए पुष्प अधिकतर रङ्गीन, चमकीले और सुगन्धयुक्त होते हैं। यही नहीं कि पर्वतोंमें उत्पन्न होनेवाले पुष्पोंमें ही यह रूप, रंग और गन्धकी विशेषता है, किन्तु वे ही पौधे जो पर्वतोंमें होते है, यदि निम्नस्थित प्रदेशोंमें लगा दिये जाय तो उनके पुष्पोंमें यह बात नहीं रहती। पर्वतके पुष्पोंके नाम तो यहा क्या बताये जा सकते हैं, वे अगणित हैं, परन्तु फिर भी हम कुछ नाम (देशीय तथा विदेशीय) देते हैं जो पहिले भी दो एक स्थानमें दिये जा चुके हैं— गुलेलाला, मीठा तेलिया, सालिइ मिश्री, वनफशा, कई प्रकारके गुलाब, चम्पक, केतकी, जुही, ममीरा, गुलबहार, ब्रह्मकमल, केसर, इब्रसू, अनीमोन, जेनशियन, रोडोडनडन, गोमुखी, कोलम्बीन, नरगिस, कम्पातूला, सोल्डानेला, इत्यादि।

पर्वतोंमें रङ्गका भी बड़ा चमत्कार है। पर्वतोंमें बैंजनी,गुलाबी, गहरे नीले और श्याम रङ्गकी आभायें दिखती हैं। नीचे स्थलोंमें हमें केवल आकाशकी नीलिमा, उद्भिजोंकी हरियाली,वृक्षोंकी चोटियों तथा छिलकोंपर तीसरे प्रहरके ढलने सूर्यके प्रकाशसे बैंजनी रंगकी भी कई झाइयां दिखती हैं। जोते हुए खेतोंमें धुधलापन तथा श्यामता रहती है। दिनके अस्त होते समय लालिमा भी अवश्य छा जाती है। परन्तु पर्वतोंकी रङ्गीनी और भी बढ़कर है। वहा दूर-दूरतक स्वच्छ बैंजनी और गुलाबी रङ्ग दिखाई देते हैं। ऊपर बादलोंके गमनागमनसे नीचेकी धुंधली

कन्दराओंमें बडी हलकी नीलिमा दिखती है। ये नीले और बैंजनी रङ्ग ऊपरकी शिखाओंपर भीनी लालीमें परिवर्त्तित हो जाते हैं।

पर्वतोंकी शोभाके दर्शनका स्वामी रामतीर्थका बडा मनोहर अनुभव है, जो यहा उद्धृत किया जाता है—(विस्तारभयसे वे वाक्य जो निर्दिष्ट विषयसे कम सम्बन्ध रखते हैं, छोड दिये गये हैं) "आरम्भमें हमें छोटीसी यमुनाको तीन-चार बार पार करना पडा, फिर पैंतालीस गज ऊंचा और डेढ फरलाग लम्बा एक बर्फका बडा ढेर दिखाई दिया, जिसने यमुनाकी घाटीको रोक रखा था। दोनों तरफ दो सीधी दीवालोंकी तरह पहाड़ खडे थे, क्या इन्होंने आपसमें सलाह कर ली थी कि राम बादशाहको आगे न बढने देंगे? कुछ परवा नहीं। . पश्चिम तरफकी पहाडी दीवालपर हमलोग चढने लगे। कभी कभी सुवासित, परन्तु कांटोली गुलाबकी झाडियोंको पकडकर और 'चा' नामी घासके सहारेपर अपने अगूठोंको टिकाकर हमें शरीरको संभालना पडता था। किसी-किसी समय हममें और मृत्युमें केवल एक इञ्चका अन्तर रह जाता था। . इस तरह पौन घण्टेके लगभग हमको मौतके मुहमें चलना पडा। इस विकट और विचित्र साहससे हम अन्तमें उस प्रचण्ड बर्फके ढेरके पार पहुचे। यहासे यमुनाका साथ छूट गया। एक सीधे पहाडपर चढाई करनी पड़ी एक उग्र घने वनसे होकर निकले ...देह कई जगह छिल गई। इस वनमें एक घण्टा दौड-धूप करके हमलोग

खुले मैदानमें पहुचे जहा छोटे-छोटे वृक्ष उगे हुए थे। हवा चदली हुई थी परन्तु मधुर सुवाससे भरी हुई थी।......चारों ओरके सुन्दर दृश्य, मनोहर पुष्पसमूह और हरियाली की भरमारने मार्गकी कठिनाईको भुला दिया। मण्डलीके सभी लोगोंको खूब क्षुधा लगी। इस समय हमलोग ऐसे प्रदेशमें पहुच गये थे जहा मेघ:जलरूप वृष्टि कभी नहीं करता, परन्तु यथेष्ट वर्फरूपमें गिरता है। भोजन करनेके पश्चात् हम फिर चल पडे। ..(जगह-जगह उनके तीन-चार साथी परिश्रान्त होकर ठहरते गये) आगे चलते-चलते श्वासोच्छ्वासकी वायु बहुत सूक्ष्म हो गई थी। जिस समय यहांपर दो गरुड पक्षी हमारे सिरके ऊपर उडते हुए निकले, हमें वडा आश्चर्य हुआ। यहा एक गहरे नीले रङ्गकी पुरानी वर्फसे ढकी हुई दुःखदायी शिलापर चढना वाकी था। कुल्हाडीसे एक साथीने उसमें सीढ़िया बनाना आरम्भ किया, परन्तु वह भी टूट गई। उसी समय हमें एक वर्फके तूफानने आ घेरा। उसने हमारे मार्गको सुगम बना दिया। नोकदार जगली लकडियोंकी सहायतासे हम उस ढालू चट्टानपर चढ गये और फिर जो कुछ हमने देखा उसका क्या कहना है! वस, हमारे सामने एक खूब लम्बा चौडा सपाट और विस्तृत मैदान वर्फसे ढका हुआ था। उसे देखकर आखें चौंधियाती थीं और चारों ओर रुपहली वर्फकी शुभ्र ज्योति जगमगाती थी। आनन्द! आनन्द! क्या यह देदीप्यमान भास्वत दिव्य और अद्भुत क्षीरसागर तो नहीं है? रामके अद्भुत आनन्दकी

छ सीमा न रही। लगभग तीन मीलके बाद बर्फपर बड़े वेगसे ला गया। अन्तमें एक बर्फके ढेरपर लाल कम्बल बिछाया ौर संसारकी झञ्झटों व उत्पातोंसे मुक्त,जन-समूहके कोलाहल ौर क्षोभसे दूर, अलिप्त, अकेला राम उसपर विराजमान हुआ। हांपर बिलकुल सन्नाटा था, पूर्ण शान्तिका वहां साम्राज्य ।, घनघोर अनहद ध्वनिके अतिरिक्त वहांपर कोई शब्द नहीं नाई देता था। धन्य है वह शान्ति और एकान्त! सांसारिक नुष्यो!, यह अच्छी तरह समझ लो कि तरुण युवतियोंके पोलोंकी आरक्त छटा, या दिव्य रत्नों और सुन्दर आभूषणों थवा बड़े बड़े प्रासादोंमें सुमेरुकी कल्पनातीत रमणीयता और हिकताका यत्किञ्चित् अंश भी नहीं मिल सकता। मेघ फट ये, सारी बर्फने भगवा रंग धारण कर लिया। क्या पर्वतोंने न्यास ग्रहण कर लिया? सचमुच उन्होंने रामके सेवकोंकी र्दी पहन ली है। क्या ही अद्भुत बात है? पर्वतोंकी बर्फ रामका न्देशा ले जानेके लिये बड़ी आतुरतासे उसका मुंह निहार ही है।

अहाहा! आनन्द! वाह! आनन्द महा है।
दिव्य गोल संसार दृगोंको लुभा रहा है॥
जगसे इसका भेद नौगुना छिपा हुआ है।
यद्यपि हो असमर्थ दार्शनिक जन तो क्या है॥
बतलानेमें भेद भ्रमाकुल इसके मनका।
(बतलाता हूं तुम्हें एक गुर संक्षेपनका॥

खुले मैदानमें पहुंचे जहा छोटे-छोटे वृक्ष उगे हुए थे। हवा बदली हुई थी परन्तु मधुर सुवाससे भरी हुई थी। ... चारों ओरके सुन्दर दृश्य, मनोहर पुष्पसमूह और हरियाली की भरमारने मार्गकी कठिनाईको भुला दिया। ... मण्डलीके सभी लोगोंको खूब क्षुधा लगी। इस समय हमलोग ऐसे प्रदेशमें पहुच गये थे जहा मेघ:जलरूप वृष्टि कभी नहीं करता, परन्तु यथेष्ट वर्फरूपमें गिरता है। भोजन करनेके पश्चात् हम फिर चल पडे। ...(जगह-जगह उनके तीन-चार साथी परिश्रान्त होकर ठहरते गये) आगे चलते-चलते श्वासोच्छ्वासकी वायु बहुत सूक्ष्म हो गई थो। जिस समय यहापर दो गरुड पक्षी हमारे सिरके ऊपर उड़ते हुए निकले, हमें बड़ा आश्चर्य हुआ। यहा एक गहरे नीले रङ्गकी पुरानी वर्फसे ढकी हुई दुःखदायी शिलापर चढ़ना बाकी था। कुल्हाड़ीसे एक साथीने उसमें सीढ़िया बनाना आरम्भ किया, परन्तु वह भी टूट गई। उसी समय हमें एक वर्फके तूफानने आ घेरा। उसने हमारे मार्गको सुगम बना दिया। नोकदार जंगली लकड़ियोंकी सहायतासे हम उस ढालू चट्टानपर चढ गये और फिर जो कुछ हमने देखा उसका क्या कहना है! बस, हमारे सामने एक खूब लम्बा-चौडा सपाट ओर विस्तृत मैदान वर्फसे ढका हुआ था। उसे देखकर आखें चौंधियाती थीं और चारों ओर रुपहली वर्फकी शुभ्र ज्योति जगमगाती थी। आनन्द! आनन्द! क्या यह देदीप्यमान भासवत दिव्य और अद्भुत क्षीरसागर तो नहीं है? रामके अद्भुत आनन्दकी

Europe) यूरपके आल्प्स पर्वतके विषयमें लिखते हैं —
[प]के ऊपर जाकर उन्होंने जो दृश्य देखे उनका वर्णन है) "दिन
अच्छा था। वायुवेग, वर्षा, कुहरा, घटाटोप मेघ इत्यादि
। खराब मौसम होनेके पूर्व ऐसा हुआ ही करता है। पचास
[ह]या, सौ मीलतकके पर्वत स्पष्ट और सन्निकट दिखते
। उनकी श्रेणिया, खडहर, हिम, और हिमके तैरते हुए टीले
[स्प]ष्ट दिखाई दे रहे थे। अतीत कालके सुखी दिनोंके आनन्दयुक्त
[विच]ार—ज्योंही हमने पूर्वपरिचित आकारोंको देखा—स्मृति पटल-
स्पष्ट चित्रित हो गये। आल्प्सके मुख्य मुख्य शिखर सब
[दृष्टि]पथमें आ रहे थे। मैं चट्टानोंके अन्दरवाले चक्कर, उसके
[पी]छे जुड़ी हुई श्रेणियों, इत्यादिको अब देख रहा हूं। हमसे दस
[हज]ार फीट नीचे, जरमैटके हरित क्षेत्र जहांसे नीला धुआ धीरे-
[धी]रे ऊपर आ रहा था—विद्यमान थे। दूसरी ओर आठ हजार
[फी]ट नीचे ब्रूयलके चरागाह थे। कृष्ण और धुंधले वन,
[च]मकीले और हर्षित वनचर, कूदते हुए जल प्रपात,शान्त सरोवर,
[उ]र्वरा भूमिया, जंगली धरतिया, सूर्य्यके प्रकाशसे पूर्ण मैदान,
[श]ीतल और निर्मोही उन्नत समतल स्थल सब दिख रहे थे।
अत्यन्त खुरदरे और निम्नोन्नत आकार तथा अत्यन्त
सुन्दर घेरे और सीमाएं, तनी हुई चट्टानें और सुथरे ढलाव;
कोरे और हिमाच्छादित गम्भीर और धुंधले गिरि, जिनमें
चमकीली और श्वेत दीवालें, दुर्ग, झरोखे, मीनारें, अट्टालिकाएं,
शिखर और शुण्डाकार बने हुए थे, शोभा बढा रहे थे। जिन

मिलकर धड़के हृदय प्रकृतिका और तुम्हारा ।
उदय-अस्त-पर्यन्त तुरत खुल जावे सारा ॥"

इसमें सन्देह नहीं राम-जैसे विस्तृतात्माको हिमालय पर्वत बिना और कौन-सा स्थान सच्चा आनन्द दिला सकता है!

रामतीर्थ—जैसे पर्वतोंमें खूब मौज करनेवाले स्वातन्त्र्य-प्रेमियोंकी बात जाने दीजिये। हम साधारण स्वभाव और पहाड़ोंसे बहुत परे नगरोंमें रहनेवाले मनुष्योंके हृदय भी उनकी अलौकिक गम्भीर शोभासे नाच उठते हैं। संसारमें लिप्त मनुष्यों की आत्मा भी पार्वत्य रमणीयतासे विस्तृत होकर अपनी सब्री व्यवस्थाको तुच्छ समझ लेती है। मेरे एक परम मित्र, जयपुर-रियासतके रहनेवाले एक व्यक्ति, देहरादून और बदरीनारायणमें केवल पन्द्रह दिन रहकर क्या-से-क्या हो गये। वहासे उनका मेरे नाम एक प्रेमपत्र आया था। उसमें वहाकी मनोहर दृश्या वलीकी शोभा वर्णन करते हुए वे लिखते हैं.—"मैं गिरिराजकी क्या शोभा लिखू! खेद है, आप साथ नहीं आये वरन् मेरा आनन्द और भी वृद्धिङ्गत होता। अहा! मैं क्या बताऊं? इस बर्फोले और रंगीन पुष्पों और हरियालीसे जड़े हुए पर्वत-शिखरपर मैं खड़ा होकर नीचे बहती हुई भागीरथीसे लेकर ऊपरके नीलाम्बर-तक दृष्टिपात करता हू तो मैं विश्वमें लीन हो जाता हू। क्या स्वर्ग इस स्थानसे भी बढ़िया होगा?"

ह्यामपर महोदय, जो पार्वत्य सौन्दर्यके बड़े अनुभवी उपासक

(Europe) यूरपके आल्प्स पर्वतके विषयमें लिखते हैं —
तके ऊपर जाकर उन्होंने जो दृश्य देखे उनका वर्णन है) "दिन
अच्छा था। वायुवेग, वर्षा, कुहरा, घटाटोप मेघ इत्यादि
। खराब मौसम होनेके पूर्व ऐसा हुआ ही करता है। पचास
स्या, सौ मीलतकके पर्वत स्पष्ट और सन्निकट दिखते
। उनकी श्रेणियां, खडहर, हिम, और हिमके तैरते हुए टीले
ट दिखाई दे रहे थे। अतीत कालके सुखी दिनोंके आनन्दयुक्त
गर—ज्योंही हमने पूर्वपरिचित आकारोंको देखा—स्मृति पटल-
स्पष्ट चित्रित हो गये। आल्प्सके मुख्य मुख्य शिखर सब
टपथमें आ रहे थे। मैं चट्टानोंके अन्दरवाले चक्कर, उसके
े जुडी हुई श्रेणियों, इत्यादिको अब देख रहा हूं। हमसे दस
र फीट नीचे, जरमैटके हरित क्षेत्र जहांसे नीला धुआ धीरे-
े ऊपर आ रहा था—विद्यमान् थे। दूसरी ओर आठ हजार
ट नीचे ब्रूयलके चरागाह थे। कृष्ण और धुंधले वन,
कीले और हर्षित वनचर, कूदते हुए जल प्रपात, शान्त सरोवर,
रा भूमियां, जंगली धरतियां, सूर्यके प्रकाशसे पूर्ण मैदान,
तल और निर्मोही उन्नत समतल स्थल सब दिख रहे थे।
यन्त खुरदरे और निम्नोन्नत आकार तथा अत्यन्त
दर घेरे और सीमाएं, तनी हुई चट्टानें और सुथरे ढलाव;
े और हिमाच्छादित गम्भीर और धुंधले गिरि, जिनमें
कीली और श्वेत दीवालें, दुर्ग, झरोखे, मीनारें, अट्टालिकाएं,
खर और शुण्डाकार बने हुए थे, शोभा बढा रहे थे। जिन

जिन उपमा-स्थलोंको हृदय चाहता था—संसारमें जितनी आकार-रचनाएं हो सकती हैं—वहा सब वर्तमान थीं।"

प्रतिकूल ऋतुमें पर्वतोंका सौन्दर्य्य और भी बढ जाता है। निम्न भाग आच्छादित रहते हैं और उच्च शिखर मेघमण्डलोंके ऊपर उठे हुए और भी विशालतर और गम्भीरतर दिखलाई देते हैं। उस समयके धुंधलेपनसे पर्वत दृश्य कुछ जादू भरासा हो जाता है और ऊपर उडनेवाले जलद उसकी विचित्रताको बढा देते हैं। वर्षाजलसे रंग और भी चमकीला हो जाता है। वर्षाके पश्चात् जब ऋतु स्वच्छ हो जाती है, तब रंगोंकी दीप्ति और भी बढ जाती है। पत्तोंकी हरियाली, चट्टानोंकी श्यामता, सूर्य्यास्तकी लालिमा, वनका अन्धकार सब अधिकतर चित्ताकर्षक हो जाते हैं। वास्तवमें हम एक ही पर्वतमें, प्रातःकाल, सूर्य्यास्त,वर्षा और शिशिरकी भांति-भांतिकी आभाएं देखते हैं।

पहाडी प्रदेशोंमें वादलोंके दृश्य ऐसे रूप धारण करते हैं जैसे मैदानोंमें वे नहीं करते। सूर्य्योदय और साय-समयके रङ्ग वहा अत्यन्त मनोहर और दर्शनीय होते हैं। ऊपर उडते हुए वादलोंमें भांति भांतिके कितने प्रज्वलित रङ्ग दिखते हैं। मैदानों तथा पर्वतोंके निम्न भागोंमें हम वादलोंसे आच्छादित तो हो जाते हैं, परन्तु यदि हम पर्वत-शिखरपर हों तब तो वादल भी हमसे नीचे ही रह जाते हैं। उस समय मानों हम आकाशके किसी द्युलोकमें वैठे नीचेकी शोभा आनन्दसे निहारते हैं।

जब घाटियोंमेंसे देखे जाते हैं, तब पर्वतशिखर भिन्न

भिन्न मीनारोंके सदृश प्रतीत होते हैं। परन्तु यह भ्रान्त विचार है। यदि किसी उन्नत पर्वतपर चढ़कर ध्यानसे देखा जाय तो समझमें आ जायगा कि वे शिखर भिन्न भाग नहीं, किन्तु उसी पर्वतकी श्रेणीमें बद्ध हैं। किसी समयमें उन शिखरोंका एक ही मण्डप था जो सम्भवत. समतल था। परन्तु शनैः शनैः सहस्रों वर्षोंमें वायु और जलके वेगसे उस मण्डपके बीच बीचमें खण्ड-हर हो गये और प्रवाहोंके कारण घाटिया भी बादमें बन गईं। वायु और जल ऐसे प्राकृतिक कारीगर हैं जो धीरे-धीरे पर्वतोंको घिसते चले जाते हैं। साधारणत हम पर्वतोंको अखण्ड और अनन्त बताते हैं, परन्तु वास्तवमें ऐसा नहीं है। सृष्टिकी प्रगतिके साथ उनमें बहुतसे परिवर्तन हो गये हैं।

भारतवर्षके पर्वतोंका साधारण वर्णन

हिमालय पर्वतश्रेणी संसारमें सर्वोन्नत है। इसकी सबसे ऊंची चोटी एवरेस्ट पर्वत (देवदुङ्गा) समुद्रतलसे २९००२ फीट ऊंची है। पर्वत श्रृङ्खला लगभग १५०० मील दीर्घ और २०० मील विस्तृत है। आवर्त्तारससे शने शने उठती हुई हिमालयकी श्रेणिया इतनी ऊंची चढी हुई हैं। पर्वतके नीचे तराईके जङ्गल हैं जो न्यूनाशमें काटकर कृषिक्षेत्र बना लिये गये हैं। पहली श्रेणीकी पार्श्व-जो ३००० फीटसे ऊंची नहीं है-जनसे ढकी हुई है। फिर उंचाई एक साथ बढती ८००० फीटतक चली गयी है। श्रेणीकी औसत उंचाई २०००० फीट है। हिम माला १६००० फीट दक्षिणीय ढालपर है, और १८००० फीट उत्तरीय

जिन उपमा-स्थलोंको हृदय चाहता था—संसारमें जितनी आकार-रचनाएं हो सकती हैं—वहां सब वर्त्तमान थीं।"

प्रतिकूल ऋतुमे पर्वतोंका सौन्दर्य्य और भी बढ जाता है। निम्न भाग आच्छादित रहते हैं और उच्च शिखर मेघमण्डलोंके ऊपर उठे हुए और भी विशालतर और गम्भीरतर दिखलाई देते हैं। उस समयके धुंधलेपनसे पर्वत-दृश्य कुछ जादू भरासा हो जाता है और ऊपर उड़नेवाले जलद उसकी विचित्रताको बढ़ा देते हैं। वर्षाजलसे रंग और भी चमकीला हो जाता है। वर्षाके पश्चात् जब ऋतु स्वच्छ हो जाती है, तब रंगोंकी दीप्ति और भी बढ जाती है। पत्तोंकी हरियाली, चट्टानोंकी श्यामता, सूर्य्यास्तकी लालिमा, वनका अन्धकार सब अधिकतर चित्ताकर्षक हो जाते हैं। वास्तवमें हम एक ही पर्वतमें, प्रात काल, सूर्य्यास्त,वर्षा और शिशिरकी भांति-भांतिकी आभाएं देखते हैं।

पहाड़ी प्रदेशोंमें बादलोंके दृश्य ऐसे रूप धारण करते हैं जैसे मैदानोंमें वे नहीं करते। सूर्य्योदय और साय-समयके रङ्ग वहां अत्यन्त मनोहर और दर्शनीय होते हैं। ऊपर उड़ते हुए बादलोंमें भांति भांतिके कितने प्रज्वलित रङ्ग दिखते हैं। मैदानों तथा पर्वतोंके निम्न भागोंमें हम बादलोंसे आच्छादित तो हो जाते हैं, परन्तु यदि हम पर्वत-शिखरपर हों तब तो बादल भी हमसे नीचे ही रह जाते हैं। उस समय मानों हम आकाशके किसी सुलोकमें बैठे नीचेकी शोभा आनन्दसे निहारते हैं।

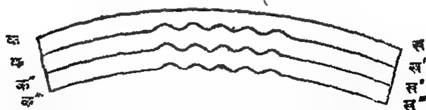
जब घाटियोंमेंसे देखे जाते हैं, तब पर्वतशिखर भि

भिन्न मीनारोंके सदृश प्रतीत होते हैं। परन्तु यह भ्रान्त विचार है। यदि किसी उन्नत पर्वतपर चढ़कर ध्यानसे देखा जाय तो समझमें आ जायगा कि वे शिखर भिन्न भाग नहीं, किन्तु उसी पर्वतकी श्रेणीमें बद्ध हैं। किसी समयमें उन शिखरोंका एक ही मण्डप था जो सम्भवत. समतल था। परन्तु शनै शनै सहस्रों वर्षोंमें वायु और जलके वेगसे उस मण्डपके बीच बीचमें खण्ड-हर हो गये और प्रवाहोंके कारण घाटिया भी बादमें बन गई। वायु और जल ऐसे प्राकृतिक कारीगर हैं जो धीरे-धीरे पर्वतोंको घिसते चले जाते हैं। साधारणत हम पर्वतोंको अखण्ड और अनन्त बताते हैं, परन्तु वास्तवमें ऐसा नहीं है। सृष्टिकी प्रगतिके साथ उनमें बहुतसे परिवर्तन हो गये हैं।

भारतवर्षके पर्वतोंका साधारण वर्णन

हिमालय पर्वतश्रेणी संसारमें सर्वोन्नत है। इसकी सबसे ऊंची चोटी एवरेस्ट पर्वत (देवदुङ्गा) समुद्रतलसे २९००२ फीट ऊंची है। पर्वत श्रृङ्खला लगभग १५०० मील दीर्घ और २०० मील विस्तृत है। आर्यावर्त्तसे शनै शनै उठती हुई हिमालयकी श्रेणिया इतनी ऊंची चढी हुई हैं। पर्वतके नीचे तराईके जङ्गल हैं जो न्यूनांशमें काटकर कृषिक्षेत्र बना लिये गये हैं। पहली श्रेणीकी पार्श्व-जो ३००० फीटसे ऊंची नहीं है-सबसे ढकी हुई है। फिर ऊंचाई एक साथ बढती ७००० फीटतक चली गयी है। श्रेणीकी औसत ऊंचाई २०००० फीट है। हिम माला १६००० फीट दक्षिणीय ढालपर है, और १८००० फीट उत्तरीय

उनमें स्थान-स्थानपर तरलता रह गई। जो भाग ठंडा हो गया, वह बैठ गया। परन्तु जो भाग एक साथ शीतल नहीं हुए औ पीछे से हुए वे उन्नत स्थल बन गये। वे अब भी ऊँचे-ऊँचे हैं। यूरोपके मोरवान, ह्वासजेज, ब्लेक फारेस्ट और दक्षि और मध्यभारतके उन्नत स्थल उपर्युक्त क्रियाके उदाहर हैं। (२) पृथ्वीके ठंडे होकर सिकुड़नेके समय जा कहीं इधर उधरके पार्श्वोंका दबाव पड़ा, उसीसे पिघल हुआ पदार्थ ऊपर उठ आया और वहां जम गया। इ प्रकार पिघले हुए पदार्थके ऊपर उठ-उठकर तल-पर त जमने गये और उन्हींके पर्वत बन गये। यह तो हम प्रा देखते हैं कि जब एक सेब (फल) शीतकालमें सूखकर सिकुड़त है, तब उसपर सिलवटें पड़ जाती हैं। या यदि मेजपर कागज तही रखकर उसके दोनों छोरोंपर हम दो पत्थर रख दें और पि उन पत्थरोंको दोनों ओरसे अन्दरको दबावें तो कागज सिकु कर ऊपर उठ आवेगा। इसी प्रकार हमें, उदाहरणार्थ, भूतल



एक क ख नामक टुकड़ा लेना चाहिये। मान लिया जाय शनै-शनै ठण्डी होकर सिकुड़नेके कारण क ख पिघली भू

क′ख′ पर, फिर क″ख″ पर और अन्तमें क‴ख‴ पर बैठ गई। अब यदि ऊपरकी सतह और भूगर्भ दोनों बराबर साथ ठण्डे हों तब तो क ख परत सिकुड़कर क′ख′ बन जाय और उसमें बीचकी सिलवटें न पड़े। परन्तु यह तो स्पष्ट ही है कि ऊपरी तल और भूगर्भ एक साथ ठण्डे नहीं हो सकते। पहले ऊपरसे ठण्डा होनेके पश्चात् भूगर्भ अन्दरसे धीरे-धीरे ठण्डा हुआ है। यह एक स्वयंसिद्ध व्यवस्था है। हमारे भूगोलका ऊपरी परत धीरे-धीरे सम तापक्रमको प्राप्त हो गया। इस दशामें क ख में जितना सीधा घुमाव और चपटापन है उतना क′ख′ के स्थानपर आनेमें नहीं रह सकता। वहां बैठनेपर सिकुड़नेके कारण सिलवटें पड़े बिना नहीं रह सकतीं। अत क‴ख‴ चपटे घुमावमें नहीं रह सकता, उसमें अधिकतर सिलवटें पड़ेंगी। कहीं-कहीं जैसा कि आगे बताया जायगा, तहें बिलकुल ही उलट गई हैं। कहीं कहीं भूमिकी तहें मीलोंतक ठण्डी होते समय सिकुड़नेके कारण अपने वास्तविक स्थानोंसे मानों निचोड़ी गई हैं। यह अनुसन्धान पहले पहल सर हेनरी डि ला बेशने किया था और फिर इसका पुष्टीकरण डाल, स्वैस और हैम इत्यादि भूगर्भवेत्ताओंने किया है।

पहाड़ी प्रान्तोंकी बनावट उपर्युक्त काल्पनिक सिद्धान्तको भले प्रकार पुष्ट करती है। यह तो स्पष्ट ही है कि यदि परतोंमें सिलवटें डाली जाय तो उस समय यदि वे अत्यन्त भिंच जाय तो परतोंके ऊपरी भाग फटकर या सिकुड़कर उन्नत हो ही उठेंगे। परन्तु ऐसी क्रिया होनेके पूर्व वे विस्तृत होकर ढीले

परतें अधिकतर स्थानच्युत और दबावसे दबी हुई हैं। ये ऊ
हैं। माट सालीजी पर्वत इन्हीं झालरोंका अवशेष है।

आल्प्स पर्वत और भारतीय हिमालयमें ज्यूरा पर्वत
अपेक्षा सिलवटें अधिकतर बनी हैं। यह साफ ही है कि
घाटियां बनी हैं वे जल और वायुके संघर्ष और रगड़से बनी
कोई-कोई घाटी मनुष्यों द्वारा भी काटकर बनाई गई हैं।
और वायुकी निरन्तर संघर्ष-क्रियाने विशाल चोटियोंको क
काटकर बहा दिया और घाटियोंमें परिणत कर दिया है। यह
साधारणत असम्भव सी प्रतीत होती है कि पर्वतको इतनी च
कैसे छिन्न-भिन्न हो गई होंगी,परन्तु यह असम्भव नहीं है, वि
कविकी कल्पना नहीं है, किन्तु प्रकृति माताकी सत्य क्रिया है
गणित कालसे अपना कर्त्तव्य करती चली आई है। रेम्से मह
यने बताया है कि वेल्स (इंगलैण्ड देशका एक प्रान्त)में कोई
भाग २६००० फीटतक छिन्न भिन्न होकर नीचे उतर गया
स्विजरलैण्डके पर्वतोंके विषयमें भी यह माननेके लिये प्रमाण
कि उनकी आधुनिक ऊंचाई प्रारम्भिक ऊंचाईसे लगभग अ
है, परन्तु इससे यह सिद्ध नहीं होता कि आल्प्स पर्वत
पहिलेकी अपेक्षा अधिक ऊंचे रह गये हैं, क्योंकि ऊंचाईकी
और उसका सघर्ष और बैठाव दोनों ही पारस्परिक विरुद्धार
क्रियायें साथ-साथ चली आई हैं। यह प्रमाण सिद्ध है
ग्रेनाइट पत्थर बहुत गहराईके नीचे ठण्डा होकर स्थूल हुआ
लगभग ३०००० से ५०००० फीटकी गहराईके नीचे पिघले

पत्थरका ढेर धीरे-धीरे ठण्डा होकर मोटे प्रकारके ग्रैनाइटमें परिणत हुआ है। ऊपरकी तह या परतके पास शीतल होनेकी क्रिया नीचेके भागकी अपेक्षा शीघ्रतर हुई है, इसलिये ऊपरके भागमें बने हुए रवे (Crystals) या छोटे कङ्कर अल्पतर और सुन्दरतर बने हैं। इसके भी ऊपरके भागमें—अर्थात् भूगोलके तलसे कुछ ही नीचे—काच और ऊपर-ही ऊपर बालुका मिट्टी बनी है। अत जहा-कहीं ग्रैनाइट पत्थर पृथ्वीके तलपर मिले तो समझ लेना चाहिये कि पूर्वकालमें इसके ऊपर ३०००० से ५०००० फीटतक ऊ ची चट्टाने रही होंगी।

इसकी गणना लगाई गई है कि योरपमें वाले और मैट-गोथर्डके बीचका स्थल २०० मीलसे सिकुड़कर १३० मील रह गया, आईनीज ५० से २५ मील, और अयालीशिय पर्वत श्रेणी १५३ से ६५ मील ही रह गई! आल्प्स पर्वत-श्रेणीकी घुमावदार ढाल सम्भवत पुराने पर्वत, जो अब केवल उन्नत पठार रह गये हैं, वासजेज और ब्लेक फारेस्टके प्रतिरोध और रुकाव-टके कारण हुई है। आल्प्स पर्वतकी मध्यम श्रेणीकी दक्षिणी ढाल उत्तरकी ओरकी ढालसे निम्नतर है, इसी कारण श्रेणी उत्तरकी ओर अधिकतर ढली हुई है। इसमें सन्देह नहीं है कि पुराकालमें शिखर और भी दक्षिणकी ओर था और आधुनिक समयकी अपेक्षा और भी उन्नततर था। यह बात इस स्मरणीय तथ्यपर प्रकाश डालती है (जिसे स्विजर लेण्डके भूगर्भवेत्ताओंने आधुनिक खोजसे प्रमाणित किया है) कि मध्य

स्विजर लैण्ड आर्वसे आर पर्वततक पश्चात्में भूगर्भसे उगला गया है। वहाके आधुनिक पर्वत तो मानों वहुत पीछेकी मौलिक परतोंपर तैरते हैं और दक्षिणकी ओरसे कई मीलतक चले गये हैं। चाहे यह अवस्था आरम्भमें किसीको झूठ ही जचे, परन्तु स्काटलैण्ड, नार्वे, इङ्गलैण्ड, अमेरिका और भारतमें कई स्थल ऐसे हैं जो उसी शीतल होने और सिकुड़नेकी रासायनिक क्रियासे वहुत पश्चात्में बने हैं।

उपर्युक्त घटनाओंसे यह साफ सिद्ध होता है कि पर्वत और पहाड़िया अनन्त नहीं हैं और एकसाथ ही नहीं बनी हैं। वे आगे पीछे बनती रही हैं। भूगर्भवेत्ताओंने बताया है कि व्हालर्जेजकी अपेक्षा वेल्सके पर्वत पहले बने हैं। पीरेनीजकी अपेक्षा व्हालर्जेज, आल्पसकी अपेक्षा पीरेनीज, और अन्डीजकी अपेक्षा पीरेनीज पहले बने हैं। अन्डीज पर्वत-श्रेणी तो अब भी उभर रही है।

ऊंचाई बढने और धसनेकी क्रियायें अब भी चल रही हैं। जितने ज्वालामुखी पर्वत हैं,वे इन्हीं क्रियाओंके प्रमाण हैं। अभी भूगर्भमें तापक्रम बहुत बढा हुआ है। भूतलके ऊपर जो शीतलता हो गई है वह धीरे-धीरे लाखों वर्षोंसे नीचेकी ओर बढ रही है, परन्तु अभीतक बहुत नीचे असीम उष्णता और तरलता ज्योंकी त्यों है। चारों ओरकी ठोस भूमिका उस भूगर्भके गर्म और तरल द्रव्य पर जैसे-जैसे दबाव पडता है और वह सिकुडता है वैसे वैसे ही उर्द्ध्व गतिसे ज्वालामुखी पर्वतोंके स्फोटद्वारा वह भूतल पर उमड़ आता है। बाहर उसके समूहके समूह ठढे हो होकर

जमते जाते हैं, उनपर उद्भिज उगते जाते हैं, प्राणी बसते जाते हैं। यह क्रिया न्यूनाधिकांशमें सर्वत्र ही चल रही है। भूकम्प भी इसी क्रियाके फलस्वरूप हैं। कई पर्वतोंके पास जो अधिक भूकम्प होते हैं वे सिद्ध करते हैं कि पर्वतोंके ऊपर उठने और धसनेका कार्य्य अब भी उसी शक्तिसे होता जा रहा है, परन्तु अब बहुत कम हो रहा है। हजारों वर्षों पहले यह काम बहुत हुआ था और सृष्टिके आरम्भमें तो बहुत कल्पनातीत रीतिसे हुआ होगा।

जैसे पर्वत श्रेणियां दबावसे बनी हुई हैं, वैसे ही घाटियां—वादियां ऊपरकी परतोंके बिखर जाने—छिन्न भिन्न हो जानेसे बनी हैं। जहां किसी पर्वतकी एक श्रेणी बनी कि मानों प्रकृति उसके विरुद्ध षड्यन्त्र रचने लगती है। सूर्य और हिम, उष्णता और शीत, वायु और जल, उद्भिज (नन्हेसे पौधेसे ओक जैसे विशाल वृक्षतक) कीट पतङ्गसे मनुष्यतक समस्त प्राकृतिक सृष्टि उस उन्नत स्थलपर—श्रेणीपर—अपने अपने प्रहार करने लग जाती हैं। इन सबमें जलका प्रहार बहुत प्रबल है। वर्षासे पर्वतस्थलका प्रत्येक रन्ध्र और दरार जलसे आर्द्र हो जाता है। पानी शीतके कारण हिम बनता है और हिम बनते समय दृढ़ से-दृढ़ चट्टानके टुकड़े कर डालता है, क्योंकि जलका यह प्राकृतिक कार्य है कि अन्य वस्तुओंकी नाई पहले तो वह भी शीतसे सिकुड़ता है, परन्तु जब शीतके द्वारा उसका तापक्रम नितान्त जाता रहता है और वह बर्फ या पाला बनता है, तब

वह उल्टा विस्तृत होने लगता है। शीतकालमें किसी कावके ग्लासमें पानी भरकर रात्रिके समय खुले स्थानमें रख दिया जाय। जब उसमें जल अत्यन्त ठंढा हो जायगा तब वह सहसा हिम बनते समय विस्तृत होकर कावको तोड देगा। बस, यही क्रिया पर्वतोंकी चट्टानोंमें भी सदैव होती रहती है। वर्षाका जल समस्त दरारों और रन्ध्रोंमें पडा रहता है और शीतकालमें हिम बनकर चट्टानोंको तोड देता है। इसी प्रकार चट्टानोंके बडे खडहर हो जाते हैं। उनमें जो दरारें होती हैं उनमें भी वही क्रिया सम्पन्न होती है। वे भी टूट टूटकर छोटे पाषाण बन जाते हैं। इसी प्रकार महाकाय चट्टानें टूट-टूटकर अल्प कंकर भी बन जाती है फिर वर्षा होती है। उनके प्रवाहमें कंकर बहकर पर्वतोंके नीचे उतर जाते हैं और नदियोंमें बहते हुए नीचेके मैदानोंमें जा पहुंचते हैं। जिन-जिन पर्वतोंमें जहा-जहां न्यूनाधिक बर्फ जमती है झडते जाते हैं। यदि अलङ्कृत भाषामें ऐसा कहा जाय तो अतिशयोक्ति न होगी, बल्कि सत्योक्ति होगी कि वहा-वहां प्रकृति किसी अच्छे और बडे शिल्पीकी नाईं छेनी हथौडा चलाकर बिना आकारकी विशाल चट्टानको सुन्दर आकार देकर उसमें जीवन और सौन्दर्य्यका संचार कर देती है। हमारे पर्वतों और घाटियों का निमाण समयरूपी औजारके द्वारा स्वयं प्रकृतिने किया है और वही आवश्यकतानुसार अब भी कर रही है। समय कार्य्य कर रहा है। इसका न आदि और न अन्त प्रतीत होता है। हमें गड-

चक्रमें डालनेवाली, हमारे मस्तिष्कको चकरानेवाली बात यह है कि इतने अनन्तकालकी परम्परागत क्रिया सहसा हमारी समझमें नहीं बैठती। हम उसपर झटपट विश्वास नहीं कर सकते, क्योंकि हमारी आयु अल्प है। अल्पायुको दीर्घायुवाले निर्माणका ध्यान सहज ही नहीं हो सकता।

हिमालय पर्वत-श्रेणीमें कितनी बर्फ जमती है। हिमालय शब्दका अर्थ ही हिम अर्थात् बर्फका स्थान है। इसी बर्फने इस पर्वतश्रेणीको न जाने कितना छिन्न भिन्न किया होगा। हिमालयसे कितनी बहुसंख्यक और विशाल नदियां बहती हैं। इनके जलमें सहस्रों वर्षोंमें कितने कंकर, पत्थर और मिट्टी बह बहकर चली गई होंगी, इसका अनुमान कोई कुशाग्रबुद्धि भूगर्भशास्त्रका अनुभवी पण्डित ही लगा सकता है।

ज्वाला मुखी पर्वत

ज्वालामुखी पर्वत एक भिन्न प्रकारकी पर्वतश्रेणी है। हमारी पृथ्वीपर कितने ऐसे पहाड़ हैं, इसकी गणना होना असम्भव है। हम्बोल्टने २६३ बताये हैं, परन्तु कीथ और जानस्टन महानुभावोंने इस संख्याको ३०० तक पहुंचा दिया है। इनकी संख्याका निर्धारण करनेमें कई कठिनाइयां हैं। कुछ ज्वालामुखी पहाड़ तो सदैव पिघले हुए पदार्थ स्फोटों द्वारा बाहर फेंकते रहते हैं। उनकी ऐसी क्रिया प्रतिदिन चलती रहती है। उनके पहिचानने और गिननेमें तो कोई कठिनाई

उपस्थित नहीं होती। परन्तु अधिकाशमें उभरनेकी क्रिया समय समयपर ही होती है। उनकी गतिमें समयका नियम बिलकुल नहीं है। इनमें कौन-कौनसे फिर भी उभडते रहेंगे और कौन कौनसे अन्तिम बार उभड़ चुके और भविष्यमें नहीं उभडेंगे, इस अन्तरका पता चलाना दुःसाध्य है। दूसरा प्रश्न यह उठता है कि कौन-कौनसे तो पृथक् ज्वालामुखी पर्वत हैं और कौन-कौनसे केवल सहायक स्फोट हैं। उदाहरणार्थ, इटनाकी ढालमें ७०० से भी अधिक स्फोट हैं और हवाईमें कई सहस्र शुण्डाकार मुख हैं। लगभग सब ही विशाल ज्वालापर्वतोंमें आस पास स्फोट या मुख बने हुए हैं। अब वे एक ही ज्वाला पर्वतके कई मुख माने जाय या वे पृथक्-पृथक् स्वतन्त्र ज्वाला-मुखी पहाड़िया मानी जाय, यह एक टेढ़ा प्रश्न हो जाता है।

स्फोट द्वारा जो पिघला हुआ द्रव्य निकलता है, वही जमकर शुण्डाकार स्फोट बन जाता है। कभी कभी और कहीं-कहीं तो स्फोट बडी सुन्दर आकृतिके बन जाते हैं। जैसे शिमपोराजो, कोटोपैक्सी और फ्यूजियामाके स्फोट। ऐसे पर्वतोंका मुख बहुधा शिखरपर या उसके बहुत निकट बनता है।

जिस समय ज्वालामुखी पर्वत अपनी क्रिया करता रहता है अर्थात् उभडता रहता है, उस समय उसका ऐसा अद्भुत दृश्य होता है, जिसके समान प्रकृतिका अन्य दृश्य कदाचित होता ही नहीं। प्रकृतिके समस्त दृश्योंसे सचलित ज्वाला मुखी पर्वतका दृश्य अद्वितीय एवं अतुलनीय है। लार्ड

आवरीने इटलीके विसूवियस नामक ज्वालापर्वतको अपने नेत्रोंसे स्फोटके तटसे नीचे कुछ दूरपर खड़े होकर भूगर्भके पिघले हुए पदार्थोंकी बाहर फेंकी हुई नहरको बहते हुए, ठंढी होकर जमते हुए और बड़े-बड़े पाषाणोंको आकाशमें उन्नतोन्मुख उछलते हुए देखा है। उन्होंने इस दृश्यको देखकर अपने आपको कृतकृत्य माना है। कोटोपैक्सी पर्वतमें जब सन् १८७७ में प्रकोप हुआ था तब बाहर फेंके हुए पिघले पदार्थ स्फोटके किनारेतक उठ आये थे और फिर चारों ओरके स्फोटके ओष्ठोंपर एकदम फैल गये। ओहो! क्या ही अद्भुत दृश्य रहा होगा! प्रकृतिकी कितनी विशाल और विचित्र क्रीडा हुई होगी!

हवाई द्वीपके मौना लोगके पासका ४००० फीट उन्नत किलाउया नामक ज्वालामुखीका स्फोट इस पृथ्वीका अत्यन्त विशाल स्फोट है। इसका व्यास २ मील लम्बा है। इसकी परिधि ७ मीलकी परिक्रमा है। इसकी रचना अण्डाकार है। इसकी लम्बी से-लम्बी धुरी ३ मील दीर्घ है। इस स्फोटका आन्तरिक भाग मानों पिघले हुए द्रव्यकी झील है जिसका तल बदलता रहता है। इसकी गहराई १४०० फीट है। उष्णताका तो कहना ही क्या, और वह भी रात्रिके समय—जब ऊपरके बादल लाल तरल द्रव्यके प्रतिबिम्बसे रंग जाते हैं—बड़ी भीषण होती है। उस समयकी शोभा बड़ी गम्भीर और प्रभावशाली होती है। धीरे-धीरे पिघला हुआ द्रव्य स्फोटमें ऊंचा चढ़ता है, और फिर याता तटोंके ऊपर होकर और या उनमें दरारें

बनाकर चारों ओर बह जाता है। कुछ ही समयके पश्चात् पिघले हुए पदार्थसे सरोवरकी नाईं लबालब भरा हुआ स्फोट खाली हो जाता है और जबतक फिर दुबारा वही क्रिया नहीं होती है, तबतक बहुत समयतक—कभी-कभी वर्षों तक शून्य पड़ा रहता है।

ज्वालामुखी पर्वतसे पिघले पदार्थोंकी मानों नदी बहती है, जिसकी गति आरम्भमें बहुत तीव्र होती है। परन्तु जैसे-जैसे वह शीतल होती जाती है वैसे-ही-वैसे तरल द्रव्य ठोस होते जाते हैं और उनके परतपर परत लग जाते हैं। उनके नीचे जो थोथ रह जाती है वह एक प्रकारकी सुरङ्ग बन जाती है और जबतक नवीन द्रव्य निकलता रहता है, उसी सुरङ्गमें बहता है। उसमें भी दरार पड़ जाती हैं, जिनमें होकर वह पिघला हुआ द्रव्य बाहर निकलकर वहां भी जम जाता है। इस प्रकार भयानक और निर्दय अग्नि नदी, जो कुछ उसके मार्गमें आता है उसको नष्ट करती हुई, बहती जाती है।

सन् १८८५ में हवाई द्वीपके मोनालोवा अग्नि-पर्वतसे जो नदी बही थी, वह ७० मीलतक चली गई। आइसलैंड द्वीपके स्कैपहार जो कुल पर्वतकी जो सन् १७८३ में नदी बही, वह ५० मील लम्बी और लगभग ५०० फीट गहरी थी। यह हिसाब लगाया गया था कि उसके तरल द्रव्यका ढेर यूरोपके मौंट ब्लैंक पर्वतके बराबर हुआ होगा।

ज्वालामुखी पर्वतके उभडनेके समय तरल द्रव्यको जो

दिया वहती हैं, उनकी अपेक्षा स्फोटमेंसे जो अत्यन्त गर्म राख और पाषाण बाहर फेंके जाते वे और भी नाशकारी होते हैं। सुम्बावा द्वीपके टमबोरो नामक ज्वालामुखी पर्वतसे सन् १८५१ में राख और पत्थर उमडकर चारों ओर बरसे थे। योरपके वाटरलूके संग्राममें जितने मनुष्य मरे, उससे भी अधिक उससे प्राणहानि हुई थी। पुर्तगालके लिस्बन नगरमें सन् १७५५ में जो भूकम्प हुआ था, उससे ६०००० मनुष्य मरे थे। रिवोबामाके भूचालमें और टुंगुरागुवा और काकाटुराके कीचडसे ३००००से ४०००० तक जन सख्या नष्ट हुई थी। सन् ५२६के एन्टिवोकके भूकम्पमें कहा जाता है, दो लाख मनुष्योंसे कम नहीं मरे होंगे।

गत शताब्दीमें सबसे अत्यन्त हानि कोसीकिना ज्वालामुखीके स्फोटसे हुई थी। २५ मीलतक १६ फीट गहरा कीचड भर गया। धूए और राखका कई मीलोंतक धुधुंकार छा गया था।

भारतवर्षमें एक ही ज्वालामुखी पर्वत है। वह पंजाबके कांगडा प्रान्तमें है। वहां भी कई बार थोडी बहुत हानियां हो चुकी हैं। भूकम्पोंसे भी पञ्जाबमें कई बार सर्वनाश हुआ है।

मेडीटरेनियन समुद्रमें स्टोम्बोली ज्वालामुखी पर्वत यद्यपि उन्नत तो २५००० फीट ही है, परन्तु इसकी बनावट बडी सुन्दर और शानदार है और इसकी जडें समुद्रके जलमें ४००० फीटतक नीचे गई हुई हैं। इसमें स्फोटकी क्रिया भी बडे नियमित प्रकारसे होती है। वह लगभग ५ मिनटतक जारी

बताकर चारों ओर बह जाता है। कुछ ही समयके पश्चात् पिघले हुए पदार्थसे सरोवरकी नाईं लबालब भरा हुआ स्फोट खाली हो जाता है और जबतक फिर दुबारा वही क्रिया नहीं होती हैं, तबतक बहुत समयतक—कभी-कभी वर्षोंतक शून्य पड़ा रहता है।

ज्वालामुखी पर्वतसे पिघले पदार्थोंकी मानों नदी बहती है, जिसकी गति आरम्भमें बहुत तीव्र होती है। परन्तु जैसे-जैसे वह शीतल होती जाती है वैसे-ही-वैसे तरल द्रव्य ठोस होते जाते हैं और उनके परतपर परत लग जाते हैं। उनके नीचे जो थोथ रह जाती है वह एक प्रकारकी सुरङ्ग बन जाती है और जबतक नवीन द्रव्य निकलता रहता है, उसी सुरङ्गमें बहता है। उसमें भी दरार पड़ जाती हैं, जिनमें होकर वह पिघला हुआ द्रव्य बाहर निकलकर वहां भी जम जाता है। इस प्रकार भयावह और निर्दय अग्नि नदी, जो कुछ उसके मार्गमें आता है उसको नष्ट करती हुई, बहती जाती है।

सन् १८८५ में हवाई द्वीपके मोनालोवा अग्नि-पर्वतसे जो नदी बही थी, वह ७० मीलतक चली गई। आइसलैंड द्वीपके स्कैपहार जो कुल पर्वतकी जो सन् १७८३ में नदी बही, वह ५० मील लम्बी और लगभग ५०० फीट गहरी थी। यह हिसाब लगाया गया था कि उसके तरल द्रव्यका ढेर यूरोपके मौंट ब्लैंक पर्वतके बराबर हुआ होगा।

ज्वालामुखी पर्वतके उभड़नेके समय तरल द्रव्यको जो

ानी हैं जो भूगोलके ठोस भागमें आर-पार होती हुई उसके
र्भमें जो अग्नि है उसतक पहुची हुई हैं। परन्तु हालमें
ो नवीन अनुसन्धान हुए हैं,उनके द्वारा प्रकट हुआ है कि यद्यपि
ऐसे पर्वत विशाल और शानदार तो अवश्य हैं, परन्तु उनका
म्बन्ध भूगर्भकी अग्निसे नहीं है, उनकी उत्पत्ति केवल स्था-
ीय और भूतलसे कुछ नीचेके परतोंकी उष्णता हीसे है। ससार-
े किसी बड़े नक्शेपर दृष्टि डाली जाय तो ज्ञात हो जायगा
कि ज्वालामुखी पर्वत प्राय समुद्रतट या उसके निकट
थानोंहीमें होते हैं, देशोंके मध्यस्थलोंमें वे प्राय नहीं
ोते। पैसीफिक महासागरके चारों ओर मानों इन पर्वतोंकी
ाला लगी हुई है। यदि हम न्यूज़ीलैण्डसे आरम्भ करें तो
में टोंगारीरो पलाऊाई ज्वालामुखी मिलते हैं। यहांसे अग्नि-
क फीजीद्वीपोंमें और अगाड़ी सुलेमान, न्यू गिनी, टीमर,
फ्लौरस, सुम्बावा, लोम्बाक, जावा, सुमात्रा, फिलीपाइन,
ापान, आलिपुतियन द्वीपोंमें [illegible] की पर्वत, मैक्सीको,
ेरू, चिली और टैराडिल [illegible] हैं। अटलान्टिक
हासागरके चारों ओर ऐसी [illegible]
हीं है।

हम जानते हैं कि [illegible]
ादिके द्वारा भूतलके [illegible]
ी चली आती है और
ह नहीं सकते। यही [illegible]

रहती है। ऊपरसे यदि स्फोटका अवलोकन किया जाय तो ३०० फीट नीचे पिघले हुए लोहेकी नाईं उष्ण लाल तरल, द्रव्य दिखलाई देता है। वह धीरे-धीरे ऊपर उठता है और फिर बाहर निकल जाता है। उस समय वाष्पके बादल और पत्थर बाहर फेंके जाते हैं। तदनन्तर वह फिर शान्त होकर नीचे बैठ जाता है। इसकी क्रिया बड़ी नियमित है और शताब्दियोंसे ज्यों-कीत्यों चली आती है। इगलैण्ड और स्काटलैण्डमें भी किसी कालमें ज्वालामुखी पर्वत थे, परन्तु अब नहीं हैं। स्काटलैण्डमें एडिनबरा नगरके निकट आर्थरस् सीट (Arthur's Seat) नामक जो [illegible] सो ज्वालामुखी पर्वतका मुखसा दृष्टिगत [illegible]



[illegible] मुखी पर्वतका शिखर भी उड़ जाता है। [illegible] अनुमान है कि विसूवियस ज्वाला पर्वतका [illegible] ऊपर उड़ गया है। जब वे प्रथम बार उसे देखने गये [illegible] शिखर था, परन्तु कुछ वर्षके पश्चात् जब वे दूसरी बार [illegible], तब वह शिखर नहीं मिला। विसूवियस ज्वालामुखी पर्वत [illegible] एक पुराने ज्वालामुखीके मुखमें खड़ा है। उसका कुछ [illegible] भाग अब भी विद्यमान है। उसको सोमा कहते हैं। इसका अधिकांश सन् ७९ में भभककर उड़ गया था।

ज्वालामुखी पर्वतोंकी उत्पत्ति दो प्रकारके सिद्धान्तोंसे [illegible] है। प्रथम, [illegible] [illegible] और क्रियाके महत्व-[illegible] [illegible] [illegible] इन्हें ऐसी [illegible]

मानी है जो भूगोलके ठोस भागमें आर-पार होती हुई उसके गर्भमें जो अग्नि है उसतक पहुंची हुई है। परन्तु हालमें जो नवीन अनुसन्धान हुए हैं, उनके द्वारा प्रकट हुआ है कि यद्यपि ऐसे पर्वत विशाल और शानदार तो अवश्य हैं, परन्तु उनका सम्बन्ध भूगर्भकी अग्निसे नहीं है, उनकी उत्पत्ति केवल स्थानीय और भूतलसे कुछ नीचेके परतोंकी उष्णता हीसे है। संसारके किसी बड़े नकशेपर दृष्टि डाली जाय तो ज्ञात हो जायगा कि ज्वालामुखी पर्वत प्रायः समुद्रतट या उसके निकट स्थानोंहीमें होते हैं, देशोंके मध्यस्थलोंमें वे प्रायः नहीं होते। पैसीफिक महासागरके चारों ओर मानों इन पर्वतोंकी माला लगी हुई है। यदि हम न्यूज़ीलैण्डसे आरम्भ करें तो हमें टोंगारीरो पहाड़ीका ज्वालामुखी मिलते हैं। यहांसे अग्निचक्र फीज़ीद्वीपोंमें और अगाड़ी सुलेमान, न्यू गिनी, टीमर, फ्लौरेस, सुम्बावा, लोम्बाक, जावा, सुमात्रा, फिलीपाइन, जापान, आलिपुतियन द्वीपोंमें होता हुआ रौकी पर्वत, मेक्सीको, पीरू, चिली और टैराडिल फ्यूगोमें समाप्त होता है। अटलान्टिक महासागरके चारों ओर ऐसी ज्वालामुखी पर्वतोंकी परिधि नहीं है।

हम जानते हैं कि दबाव, खींच-तान, टूट फूट, सिलवटों आदिके द्वारा भूतलके सिकुड़नेकी अनादि कालकी क्रिया अब भी चली आती है और इससे अत्यन्त ततस्थल ऊंचे उठे बिना रह नहीं सकते। यही ज्वालामुखीके स्फोटोंमें बहकर निकलने

ह। हमें यह भी स्मरण रखना चाहिये कि हमारी मेदिनीकी यथार्थ पर्वतश्रेणियां तो हमारे विशाल महाद्वीप हैं, जिनके सम्मुख हिमालय और योरपीय आल्प्स और एंडीज भी साधारण सिलवटें सी प्रतीत होते हैं। हमारी इन्हीं यथार्थ पर्वतश्रेणियोंके किनारोंके पास अर्थात् समुद्रतटोंके पास जो साधारणत शान्त और ठण्डे स्थल प्रतीत होते हैं, अत्यन्त उष्ण हैं, और इसी कारण ज्वालामुखी पर्वत समुद्रके तटोंपर पाये जाते हैं।

ज्वालामुखी पर्वतोंको जो स्थानीय विचित्रता-पूर्ण क्रियाए मानते हैं, इसका यह भी एक प्रमाण है कि जहा वे पास-पास भी हैं वहा भी उनमें स्फोट एक साथ ही नहीं होता। वे व्यक्तिगत स्वतन्त्रतासे फूट पडते हैं। इसमें सन्देह नहीं कि यदि पृथ्वीका ऊपरी तल दृढ न होता तो हमें सदैव भूकम्प सताते रहते। जितने भूकम्पोंका हम अनुभव करते हैं, उससे भी वे बहुसंख्यक होते हैं। हमतक वे सब पहुचते ही नहीं हैं। आधुनिक समयमे अद्भुत आविष्कारकोंने सांयनेके जो बहुत बढिया औजार (यन्त्र) निर्माण किये हैं, उनसे भूकम्पोंकी व्यवस्था खूब ज्ञात होती है। यदि उनके द्वारा हम अनुसन्धान करें तो हमें मालूम हो जायगा कि भूकम्प समय-समयपर ही नहीं होते, बल्कि थोडा बहुत कम्पन सदा चला ही करता है। हमें केवल उसकी प्रबलताके समय ही पता चलता है। यह भी प्रतीत होता है कि भूकम्प बहुत गहरे नहीं होते, वह स्थान जहासे कम्पन ऊपरकी ओर उठता है, यन्त्रोंद्वारा निश्चित

किया जा सकता है। बल्कि कभी कभी तो इसका भी पता चल सकता है कि दूरपर वह कम्पन कहातक कोण बनाता है। जब इस प्रकारकी माप होती है तब सदैव यही प्रमाणित होता है कि कम्पनकी स्थानीयता केवल तीस मीलसे भूगर्भमें अधिक नीचो नहीं होती।



भूकम्पकी ऊर्द्ध गतिसे वह स्थान जहां तक कम्पन विस्तृत होता है।

यद्यपि हम ज्वालामुखी पर्वतोंकी क्रियाको भूगर्भकी उष्णता से सम्बद्ध नहीं मानते,फिरभी हम इसको भूशक्तिहीका अल्प और स्थानीय प्रदर्शन मानेंगे। वस्तु, ज्वालामुखी पर्वतोंकी उत्पत्तिका कारण चाहे जो हो परन्तु हमें उन्हें प्रकृतिकी सुन्दरता और विचित्रताके नमूने मानना ही पड़ेगा। वे कितने विशाल, भयावह, परन्तु सुन्दर और प्रभावशाली दृश्य हैं!

सातवां अध्याय

जल

अनेकानेक मिश्रित पदार्थोंमें जल एक अत्यन्त विचित्र पदार्थ है। इसकी आकृतियां कितनी भांति-भांतिकी होती हैं। रातकी ओस होकर यह अनाज या अन्य उद्भिज्जोंपर मोती बनकर चमकता है। वायुमण्डलमें वाष्प बना हुआ जब शीतसे ठिठरकर यह बादलोंमें परिणत होता है, तब कितने रङ्ग दिखाता है, कभी नीला तो कभी धुन्धला, कभी लाल तो कभी पीला, और कभी २ इन्द्रधनुषमें तो कई रङ्ग धारण कर लेता है। जब यह हिम बनता है तब श्वेत हो जाता है और जब जल होकर बहता है तब कांचकी नाईं चमकने लगता है। कहीं यह झाग या फेन बनकर नवनीतका रूप ग्रहण कर लेता है। अथाह समुद्रमें यह गहरा नीला दिखता है। झीलोंमें इसकी और ही मनोहर छटा होती है। कहां तो इसका वाष्परूप और आकृति, और कहां तालाब, झील, नाला, नदी और विशाल समुद्र। फिर इसकी उपयोगिताका तो कहना ही क्या। प्राण और उद्भिज इसके बिना शरीर ही नहीं रख सकते। दुवाब और त्रिभुजाकार डेल्टाके उपजाऊ क्षेत्र यही जल बनाता है। हिमालयकी चोटीसे मिट्टी और कंकरको बङ्गालकी खाडीतक ले जानेका काम जल ही

करता है। बड़ी-बड़ी चट्टानोंके टुकडे यही बनाता है। कहातक लिखा जाय, इसकी सुन्दरता, विचित्रता, नानारूपता, और उपयोगिताएं वर्णनातीत हैं। इसका पूरा वर्णन करना आत्माको चित्राङ्कित करना है।

योरपीय तथा हमारे यहाके पुराणोंमें लिखा है कि बहते पानीपर मन्त्र-तन्त्र, जादू-टोना कुछ प्रभाव नहीं डाल सकता। चाहे यह उक्ति सच्ची हो या झूठी, हमें इसपर विचार नहीं करना है, परन्तु इस कल्पनामें सौन्दर्य्य और विनोद कितना गूढ है।

जलका प्रवाह मैले कुचेले पदार्थों को ही धोकर नहीं शुद्ध कर देता है, बलिक हमारे मस्तिष्कोंमें जो अधिक कार्य करने और सोच-विचारके कारण मकडीके जाले तन जाते और सडा हुआ गोबर भर जाता है, उसको भी तो वह बहा ले जाता है और हमारे शरीरोंको सुशक और स्वस्थ बना देता है। उससे नहाना धोना और उसका सेवन करना तो दूर रहा, उसके प्रवाहके दर्शनोंहीसे हमारा मस्तिष्क कितना स्वस्थ और ताजा हो जाता है। हिमाच्छादित क्षेत्रों और जलमें तैरते हुए विशाल हिम-पाषाणों, पावत्य निर्झरों, चमकीले नदों, शोभापूर्ण नदियों, झीलों, तालावों, और समुद्रोंमें इतना जादू है कि वे अत्यन्त दुःखी मनुष्यके मस्तिष्कको भी हराभरा कर देते हैं।

जलाशयके तटोंपर पुष्पोंके रङ्ग अधिक चमकीले और भाति-भातिके होते हैं। नदियोंके तट, इसी कारणसे, सुन्दर घासों,

पुष्पों और वृक्षोंके दीर्घ और विस्तृत प्राकृतिक उद्यान होते हैं। जलके जन्तु और पक्षी भी कितने रङ्ग-बिरंगे और सुन्दर होते हैं। स्वच्छ जलमें मछलियां तैरती हुई कितनी भली ज्ञात होती हैं। मुर्गाबियोंके पुञ्ज जलमें क्रीड़ा करते हुए कैसे सुन्दर एवं मनोहर प्रतीत होते हैं। किनारोंके पास एक टांगसे खड़े बगुले (बक) हिम जैसे श्वेत रंगको धारण किये हुए कितने चित्ताकर्षक होते हैं। जलमें कूदते-फांदते हरित और पीत रंगके मेंढ़क हमारे नेत्रोंको कितना हर्ष पहुंचाते हैं। जलके छोटे कीट आदि भी हर्षित और मनमौजी होते हैं।

जैसे जलके नाना रूप हैं—जैसे उसके भांति-भांतिके रंग हैं—वैसे ही उससे कई प्रकारके मधुर और भीषण शब्द भी निकलते हैं। वर्षामें उसकी बून्दोंकी छर-छर और पड़-पड़, पर्वतोंसे बहते हुए झरनोंकी झर-झर, नदियोंके प्रवाहोंकी कल-कल और घर घर, समुद्रकी लहरोंका भीषण निनाद, बादलोंमें उसकी घड़ घड़, झीलोंकी कल्लोलोंकी तटोंके पास थपक-थपक—ये सब उसके कैसे चित्ताकर्षक भिन्न भिन्न गान हैं।

उसके भाव भी कहीं भयङ्कर और भीषण, कहीं मधुर और शान्तिप्रिय, कहीं छिछोरे और चंचल होते हैं। झीलों और तालाबोंमें शांति और माधुर्य राज्य करते हैं। नदियों और समुद्रोंमें भीषणता और गम्भीरता दृष्टिगत होती हैं, चश्मों, नालों और फव्वारोंमें छिछोरपन और चाञ्चल्य भरे पड़े हैं।

झीलें नदियोंकी अपेक्षा कितनी शान्त और स्थिर होती हैं। नदियां न्यूनाधिक अंशमें सदैव बहती रहती हैं। वे बिलकुल कदापि नहीं ठहरतीं। सागर कुछ कालके लिये चाहे शान्त हो जाय परन्तु प्राय वह बल और शक्तिका प्रयोग करता ही रहता है। परन्तु झीलें सोई और स्वप्न लेती प्रतीत होती हैं। जहां चारों ओर वृक्ष, पुष्प, घासपात, पौधे इत्यादि प्रचुरतासे होते हैं वहां झील ऐसी प्रतीत होती है जैसे हरित मखमलपर रक्खा हुआ कोई चमकीला चान्दीका आभूषण, जैसे बहुमूल्य जड़ाऊ आभूषणमें कोई तरल रत्न, जैसे सुन्दर आननमें उज्ज्वल नेत्र। निस्सन्देह, जब हम किसी पासके पर्वत या टीलेपर खड़े होकर किसी झीलको देखते हैं, तब वह एक स्थूल और प्रकाशयुक्त विशाल नीलमणिसी ज्ञात होती है।

नदियोंकी कुछ और ही मनोहर छटा होती है। नदियोंसे मनुष्य केवल इसीलिये प्रेम नहीं करते हैं कि वे व्यापार और खेतीको सहायता पहुंचाती हैं। नहीं, उनसे मनुष्योंको बड़ा भारी आध्यात्मिक आनन्द मिलता है। एक अंग्रेज कवि, जिनकी नदियोंके प्रति अटल भक्ति थी, इसी विषयपर एक काव्य लिखते हैं जिसका छायानुवाद नीचे दिया जाता है—

"संसारपर मेरा परमेश्वर चाहे जिस प्रकार राज्य करे, चाहे अन्य मनुष्य लोभके लिये लड़ झगड़ें, संग्राम रचें या खानपानमें रत रहें, परन्तु मैं तो यही अभीष्ट रखता हूं कि मेरा वासस्थान नदी-तटोंपर रहे। वहां मेरी लेखनी भी भले ही जलमें डूब जाय

मुझे परवाह नहीं। जिनको आमोद प्रमोद और क्रीड़ाकी वासनाएं सतावें, वे जो चाहे सो करें। परन्तु मैं यही चाहता हूं कि नदियोंके सन्निकट हरित गोचरों और क्षेत्रोंमें, वनफशा, कमल आदि पुष्पोंसे अलङ्कृत तटोंपर स्वछन्दताके साथ टहलता फिरता रहूं।"

संसारके सब ही प्रदेशोंमें जलाशय और जल-प्रवाहके प्रति स्वच्छ हृदय और विचार-शील नर-नारियोंमें प्रेम और भक्ति होती ही है। भारतवर्ष में तो जलके लिये जो भक्ति और प्रेम है, उसका उल्लेख ही नहीं हो सकता। यहा तो जल देवता माना गया है, नदियोंके प्रति हिन्दुओंकी असीम और अनन्त भक्ति सदैवसे सुप्रख्यात है। गङ्गा, यमुना, सरस्वती, सर्यू और गोदावरी इत्यादि नदियोंको हमलोग माता तुल्य मानते हैं। विशेषत- गङ्गा तो हमारी पतितपावनी, हृदयेश्वरी माता है। इंगलैण्ड आदि विदेशोंके कवियों और महान् पुरुषोंने नदियोंके प्रति चाहे जितना भक्ति भाव काव्यके द्वारा या अन्य प्रकारसे प्रकट किया हो, परन्तु हमारे कवियोंने मन्दाकिनीके लिये जो असीम भक्ति और प्रेमके उद्गार कवितामें प्रकट किये हैं, उनके समक्ष वे विदेशीय काव्य नीरस प्रतीत होते हैं। उदाहरणार्थ, सुप्रख्यात गङ्गाभक्त जगन्नाथ कविने पतितपावनी माता भागीरथीके निमित्त जो कुछ लिखा है, उसमेंसे कुछ श्लोक यहापर दिये जाते हैं —

प्रभाते स्नातीना नृपतिरमणीना कुचतटी।
गतो यावन्मातर्मिलति तव तोयैर्मृगमदः ॥
मृगास्तावद्वैमानिकशतसहस्रैः परिवृता।
विशन्ति स्वच्छन्द विमलवपुषो नन्दनवनम् ॥
• ••• •• •• •
शरच्चन्द्रश्वेता शशिसकलशोभालमुकुटाम्।
करैः कुम्भाम्भोजे वरभयनिरासौ च दधतीम् ॥
सुधाधाराकाराभरणवसना शुभ्र मकर-
स्थिता त्वा ये ध्यायन्त्युदयति न तेषा परिभवः ॥

महानुभावों और सच्चरित्रोंकी बात जाने दीजिये। मूर्ख-से मूर्ख और अत्यन्त दुश्चरित्र हिन्दू भी गङ्गामाताके नामपर कदाचित् ही झूठ बोलता है। जिस हिन्दूकी अस्थियां गङ्गाजल-में न पड़े, उसकी सद्गतितक नहीं मानी गयी है। धन्य है आर्य्य-सन्तानकी भक्ति !!

नदीके पर्वत शिखरोंके निकाससे लेकर जहां वह समुद्रमें लय होती है, वहांतककी यात्राका अनुभव, कितना विनोदपूर्ण और आश्चर्य्य-कारक होता है। पर्वतके शिखरपर नन्हीं नन्हीं जल धारायें बनकर—जिनमेंसे प्रत्येकको एक टिड्डी भी लांघ सकती है—झरती हुई कुछ दूर ढलकर मिल जाती हैं। कहीं हरि-यालीमें छिपी हुई, कहीं पत्थरोंपर ढलकती हुई वह धारा शनै शनै वृद्धिङ्गत होती हुई हिमके टुकड़ोंको और कङ्कर पत्थरोंको बहाती हुई नीचेकी ओर दौड़ती है। पद पदपर इसका शरीर मोटा होता जाता है। अन्तत. यही नदी बनकर घाटियोंमें बहती

हुई विशाल स्वरूप धारण करके ऊंची-नीची समतल भूमियोंमें होकर निकलती हुई सैकड़ों कोसों दूरके समुद्रमे जा मिलती है। कहां पर्वत शिखरसे झरती हुई अल्प धारा और कहा समुद्रमें सम्मिलित होते हुए उसका विशाल काय! कितना आश्चर्य जनक विषय है। वही आरम्भकी नन्हीं जलधारा चट्टानों,दीर्घ वृक्षों, हिम-पाषाण इत्यादि सबको अपने शरीरमें स्थान-स्थानपर धारण करती हुई कही की-कहीं दौड़ जाती है।

पर्वतोंका विशालता और उन्नतताका घमण्ड जलद्वारा छिन्न-भिन्न हो जाता है। उनकी लोहे-जैसी सुदृढ़ चट्टान हिम द्वारा टूट जाती हैं—चूर-चूर हो जाती हैं और नदीके प्रवाहके साथ मैदानोंमें घसीटी जाती हैं। नदियोंके विषयमें अगले अध्यायमें पूरा विवरण दिया जायगा।

पाठकोंको स्मरण होगा कि इस अध्यायके आरम्भमें जल एक मिश्रित पदार्थ बताया गया है, यद्यपि हमारे यहा यह पंच तत्वोंमें एक तत्व माना गया है। पहले भारतमेंही नहीं, योरप-में भी यह तत्व ही माना जाता था। परन्तु इधर कुछ कालसे अब यह एक मिश्रित द्रव्य माना गया है। वैज्ञानिकोंने प्रमाणित है कि जल हाईड्रोजन और आक्सीजन नामक दो गैस gases) का सम्मेलन है। यह सिद्ध हो गया जलके एक अणुमें दो परमाणु हाईड्रोजनके और एक पर-णु आक्सीजनका है। विज्ञान शास्त्रमें जलका सङ्केत सूचक इसीलिये हा$_2$,आ$_1$ रखा गया है ($H_2 O_1$)। प्रकृतिमाताकी कैसी

विचित्रता है कि जो स्वयं एक साक्षात् रूपसे तत्व दिखाई देता है और जिसके बिना संसार शून्य है, वह तत्व न होकर एक मिश्रित द्रव्य है। विज्ञान शालाओंमें जलकी रचना विद्यार्थियोको दिखलाई जाती है। एक कार्कसे गाढी कसी हुई बोतलमें हाईड्रोजन गैस है और एकमें आक्सीजन है। दोनोंकी डाटे खोलनेपर जब दोनों वायु मिलाई जाती हैं, तब आरम्भमें एक भनकका शब्द होता है और फिर नीचेको टपटप जल बिन्दु पड़ने लगते हैं।



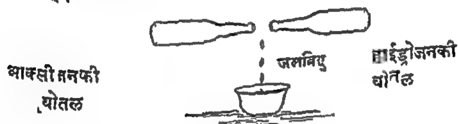
जलके विषयमें एक अद्भुत बात यह है कि वह अपना इन्जीनियर आप है। अर्थात् यह द्रव्य अपना मार्ग आप स्वावलम्बनसे ढूंढ लेता है। उदाहरणार्थ, एक चूने पत्थरका पक्का हौज बना दिया जाय। बननेके पश्चात् हमें वह हौज बहुत दृढ दिखाई देगा। परन्तु जब यह जलसे भर दिया जायगा तब यथार्थमें पता चलेगा कि यह पक्का है कि नहीं। किसी भी कोने या दीवार या आगनमें यदि कोई छेद रह गया है, तो जल उसीको अपना मार्ग बना लेगा और बाहर फूट पड़ेगा। पर्वतोंपर, क्षेत्रोंमें सर्वत्र जल स्वयं जिधर अनुकूल मार्ग पाता है, उधर ही होकर बहने लगता है।

हुई विशाल स्वरूप धारण करके ऊंची-नीची समतल भूमियोंमें होकर निकलती हुई सैकड़ों कोसों दूरके समुद्रमें जा मिलती है। कहा पर्वत शिखरसे झरती हुई अल्प धारा और कहा समुद्रमें सम्मिलित होते हुए उसका विशाल काय! कितना आश्चर्य जनक विषय है। वही आरम्भकी नन्हीं जलधारा चट्टानों, दीर्घ वृक्षों, हिम-पाषाण इत्यादि सबको अपने शरीरमें स्थान-स्थानपर धारण करती हुई कहीं की-कहीं दौड़ जाती है।

पर्वतोंका विशालता और उन्नतताका घमण्ड जलद्वारा छिन्न-भिन्न हो जाता है। उनकी लोहे-जैसी सुदृढ़ चट्टान हिम द्वारा टूट जाती हैं—चूर-चूर हो जाती हैं और नदीके प्रवाहके साथ मैदानोंमें घसीटी जाती हैं। नदियोंके विषयमें अगले अध्यायमें पूरा विवरण दिया जायगा।

पाठकोंको स्मरण होगा कि इस अध्यायके आरम्भमें जल एक मिश्रित पदार्थ बताया गया है, यद्यपि हमारे यहा यह पच तत्वोंमें एक तत्व माना गया है। पहले भारतमेंही नहीं, योरप में भी यह तत्व ही माना जाता था। परन्तु इधर कुछ कालसे अब यह एक मिश्रित द्रव्य माना गया है। वैज्ञानिकोंने प्रमाणित है कि जल हाईड्रोजन और आक्सीजन नामक दो (गैस gases) का सम्मेलन है। यह सिद्ध हो गया जलके एक अणुमें दो परमाणु हाईड्रोजनके और एक पर- आक्सीजनका है। विज्ञान-शास्त्रमें जलका सङ्केत सूचक इसीलिये *हा*$_2$*आ*$_1$ रखा गया है ($H_2 O_1$)। प्रकृतिमाताकी कैसी

विचित्रता है कि जो स्वयं एक साक्षात् रूपसे तत्त्व दिखाई देता है और जिसके बिना संसार शून्य है, वह तत्त्व न होकर एक मिश्रित द्रव्य है। विज्ञान-शालाओंमें जलकी रचना विद्यार्थियोंको दिखलाई जाती है। एक कार्कसे गाढ़ी कसी हुई बोतलमें हाई-ड्रोजन गैस है और एकमें आक्सीजन है। दोनोंकी डाटे खोलने-पर जब दोनों वायु मिलाई जाती हैं, तब आरम्भमें एक भभकका शब्द होता है और फिर नीचेको टपटप जल-बिन्दु पड़ने लगते हैं।



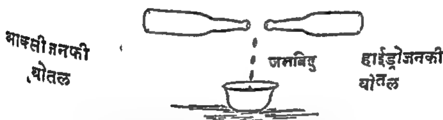
जलके विषयमें एक अद्भुत बात यह है कि वह अपना इंजी-नियर आप है। अर्थात् यह द्रव्य अपना मार्ग आप स्वावलम्बन-से ढूंढ़ लेता है। उदाहरणार्थ, एक चूने पत्थरका पक्का हौज बना दिया जाय। बननेके पश्चात् हमें वह हौज बहुत दृढ़ दिखाई देगा। परन्तु जब वह जलसे भर दिया जायगा तब यथार्थमें पता चलेगा कि वह पक्का है कि नहीं। किसी भी कोने या दीवार या आगनमें यदि कोई छेद रह गया है, तो जल उसीको अपना मार्ग बना लेगा और बाहर फूट पड़ेगा। पर्वतोंपर, क्षेत्रोंमें सर्वत्र जल स्वयं जिधर अनुकूल मार्ग पाता है, उधर ही होकर बहने लगता है।

हुई विशाल स्वरूप धारण करके ऊँची-नीची समतल भूमियोंमें होकर निकलती हुई सैकड़ों कोसों दूरके समुद्रमें जा मिलती है। कहां पर्वत शिखरसे झरती हुई अल्प धारा और कहा समुद्रमें सम्मिलित होते हुए उसका विशाल काय! कितना आश्चर्य जनक विषय है। वही आरम्भकी नन्हीं जलधारा चट्टानों, दीर्घ वृक्षों, हिम-पाषाण इत्यादि सबको अपने शरीरमें स्थान स्थानपर धारण करती हुई कहीं-की-कहीं दौड़ जाती है।

पर्वतोंका विशालता और उन्नतताका घमण्ड जलद्वारा छिन्न-भिन्न हो जाता है। उनकी लोहे-जैसी सुदृढ़ चट्टान हिम द्वारा टूट जाती हैं—चूर-चूर हो जाती हैं और नदीके प्रवाहके साथ मैदानोंमें घसीटी जाती हैं। नदियोंके विषयमें अगले अध्यायमें पूरा विवरण दिया जायगा।

पाठकोंको स्मरण होगा कि इस अध्यायके आरम्भमें जल एक मिश्रित पदार्थ बताया गया है, यद्यपि हमारे यहा यह पंच तत्वोंमें एक तत्व माना गया है। पहले भारतमेंही नहीं, योरप-में भी यह तत्व ही माना जाता था। परन्तु इधर कुछ कालसे अब यह एक मिश्रित द्रव्य माना गया है। वैज्ञानिकोंने प्रमाणित कर दिया है कि जल हाईड्रोजन और आक्सीजन नामक दो वायुओं (गैस gases) का सम्मेलन है। यह सिद्ध हो गया है कि जलके एक अणुमें दो परमाणु हाईड्रोजनके और एक परमाणु आक्सीजनका है। विधान शास्त्रमें जलका सङ्केत सूचक इसीलिये हा,आ; रखा गया है ($H_2 O_1$)। प्रकृतिमाताकी कैसी

विचित्रता है कि जो स्वयं एक साक्षात् रूपसे तत्व दिखाई देता है और जिसके बिना संसार शून्य है, वह तत्व न होकर एक मिश्रित द्रव्य है। विज्ञान-शालाओंमें जलकी रचना विद्यार्थियोंको दिखलाई जाती है। एक कार्कसे गाढी कसी हुई बोतलमें हाईड्रोजन गैस है और एकमें आक्सीजन है। दोनोंकी डाटे खोलनेपर जब दोनों वायु मिलाई जाती हैं, तब आरम्भमें एक भभकका शब्द होता है और फिर नीचेको टपटप जल बिन्दु पडने लगते हैं।



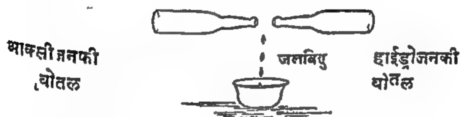
जलके विषयमें एक अद्भुत बात यह है कि वह अपना इञ्जीनियर आप है। अर्थात् यह द्रव्य अपना मार्ग आप स्वावलम्बनसे ढूंढ लेता है। उदाहरणार्थ, एक चूने पत्थरका पक्का हौज बना दिया जाय। बननेके पश्चात् हमें वह हौज बहुत दृढ दिखाई देगा। परन्तु जब वह जलसे भर दिया जायगा तब यथार्थमें पता चलेगा कि वह पक्का है कि नहीं। किसी भी कोने या दीवार या आंगनमें यदि कोई छेद रह गया है, तो जल उसीको अपना मार्ग बना लेगा और बाहर फूट पडेगा। पर्वतोंपर, खेतोंमें सर्वत्र जल स्वयं जिधर अनुकूल मार्ग पाता है, उधर ही होकर बहने लगता है।

हुई विशाल स्वरूप धारण करके ऊंची-नीची समतल होकर निकलती हुई सैकड़ों कोसों दूरके समुद्रमें जा कहा पर्वत शिखरसे झरती हुई अल्प धारा और सम्मिलित होते हुए उसका विशाल काय! कितना जनक विषय है। वही आरम्भकी नन्हीं जलधारा वृक्षों, हिम-पाषाण इत्यादि सबको अपने शरीरमें स्था धारण करती हुई कहीं की कहीं दौड़ जाती है।

पर्वतोंका विशालता और उन्नतताका घमण्ड छिन्न-भिन्न हो जाता है। उनकी लोहे-जैसी सुदृढ़ द्वारा टूट जाती हैं—चूर-चूर हो जाती हैं और नदि साथ मैदानोंमें घसीटी जाती हैं। नदियोंके वि अध्यायमें पूरा विवरण दिया जायगा।

पाठकोंको स्मरण होगा कि इस अध्यायके आ एक मिश्रित पदार्थ बताया गया है, यद्यपि हमारे य तत्वोंमें एक तत्व माना गया है। पहले भारतमेंही में भी यह तत्व ही माना जाता था। परन्तु इधर अब यह एक मिश्रित द्रव्य माना गया है। वैज्ञानिकों कर दिया है कि जल हाईड्रोजन और आक्सीजन वायुओं (गैस gases) का सम्मेलन है। यह सि है कि जलके एक अणुमें दो परमाणु हाईड्रोजनके औ माणु आक्सीजनका है। विज्ञान शास्त्रमें जलका स इसीलिये हा२ आ१ रखा गया है ($H_2 O_1$)। प्रकृतिमा

विचित्रता है कि जो स्वयं एक साक्षात् रूपसे तत्व दिखाई देता है और जिसके बिना संसार शून्य है, वह तत्व न होकर एक मिश्रित द्रव्य है। विज्ञान-शालाओंमें जलकी रचना विद्यार्थियोंको दिखलाई जाती है। एक कार्कसे गाढी कसी हुई बोतलमें हाईड्रोजन गेस है और एकमें आक्सीजन है। दोनोंकी डाटे खोलने-पर जब दोनों वायु मिलाई जाती हैं, तब आरम्भमें एक भभकका शब्द होता है और फिर नीचेको टपटप जल बिन्दु पड़ने लगते हैं।



जलके विषयमें एक अद्भुत बात यह है कि वह अपना इंजीनियर आप है। अर्थात् यह द्रव्य अपना मार्ग आप स्वावलम्बन-से ढूढ लेता है। उदाहरणार्थ, एक चूने पत्थरका पक्का हौज बना दिया जाय। बननेके पश्चात् हमें वह हौज बहुत दृढ दिखाई देगा। परन्तु जब वह जलसे भर दिया जायगा तब यथार्थमें पता चलेगा कि वह पक्का है कि नहीं। किसी भी कोने या दीवार या आगनमें यदि कोई छेद रह गया है, तो जल उसीसे अपना मार्ग बना लेगा और बाहर फूट पड़ेगा। पर्वतोंपर, क्षेत्रोंमें सर्वत्र जल स्वयं जिधर मार्ग पाता है, उधर ही होकर बहने लगता है।

जल-प्रवाहसे वह जाते हैं। अतः भारतमें तथा सभी देशोंमें जहा-कहीं हम अधिक ढालू और खुर्दरी भूमि देख हमें समझ लेना चाहिये कि वहा या तो वर्षा कम होती है और या वहाकी भूमि कठोर और चट्टानी है। इसके विरुद्ध जहां मुलायम भूमि है—जहा चट्टानें कडी नही हैं और ढाल अधिक नहीं है, वहा समझ लेना चाहिये कि जलने अपनी प्रवाह-क्रियामें बहुत कुछ सफलता पायी है।

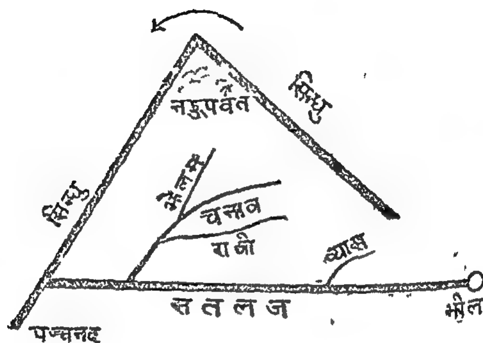
हिम और पाला—जलपर जब शीतका अधिकतर प्रभाव पडता है तब जल हिममें परिणत हो जाता है। यहापर हम इसका कुछ अधिक वर्णन देनेकी आवश्यकता नहीं। हमें यहा केवल इसकी जाच करनी है कि हिम भूमिके परिवर्तन करनेमें क्या विचित्र क्रिया करता है। हिमालय पर्वतकी उन्नत घाटियोंमें हिमके विस्तृत क्षेत्र हैं—हिमकी चट्टानें हैं जिनको अंग्रेजीमें ग्लैशियर कहते हैं—हम इनको सुविधाके लिये हिम-चट्टान कहेंगे। ये कभी-कभी सौ फीट मोटी होती हैं और घाटियोंमें अपने स्थानोंको अनायास ही छोड़कर वहने लगती हैं। अपने पार्श्वोंमें लगे हुए कंकर-पत्थर और कीचड़-मिट्टीको भी ये साथ ही फिसलते समय नीचे घाटियोंमें ले आती हैं। घाटियोंके निम्न भागोंमें पहुंचकर ये हिम-चट्टान पिघलने लगती हैं। उनमें लगे हुए पर्वतके कंकर-पत्थर और कीचड इत्यादि नीचेकी जलधाराओंमें वह जाते हैं। यही जलधाराए नदियोंकी सृष्टि करती हैं। अब विचार किया जा सकता है कि हिमपर्वतोंको विदीर्ण

करने और नदियोंके लिये मार्ग बनानेमें जल सदैव कितना भारी और कठिन कार्य्य सम्पादित करता है। भारतके हिमालय और योरपके आल्प्स इत्यादि पर्वतोंकी प्रत्येक उन्नत चट्टानके नीचे पाषाणके हिमसे तोड़े हुए खड्हरोंके समूह-के-समूह पड़े रहते हैं। ससारका हिम एक विशाल शिल्पकार है। मानव शिल्पकार इसके सम्मुख तृणवत् है॥

नदिया—देशके आवश्यकतासे अधिक जलको नदिया बहाकर समुद्रमें ले जाती हैं। भारत-जैसे देशमें जहां-जहा भानु-ताप बहुत है, नदियोंके जलका कुछ अश उष्णताके कारण वाष्प बनकर उड़ जाता है। इसीलिये इस देशकी वे नदिया जिनमें सहायक नदिया सम्मिलित नहीं होती, ग्रीष्म ऋतुमें क्षीण हो जाती अथवा कई नितान्त शुष्क हो जाती हैं। योरप आदि शीत-प्रधान देशोंमें यह सूखनेकी व्यवस्था नहीं पायी जाती।

दक्षिणकी नदिया—जहा नवम्बरसे अप्रेलतक वर्षा बहुत कम होती है—केवल झरनोंके जलहीसे बहती हैं। गङ्गा आदि महानदियोंपर मनुष्यकी कृपा हुई है। उनसे खेतीके लिये नहरें काट ली गई हैं। इससे उनका प्रवाह घट जाता है।

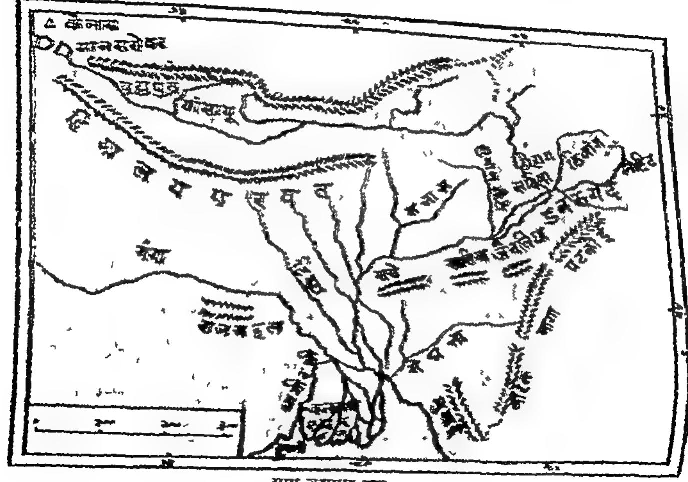
यह तो स्पष्ट ही है कि नदिया उन्नत स्थलोंसे निम्न स्थलोंको बहती हैं। उनकी धाराओंके प्रवाहोंकी गति तीन व्यवस्था-ओंपर अवलम्बित रहती है (१) जिधर होकर वे निकलती हैं वहाकी भूमिकी ढालपर (२) जलके प्रसार और परिमाणपर और (३) भूमिके चिकनेपन और कोमलता अथवा कठोरतापर।



सिन्धु-क्रमका साधारण नकशा

गङ्गा-ब्रह्मपुत्रक्रम—इस क्रमका बहाव बड़ा विस्तृत है। उत्तरकी ओर हिमालय पर्वतश्रेणी, दक्षिणमें विन्ध्याचल श्रेणी और उसके आगे बढ़े हुए खण्ड और पूर्वमें पटकोई और लूशाई श्रेणियां तथा जेन्तिया, खासी, और गारो पर्वत। आगे जो नक्शा दिया गया है उससे यह क्रम और भी ठीक ... आ जायगा।

गङ्गा आरम्भमें दक्षिणकी ... निम्न दिशामें राजमहल पहाड़ोंके चक्कर ... गङ्गा हिमालयकी गढवाली श्रे... ...र्ती है। कुछ ही आगे बढ़नेपर ...



गंगा-ब्रह्मपुत्र क्रम

इन दोनोंके सङ्गमके अनन्तर गङ्गाकी पार्वत्य यात्रा, सिवालिक-श्रेणीसे हरिद्वारके पास बाहर निकलते ही समाप्त हो जाती है। इसकी यात्राकी दूसरी मंजिल हरिद्वारसे ग्वालन्दोतक है। यह मंजिल संसारके अत्यन्त उर्वर स्थलोंमेंसे है। और इसी स्थलमें इसकी सहायक नदियां इसमें मिलती हैं। राजमहल पर्वतोंका चक्कर काटनेके पश्चात् इसकी कई धाराएं होने लगती हैं। उनमें प्रशस्त भागीरथी है। उसीका नाम आगे चलकर हुगली हो जाता है, जिसके तटपर कलकत्ता बसा हुआ है। इससे आगे विशिष्ट धारा पद्मा दक्षिण-पूर्वको बहती हुई ग्वालन्दो पहुंचती है, जहां इसके साथ ब्रह्मपुत्रका सङ्गम होता है। यहांसे त्रिभुजाकार स्थल आरम्भ होता है।

गंगाकी सहायक नदियां—दाहिने तटपर मिलनेवाली अलकनन्दा, रामगङ्गा, गोमती, घाघरा (इसकी सहायिका काली, शारदा, और राती हैं),गण्डक और कोशी हैं। गोमतीके अतिरिक्त ये सब हिमाचल श्रेणीसे निकलती हैं। वाम तटपर मिलने-वाली यमुना और उसकी सहायक चम्बल, सिन्ध, बेतवा और केन, टोन और सोन नदियां हैं। दामोदर बहुत आगे जाकर,

...है। ... निकलती है। घाघरा,गण्डक

... तिब्बतसे निकलकर श्रेणियोंमें

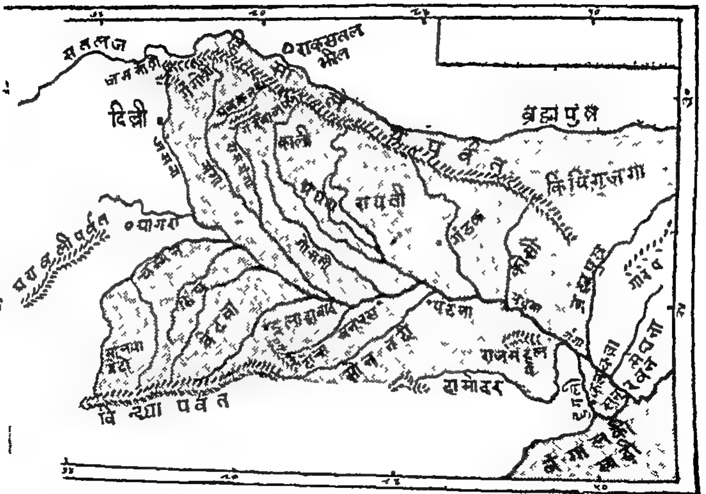
... हैं। केवल गोमती निम्न स्थ-

...माणको देखते हुए

...न्तु इसका उद्गम-

...र्ता।

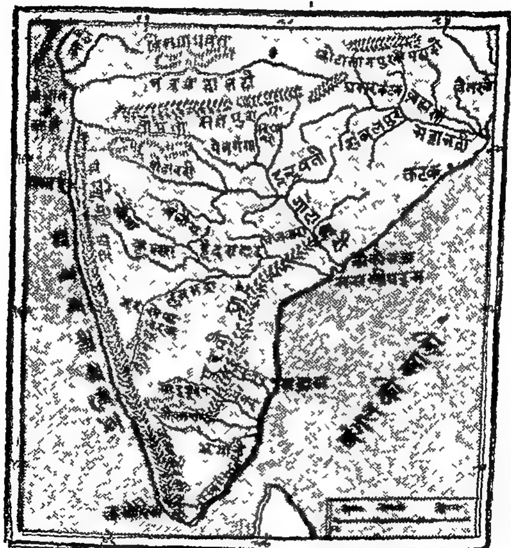
...यक


सतलज
दिल्ली
ब्रह्मपुत्र
काली
गोमती
पदमा
राजमहल
दामोदर
विन्ध्या पर्वत

इन दोनोंके सङ्गमके अनन्तर गङ्गाकी पार्वत्य यात्रा, सिवालिक-श्रेणीसे हरिद्वारके पास बाहर निकलते ही समाप्त हो जाती है। इसकी यात्राकी दूसरी मंजिल हरिद्वारसे ग्वालन्दोतक है। यह मंजिल संसारके अत्यन्त उर्वर स्थलोंमेंसे है। और इसी स्थलमें इसकी सहायक नदियां इसमें मिलती हैं। राजमहल पर्वतोंका चक्कर काटनेके पश्चात् इसकी कई धाराएं होने लगती हैं। उनमें प्रशस्त भागीरथी है। उसीका नाम आगे चलकर हुगली हो जाता है, जिसके तटपर कलकत्ता बसा हुआ है। इससे आगे विशिष्ट धारा पद्मा दक्षिण-पूर्वको बहती हुई ग्वालन्दो पहुंचती है, जहां इसके साथ ब्रह्मपुत्रका सङ्गम होता है। वहांसे त्रिभुजाकार स्थल आरम्भ होता है।

गंगाकी सहायक नदियां—दाहिने तटपर मिलनेवाली अलकनन्दा, रामगङ्गा, गोमती, घाघरा (इसकी सहायिका काली, शारदा, और राती हैं), गण्डक और कोशी हैं। गोमतीके अतिरिक्त ये सब हिमावल श्रेणीहीसे निकलती हैं। वाम तटपर मिलनेवाली यमुना और उसकी सहायक चम्बल, सिन्ध, बेतवा और केन, टोन और सोन नदियां हैं। दामोदर बहुत आगे जाकर मिलती है। यमुना भी हिमालयहीसे निकलती है। घाघरा, गण्डक और कोशी हिमालयके पीछे तिब्बतसे निकलकर श्रेणियोंमें होकर अपना प्रवाह-मार्ग बनाती हैं। केवल गोमती निम्न स्थलोंहीसे निकलती है। यमुना प्रवाहके परिमाणको देखते हुए गङ्गाकी सहायक नदियोंमें प्रधान नहीं है, परन्तु इसका उद्गम-

प्राकृतिक सौन्दर्य ——



विस्तार भयके कारण भारतकी नदियोंका केवल साधारण और संक्षिप्त वर्णन ही नीचे दिया जाता है।

दक्षिणके उन्नत स्थलकी नदियां लम्बी और प्राय सीधी यात्रा करती हुई पूर्वीय घाटोंमें होकर त्रिभुजाकार क्षेत्र बनाती हुई समुद्रमें प्रविष्ट होती हैं। उत्तरसे दक्षिणको बहनेवाली प्रधान नदियां महानदी, गोदावरी, कृष्णा, पनार, पालार, कावेरी, वायगाय और ताम्रपर्णी हैं। इनके त्रिभुजाकार क्षेत्र बड़े उपजाऊ और हरेभरे हैं।

नर्म्मदा, ताप्ती, माही और शुभ्रमती आरब्य समुद्रमें गिरती हैं। नर्म्मदा और ताप्तीके मार्ग समान हैं। यह चट्टानी उन्नत-स्थलोंसे निकलकर उछलती कूदती संकीर्ण परन्तु उर्वर घाटियोंमें होकर समुद्रसे मिलती हैं। इनके त्रिभुजाकार क्षेत्र नहीं है। शुभ्रमती और माही विन्ध्याचल और अरावली पर्वत श्रेणियोंके मध्यस्थ मालव पठारका पानी लेती हुई काम्बेकी खाड़ीमें लीन होती हैं।

नदियोंके उद्गम, प्रवाह मार्ग, तट, त्रिभुजाकार स्थल इत्यादिके विषयमें लार्ड आवरी तथा और कई विद्वानोंने नाना प्रकारकी सुन्दर और विचित्र व्यवस्थाएं बतलाई हैं जिनका यहांपर उल्लेख करना विस्तारकी वृद्धिके भयसे उचित नहीं प्रतीत होता। जितना कुछ इन पृष्ठोंमें उनके विषयमें लिखा जा चुका है उसीसे पाठकोंको उनके सौन्दर्य और अद्भुतताका ... हो सकता है।

सरोवर (झील)

वह जलाशय जो चारों ओर भूमिसे घिरा हुआ होता है, झील कहलाता है। झीलोंकी उत्पत्तिका विषय घाटियोंकी उत्पत्तिके विषयके समान नहीं है। घाटिया वर्षा और नदी तथा उनकी मिट्टीकी कोमलता या कठोरताके अनुसार बनती हैं। परन्तु झीलें बहते हुए पानीसे नहीं बन सकतीं। घाटियोंके निर्माणसे झीलोंका सम्बन्ध नहीं है। परन्तु फिर भी यदि घाटियोंमे ढालूपन न हो अर्थात् यदि घाटिया समतल हो तो झीलें होंगी ही नहीं। फिर झीलोंकी रचना किस प्रकार है ?

प्रोफेसर रैम्सेने झीलोंके तीन प्रकार बताये हैं—

(१) जो आकस्मिक (नदी द्वारा) आये हुए कीचड आदिसे बनती हैं। ये बहुधा छिछली होती हैं।

(२) जो चट्टानोंमे हिमपर्वतके प्राबल्यसे कटकट कर बनी हैं।

(३) जो हिमपर्वतोंके कई समूहोंके सघर्पसे बनी हैं।

लार्ड आवरी झीलोंके निम्नाङ्कित प्रकार और बताते हैं —

(४) जो भूतलकी उन्नतता या निम्नताके कारण बनी हैं।

(५) जो पुराने ज्वालामुखी पर्वतोंके शान्तमुखोंमे बन गई हैं, जैसे एवर्नसकी झील।

(६) जो नीचेकी कोमल और पानीमें घुलनेवाली चट्टानोंके धिठावके कारण बनी हैं ? जैसे ईगलेण्डके चेशियरके प्रान्तमें हैं।

(७) जो नदीके मार्गके परिवर्तनसे बनी हैं, जैसे योरपकी राइन नदीके मार्गके आसपास स्थानोंमें हैं।

(८) जो चट्टानोंके गिरने या भूडके धसने या ज्वालामुखीके निकले हुए पदार्थोंके कारण नदीके प्रवाहमें एकदम रुकावट उत्पन्न होनेसे रची गयी हैं।

(९) जो किसी घाटीमें बहते हुए हिमपर्वत (ग्लेशियर) के रुक जानेके कारण बन गई हैं।

प्रथम प्रकारकी छिछली झीलें ससारके सब ही भागोंमें न्यूनाधिकांशमें पाई जाती हैं। कइयोंमें सदैव जल रहता है, कइयोंमें कभी-कभी। बीकानेर राज्यमें हनुमानगढ तहसीलमें ऐसी झील है। वर्षाकालमें एक नद बहकर आता है। वहा धरती समतल है, इसलिये वह वहीं विस्तृत हो जाता है। किसी वर्ष यदि अधिक वर्षा होती है तब तो जल वर्षभर ठहर जाता है, नहीं तो दो-चार मासमें शुष्क हो जाता है। एक साधारण तालाब भी इसी प्रकारकी झील है। योरपमें होन और सेवोन नदियोंके मध्यके प्रदेशमें और उत्तर अमरीकाके ओरलियन्स प्रान्तमें ऐसी झीलें बहुत हैं। इनमें अधिक गहराई नहीं होती, पानी छिछला फैला हुआ रहता है। इनमेंसे कइयोंके पेंदेमें कंकर या चट्टानी पाषाण हैं जिनमें होकर जल भूगर्भमें नहीं जाता, इसीलिये उनमें थोडा बहुत जल सदैव बना रहता है। जिनके तले बालुका या अन्य किसी प्रकारकी मुलायम मिट्टीके बने हुए होते हैं, उनका जल भूगर्भमें चला जाता है। इसीलिये वे सूख जाती हैं।

तीसरे प्रकारमें हिमालयका मानसरोवर तथा स्विजरलैण्ड

और इटलीकी कई झील हैं। ये हिमपर्वतों (ग्लेशियर) की क्रियासे बनी हैं। इनके पर्दे चट्टानोंके हैं। स्विजरलैण्डमें जेनीवाकी झील समुद्र तलसे १२३० फीट उन्नत १००० फीट गहरी है। थन झील समुद्र तलसे १८२० फीट उन्नत और ७१० फीट गहरी है। इटली देशकी झीलें और भी बढ़िया हैं। वहाकी कोमो नामक झील समुद्रतलसे ७०० फीट उन्नत और १७०० फीट गहरी है। मेगीयोर सरोवर समुद्रतलसे ६८५ फीट ऊंचा और २००० फीट गहरा है। इसका पदा समुद्रतलसे भी नीचा है।

हमारा मस्तिष्क तो अवश्यमेव चकरा जायगा परन्तु व्यवस्था ऐसी ही है कि जेनीवाकी उस घाटीकी खुदाईके लिये, जिसमें अब झील है, ४००० फीट लगभग मोटी हिमकी सिल प्रकृतिने काममें ली होगी। बिना इतने मोटे और विस्तृत हिम-पर्वतके यह झील बन नहीं सकती थी। स्मरण रखना चाहिये कि एक हिमपर्वत (ग्लेशियर), जो कई हजार फीट मोटा हो, जिस स्थानपर होकर निकले उसपर कितना दबाव और आघात डालता होगा। निस्सन्देह इसके नीचेकी और पार्श्वकी चट्टानोंके टुकड़े-टुकड़े हो जाते हैं। वेही नदियोंमें बहकर नीचे उतरते हैं। इस प्रकारका बारम्बार छेदन अवश्यमेव एक गहरी झील बना सकती है। जैसे रेगमालकी रगड़से लकड़ी घिस जाती है, वैसे ही इन हिमपर्वतोंके संघर्षसे चट्टानें रगड़ी जाती हैं। नदिया भी पाषाणको काटनेके लिये आरे हैं, परन्तु वे अपना मार्ग ही बहुधा काटती हैं, झील नहीं बनातीं।

जैसे छेनीसे हथौड़ेकी बारम्बार चोट दे देकर हम किसी पाषाणमें झरी बना लेते हैं, उसी प्रकार, ग्लेशियरके बोझ और संघर्षसे चट्टानोंमें बहुत विस्तृत और गहरे खड्डे अनन्तकालमें बन गये, उनमें जल भर गया और वे झीलें हो गई।

अमरीकाकी विस्तृत झीलें सुपीरियर, मिशीगेन, ह्यूरन, ईरी, और ओन्टेरिया इत्यादि भूमिकी निम्नता और उन्नतताके कारण निर्मित हुई है। उदाहरणार्थ, ओन्टोरिया झीलका एक ओरका तट समुद्रतलसे केवल ३६३ फीट ऊंचा है, परन्तु पूर्व और उत्तरकी ओर यह ६७२ फीट उन्नत है। इसी कारण निम्न-भागकी ओरके प्रदेशका जल उसमें बह आया।

सन् १८१६ के भूकम्पके समय भारतवर्षकी कच्छकी खाडी का कुछ भाग जो २००० मुरब्बा मील है दससे बीस फीटतक नीचे बैठ गया। बिठावकी रेखा जब दक्षिणकी ओरसे देखी जाती है तब एक दीवार या किनार सी दृष्टिगत होती है। इसको वहांके कच्छी मुसलमान अल्लाहका बन्ध कहते हैं। यह दीवार ५० मील लांबी और लगभग १६ मील चौड़ी है। यह कुछ ऊपर उठी हुईसी प्रतीत होती है और इसीने सिन्धु नदीकी एक प्राचीन भुजाको रोककर झीलका सा आकार दे दिया। कई झीलें और स्थल सीमान्त समुद्र, कई भौगोलिक परिवर्त्तनोंके कारण बने हुए प्रतीत होते हैं। इनकी व्यक्तिगत रचनाओंका पूरा पूरा अनुसन्धान नहीं हुआ है। यदि ध्रुवकी ओर दस डिगरीतक झुकी हुई एक रेखा खींची जाय,

तो वह जिब्राल्टरसे आरम्भ होकर मैडिटरैनियन, ब्लैकसी, कैस्पियन,और यूराल नामक क्षार-समुद्रोंमें और बैकाल सरोवरमें होती हुई अमरीकाकी सुप्रख्यात झीलोंमें होती हुई निकलेगी। इससे प्रतीत होता है कि ये विस्तृत जलाशय कुछ भूगोलकी प्राकृतिक क्रियाके द्वारा बने हैं।

वैसे तो झीलोंके निर्माणके लगभग आठ प्रकार विद्वानोंने बताये हैं, परन्तु साराश और वास्तवमें इन सरोवरोंकी रचना जलकी क्रियासे हुई है। बडी-बडी झीलों, घाटियों और नदियोंको देखकर हम आश्चर्यसे अवाक् रह जाते हैं। परन्तु ध्यानपूर्ण अध्ययन हमें तत्काल बता देता है कि ये सब करतूत 'जलदेव' की हैं। आज ही वर्षा हो जाय तो उसके जलकी भांति भांतिकी जो क्रियाए हमारे वासस्थानके आस-पास हो, वे ध्यानपूर्वक देखी जाय। कहीं नीची भूमिमें तलाई भर जायगी, गड्ढेमें बावी बन जायगी, प्रवाहसे कहीं नली बन जायगी और बही हुई मिट्टी और कंकर-पत्थरसे कहींकी भूमि उन्नत हो जायगी, कहीं कोई खड्डा भरकर समतल हो जायगा। ये एक दिनकी वर्षाद्वारा आये हुए जलके निर्माण हैं। इन नन्हें-नन्हें निर्माणोंसे हम अनन्तकालसे अथाह परिमाणमें आये हुए जलसे जो विशाल निर्माण हुए हैं, उनका अच्छी तरह अनुमान कर सकते हैं। सच है —"पार नहीं पायो जल तेरी प्रभुताई को"।

घाटियोंकी बनावट

साधारणत यह विषय नदियोंके वर्णनमें ही आ चुका है, परन्तु इसपर दो शब्द पृथक् भी लिख देना आवश्यक जान पड़ता है। वैसे तो घाटी जलके प्रवाहहीसे बनती है। जैसा संकीर्ण या विस्तृत जल-प्रवाह होगा वैसी ही वह घाटी बनावेगा। परन्तु एक ही घाटी अपने भिन्न भिन्न स्थानोंपर नाना कारणोंसे भांति-भांतिकी हो सकती है। कुछ घाटियां भूगर्भके परतोंकी सिलवटोंमें परिवर्त्तन होनेसे भी बनी हैं, परन्तु अधिकांश जलके कटावहीसे निर्मित हुई हैं। भूमिका जितना अधिक ढालूपन होता है, उतना ही जल प्रवाह तेज होता और मिट्टीको अधिक काटता है। परन्तु मुलायम मिट्टी जितनी आसानीसे कटकर बह जाती है, उतनी कठोर और चट्टानी मिट्टी नहीं कटती है। इसीलिये पथरीली घाटी उतनी विस्तृत और गहरी नहीं होती जितनी कोमल मिट्टीकी होती है। जल बहते-बहते नीचेकी भूमिको काटकर जब पर्याप्त ढालूपन प्राप्त कर लेता है, तब पेंदेका कटाव तो बन्द हो जाता है और बाढ आनेसे दोनों ओरके पार्श्व कटने लगते हैं। कटावके जो कंकर-पत्थर और कीचड होते हैं वे कुछ तो बहते जाते हैं और कुछ घाटीहीमें इधर-उधर छुटते जाते हैं। इसीलिये जब किसी नदीका पाट खूब चौडा हो जाता है तब वह कभी इधर तो कभी उधरके तटके पास होकर बहती है। अन्तमें जल प्रवाहकी तेजी बहुत घट जाती है तब उसमें अपने लाये हुये कीचड और

कंकरीटको आगे ले जानेकी शक्ति नहीं रहती। अत. वहा-, जैसा कि पहले लिखा जा चुका है—त्रिभुजाकार क्षेत्र बनने लगता है। नदीकी जो तीन मंजिलें बताई जा चुकी हैं उनकी तीन व्यक्तिगत क्रियाएं ये हैं·—

(१) पेंदेको खोदना और पाटको विस्तृत करना।

(२) पाटको विस्तृत करना और समतलता प्राप्त करना।

(३) निम्नभूमिको कीचड-मिट्टीसे भरकर उन्नत, और सम बनाना।

जहा दूसरी क्रिया होती है वहा आरम्भमें पहली क्रिया हो चुकती है और जहा तीसरी क्रिया होती है वहा पहली और दूसरी क्रियाएं हो चुकती हैं। नदीकी क्रियाका यही क्रम है। एक सेकेण्डमें जो जल प्रवाह छ. इंचको प्राप्त कर लेता है वह बारीक मिट्टीको बहा लेता है, जो एक सेकण्डमें आठ इंच पहुंच जाता है वह सरसो अलसीके दानोंके सदृश मिट्टीकी बजरीको बहा लेता है, उसी समयमें जो प्रवाह १२ इंचतक पहुंचता है, वह छोटी साधारण कंकरियोंको, २४ इंचको पहुंचनेवाला एक इंचकी परिधिवाली गोल कंकरियोंको, और जो उसी क्षणमें ३ फीटकी दूरीको प्राप्त कर लेता है ;वह जल-प्रवाह अण्डेके बराबर गोल पाषाणोंको बहा ले जाता है।

जब एक नदी इपने मार्गके ढलावको काट-छाटकर ऐसा बना लेती है कि फिर न तो उसको यात्राके प्रथम भागमें अपने

पाटको चौडा करना पडे और न उसको कहीं कीचड मिट्टीको मार्गमे छोडना पडे, तब वह 'आदर्शगामिनी' हो जाती है। ऐसी दशामे यदि यात्राकी मिट्टी एकसी बनी रहे तो उसका प्रवाह भी एकसा रहेगा, वह कहीं तेज और कहीं मन्दा नहीं पडेगा। परन्तु जब वह समुद्रके पास पहुचती है, तब उसके मार्गका विस्तार उसके जलकी वृद्धिके अनुसार नहीं होता। इसलिये यदि उसका ढालूपन नहीं घटेगा तो उसका 'आदर्शगमन' नष्ट हो जायगा और वह पुन अपने मार्गके पेंदेको खोदने लगेगी। इसी कारण जब नदिया विस्तृत होती हैं तब ढालूपन घट जाता है और इसलिये प्रत्येक नदी (जो शुष्क नहीं होती है) एक क्रम-युक्त ढालूपनको प्राप्त कर लेती है और "आदर्शगामिनी" बन जाती है।

मान लिया जाय कि किसी नदीका गिराव किसी उन्नत स्थलके आनेके या किसी स्थानीय प्रतिघातके हट जानेके कारण बढ जाता है। तब स्वत ही नदीके प्रवाहमें तेजी आ जायगी और वह अपने पुराने मार्गको काटने लगेगी, घाटीको विस्तृत बना देगी और पिछली भूमिको जहासे उसका गिरावके कारण नूतन मार्ग आरम्भ होता है, एक उन्नत अट्टालिका सी छोड देगी। कई घाटियोंमें ऐसी कई अट्टालिकाए होती हैं। जब नीचेके मैदानकी ओरसे हम किसी नदीपर चढते हैं तो हमे उसका सकीण मार्ग मिलता है जहा जल-प्रवाह बडा तेज होता है। उसको पार कर जब हम और भी ऊचे चढते हैं तब हमें एक आ-

श्चर्यजनक दृश्य दिखाई देता है अर्थात् एक चौडी और चपटी घाटी दिखाई देती है। कई नदिया टेढ़ी घाटियोंमें ऐसी भाति-भातिकी चट्टानोंपर होकर बहती हैं जिनमेंसे कोई कोमल और कोई कठोर होती हैं। उनका जल वेग कोमल चट्टानोंके परतोंको तो शीघ्रतर विदीर्ण कर देता है और कठोर चट्टानोंके परतोंको बहुत कालमें और सोभी न्यूनाशमें ही काटता है,इसलिये कठोर चट्टानों के किनारे जलवेगमें रुकावट डाल देते हैं और उसको अधिकतर तेज बना देते हैं। इसीसे जल प्रपात (cataract) बन जाता है। नदियोंके प्रवाहसे हमें एक और भी बातका ज्ञान होता है वह यह है कि यद्यपि वर्षाकालमें नद नालोंके बनने अथवा नदियोंमें बाढ़ आनेसे धरतीपर अन्तर तो बहुत आता है-कहीं कोसों खड्डे पड जाते हैं,कहीं नवीन घाटिया बन जाती हैं, कहीं मिट्टीके टीले लग जाते हैं, परन्तु नदियोंका सदैव बहनेवाला जल-प्रवाह जितना अपेक्षत. अधिक कार्य करता है, उतना उन तत्कालीन वेगोंसे सम्पादित नहीं होता। नर्म्मदा, ताप्ती और शुभ्रमती इत्यादि नदिया उपर्युक्त व्यवस्थाके हमारे यहा बड़े उत्तम उदाहरण हैं।

समुद्रके पास नदियोंके दो प्रकारके मुख होते हैं। कइयोंके त्रिभुजाकार क्षेत्र बन जाते हैं और कइयोंके नहीं बनते। नर्म्म-दाका मुख समुद्रमें मिला हुआ है। उसमें कुछ दूरतक छोटे जहाज भी आ सकते हैं। इगलैण्डकी टेम्स नदीका मुख इसी प्रकार गहरे समुद्रसे मिला हुआ है। उसमें होकर व्यापारी नौकाएं आती हैं। परन्तु गङ्गा और ब्रह्मपुत्रके त्रिभुजाकार क्षेत्र है। ऐसे

क्षेत्र उन्हींके मुखोंपर बनते हैं, जिनमें कीचड़ कंकड़ बहुत बहते हैं।

यह समझना ठीक नहीं है कि नदियां अपनी घाटियोंको सदैव विस्तृत करनेकी चेष्टा किया करती हैं। ऐसा तभी होता है जब किसी नदीका ढालूपन किसी विशिष्ट कोणसे बढ़ जाता है। परन्तु जब ढालूपन कम होता है तब तो नदी अपनी घाटीको कीचड़ इत्यादिसे भरकर उल्टे सिकोड़ती है। इसी कारण कई प्रख्यात नदियां जैसे अफ्रीकाकी नाइल, अमरीकाकी मिसीसिपी, इंगलैण्डकी टेम्स—यात्राकी तीसरी मंजिलमें अपनेको आसपासके प्रदेशसे बहुत उन्नत बना लेती हैं। पीनो नदी तो समीपवर्ती प्रदेशसे तीस फीट ऊंची उठी हुई बहती है। इसमें घाटी क्या, बल्कि ऊपर उठा हुआ मार्ग है। ऐसी नदियोंके लिये यदि मनुष्य उनकी क्रियामें हस्तक्षेप न करें तो यह सम्भावना बहुत रहती है कि कभी-न कभी वे अपने उन्नत तटोंमें होकर बह पड़ें और अपने पुराने मार्गों को त्याग दें। वे यदि तटोंमें होकर बह जाय तो अपने नवीन प्रवाह मार्गको भी शनै शनै उन्नत कर देती हैं। ऐसी नदियां—यदि मनुष्य उनमें हाथ न डाले तो—अपने मार्गोंको प्रायः बदलती रहती हैं।

मान लिया जाय कि एक नदी क्रमशः झुके हुए समधरातल पर लगभग सीधी बहती है। ऐसी दशामें यदि उसके प्रवाहमें तनिक भी रुकावट या प्रतिघात आ जाय तो उसकी सीधमें बल पड़ जायगा, और जब एक बार थोड़ासा टेढ़ापन आ जायगा तो

यदि कोई प्रदेश चपटा है तो वहां बहती हुई नदी अपने दोनों ओरके तलको शनैः शनै उन्नत कर देती है। बाढोंके समय जो जल ऊपर उठ आता है उसकी गति नरसलों, झाडियों और वृक्षों इत्यादिके द्वारा रोक दी जाती है और बहकर आया हुआ कीचड दोनों ओर छुटकर तल-पर-तल जम जाता है। इसी कारण दोनों तटोंके क्षेत्र ऊंचे उठ आते हैं। जब यह उन्नतता किसी सीमातक पहुंच जाती है, तब उसके पश्चात् जब कोई नवीन बाढ आती है तब नदी अपने तटोंको तोड देती और पुराने मार्गको छोडकर उसको जो सम्भवत नीचा स्थान मिलता है, उधर होकर नवीन मार्ग बना लेती है। यह नवीन मार्ग भी उसी क्रियासे शनै. शनै ऊपर उठ आता है। इसी प्रकार उसके मार्गोंमें परिवर्त्तन होता रहता है और कालान्तरमें वह अपने प्रथम मार्गमें होकर भी बहने लगती है। नदिया कितने भारी कीचडका बोझ उठाकर लाती है इसके उदाहरण या प्रमाणमें कहा जा सकता है कि कलकत्तेके निकट उनसे प्रवाहित कीचड-कंकडके ४०० फीट मोटे तल हैं।

जैसा कि पूर्वमें भी कहा जा चुका है कि वर्षाकालकी घोर वृष्टियोंके कारण तो नदियोंमें बाढ आती ही है, परन्तु जो नदिया हिमसे बनती हैं उनमें ग्रीष्म ऋतुमें भी जब हिम सूर्यके तापसे अधिक परिमाणमें पिघलता है, तब बाढ आ जाती है, जैसे गङ्गा। परन्तु कई नदिया समस्त वर्ष भर एकसार भी बहती हैं, जैसे योरपकी होन नदी (जहासे उसमें सेवोनका संगम

होता है)। यद्यपि यह मानी हुई बात है कि होनका ऊपरका भाग अधिकांशमें स्विजरलैण्डकी बर्फसे बनता है। इस एकसा प्रवाहका कारण यह है कि होन स्वयं तो ग्रीष्ममें अधिक और शीतकालमें न्यून बहती है, परन्तु सेओनमें शीतकालकी वर्षाका जल भर जाता है और ग्रीष्मकालमें वह घट जाता है। जब एकमें शरत् ऋतुमें बाढ आती है तो दूसरी घट जाती है और दूसरीमें जब ग्रीष्ममें बाढ आती है तब पहली घट जाती है। इसलिये उनके सङ्गमके आगेके भागमें जल प्रवाह सदैव एक चालका रहता है।

नवां अध्याय

समुद्र

प्रतिभाशाली कवि लार्ड बायरनने 'समुद्र' पर एक बड़ी गम्भीर, भावपूर्ण एवं मनोहर कविता लिखी थी। अंग्रेजी काव्यमें वह अब भी एक रत्न समझी जाती है। उसीके एक खण्डका यहां समुद्रकी प्रशंसामें छायानुवाद दिया जाता है —

'रुद्धमार्ग जंगलोंमें एक आनन्द है, निर्जन तटमें एक गम्भीर हर्ष है। इस एकान्तमें एक ऐसा प्राकृतिक समाज है जिसमें किसीका हस्तक्षेप नहीं है। इस गम्भीर महासागरकी गर्ज एक अनन्त गान है। यह नहीं है कि मैं मनुष्य-जातिसे प्रेम नहीं करता, परन्तु मैं प्रकृतिसे और भी अधिकतर प्रेम करता हूं। जब मैं समाजसे चपकेसे निकलकर प्रकृतिके दर्शन करनेके लिये

समुद्रके तटपर आता हूं तब मैं ब्रह्माण्डमें मिल जाता हूं और कुछ ऐसा अनुभव करता हूं कि जिसको मैं प्रकट नहीं कर सकता, परन्तु जिसको गुप्त भी नहीं रख सकता। हे गम्भीर और नीले समुद्र! तू बहे जा, बहे जा!"

जब वर्ष व्यतीत होकर ग्रीष्म ऋतुका आगमन होता है तब जो समुद्रकी शोभाके उपासक हैं उनका वहां जानेके लिये हृदय कितना लालायित हो जाता है। गरमीकी छुट्टियोंमें जैसे पर्वतोंमें विहार करनेवाले लोग नैनीताल, शिमला, मसूरी, काश्मीर, दार्जिलिंग, देहरादून, आबू इत्यादिको दौड़ जाते हैं, वैसे ही समुद्रके प्रेमी उसकी ओर चले जाते हैं। समुद्रकी एक विशेष गन्ध, लहरोंकी ध्वनि, बालू तटोंपर पड़े कंकरोंका शब्द, वहांके विहगों (पक्षियों) के गान—ये सब कितने मनोहर होते हैं! समुद्र-तटका कैसा सौन्दर्य्य है! किसी चट्टानके नीचे स्वच्छ श्वेत खड़िया मिट्टीके परत, कहीं गम्भीर आरक्त रङ्गके कंकर, कहीं भूरे ग्रेनाइट पत्थरके खण्ड—ऊपर कहीं जंगली झाड़ियां, कहीं पुष्पधारी सामुद्रिक पौधे, घास, दूर्वा और सेवाल—इनपर कभी शीघ्र तो कभी मन्दगति समुद्रकी थपकती हुई कल्लोल—ये सब मनको कैसा मोह लेती हैं! इनके दर्शनोंसे आत्मा कितनी विस्तृत हो जाती है! फिर लहर भी क्या एकसी ही थोड़े होती हैं—एकपर दूसरी स्वच्छ, शीत, पारदृश्य और हरित जलकी महरायें बनाती हुई क्रीड़ा करती रहती हैं। उनके किनारोंपर श्वेत और गुलाबी झाईदार झाग (फेन) जो तटोंपर गिरते और वहीं

रह जाते हैं, कितने सुन्दर प्रतीत होते हैं ! और फिर आगे धूपमें चमकते हुए विस्तृत समुद्रका तो कहना ही क्या ! उसकी छटा वर्णनातीत है। कभी भीषण तो कभी शान्त, प्रातःकाल और सायं समय रजत या सुवर्णकी चद्दर और दोपहरमें वह एक गहरा नीला विस्तार बन जाता है।

ग्रीष्म-ऋतुके किसी स्वच्छ दिनमें समुद्र समीप बसे हुए किसी नगरके पासके तटका दृश्य भी बड़ा विनोद-पूर्ण होता है! सूर्य-प्रकाशसे चमकती हुई,एक-दूसरीका किनारेतक पीछा करती हुई हर्षपूर्ण लहरें आकाशसे नीले रङ्गके लिये स्पर्द्धा करती हैं, तटोंपर बालक गीली मिट्टीसे खिलौने बनाते हैं। इतनेमें फिर लहरें बढ़ती हैं और उनके खिलौनोंको बहाकर ले जाती हैं, और बच्चे हंसने लगते हैं। अन्तमें सायंकालके आगमनपर वे अपने घरोंको लौट आते हैं। रात्रिको कल्लोलें फिर दूरतक आगे बढ़कर बालकोंके दूसरे दिनके खेलके लिये मिट्टीको स्वच्छ, कोमल और गीली बना देती हैं। ऐसा प्रतीत होता है मानों समुद्रको बच्चोंके साथ खेलने और हसनेके अतिरिक्त और कोई कार्य्य ही नहीं है। यदि इन स्वर्गीय दृश्योंका भी किसी व्यक्तिपर प्रभाव न पड़े तो समझना चाहिये कि वह . . । बस, आगे क्या कहा जा सकता है!

कई लोग तो समुद्रके तटोंपरसे ही शोभा देखकरके सन्तुष्ट हो जाते हैं; परन्तु कई अधिकतर स्वातन्त्र्यप्रिय उसपर थोड़ी या बहुत यात्रा किये बिना तृप्त नहीं होते। उनकी आत्म

तभी चन पाती है जब वे समुद्रके ऊपर नौकामें बैठकर विहार करते हैं। कई दोनों बातोंके बिना सन्तुष्ट नहीं होते। किसी समुद्रपर तटसे बहुत दूरतक सुहृदय मित्रोंके साथ नौकामें बैठकर सैर करना एक ऐसे गम्भीर हर्षको प्राप्त करना है जिसका स्मरण आयु-पर्यन्त रहे बिना नहीं रहता।

योरप शीत-प्रधान देश है,परन्तु उसका उत्तरीय भाग अवशिष्ट भागोंकी अपेक्षा कम ठण्डा है जिसके कारण "गल्फ स्ट्रीम" और अटलान्टिक महासागर हैं। उसी अक्षांश (latitude) में बसे हुए कई स्थल जो "गल्फ स्ट्रीम" से दूर पडते हैं बहुत ठण्डे हैं। इङ्गलैण्डके ठीक सम्मुख लैबरेडरका द्वीप है जो ग्रीनलैंडके बराबर ही शीतल है। उसके चारों ओरकी तट सीमापर कोई वनस्पति नहीं है। यहां हिमके अतिरिक्त और कोई ऋतु ही नहीं है। मनुष्योंकी बस्तियां बहुत कम हैं और जो हैं वे भी खण्डश दूर-दूरपर स्थित हैं। परन्तु इङ्गलेण्ड उसी अक्षांश-में होते हुए भी उतना शीत-प्रधान नहीं है। यहांकी ऋतुएं उष्णताको लिये हुए हैं। इस स्थानीय विशेषताका कारण वही "गल्फ स्ट्रीम है।" यहांके समुद्रमें जो एक उष्ण जलकी अन्तर्गत धारा बहती रहती है, उसीको "गल्फ स्ट्रीम" कहते हैं। इसके अन्तर्गत उष्ण जल धाराका प्रवाह बड़ी बड़ी नदियोंसे सैकड़ों गुना अधिक है और यह जिधर होकर बहती है उसके समीपके देश जैसे इंगलेण्ड,उसकी उष्णतासे शीत-प्रधान होनेपर भी गर्म और शीतरहित हो जाते हैं। यदि इंगलेण्डके

पास होकर यह धारा न बहती तो वहा भी लैब्रेडर द्वीप कीसी दशा होती।

एक प्रकारसे समुद्र समय-चक्रके भी बाहर है। एक सहस्र, एक लाख बल्कि अनन्तकालसे यह ऐसा ही दीखता आया होगा जैसा कि यह अब दीखता है। पृथ्वीकी अर्थात् स्थलकी यह स्थायी व्यवस्था नहीं है। भूतलमें कितने परिवर्त्तन होते हैं। पर्वत, टीले, नदियां,घाटिया,भीलें, ज्वालामुखी पहाड़,पशु, पक्षी, वनस्पति इत्यादि धीरे-धीरे सब परिवर्त्तित होते रहते हैं, परन्तु समुद्र सदैव लगभग एकसा, स्थिर और अचल रहता आया है।

भूगोलका केवल चतुर्थांश स्थल है और अवशिष्ट तीन भागमें समुद्र तथा महासागर हैं। स्थलके चारों ओर मानों जलकी सीमा है और जलके चारों ओर स्थलकी सीमा है। स्थलके चारों ओर जो जल है, उसके मुख्य पाच भाग किये गये हैं (१) पैसीफिक, (२) हिन्द (३) अटलान्टिक (४) आर-कटिक और (५) अन्टारकटिक महासागर। उनका संयुक्त विस्तार १४५ लाख वर्गमील है। पैसीफिक महासागर अमरीका और एशियाके मध्यमें है, हिन्दमहासागर एशियाके दक्षिणमें है, अटलान्टिक महासागर एक ओर अफ्रीका और योरपके बीचमें और एक ओर अमरीकाके मध्यमें है; आरकटिक उत्तर ध्रुवके चारों ओर और अन्टारकटिक दक्षिण ध्रुवके चारो ओर है। इन पाचोंमें भी सबसे बड़ा पैसीफिक सागर है। इसकी आकृति अण्डाकार-सी है। यह अकेला लगभग चारोंके बराबर है

झीलोंका विशिष्ट लक्षण शान्ति है, परन्तु समुद्रोंका प्रधान गुण अनन्त अविश्रान्त शक्ति है। इंगलिश कवि वैलने एक काव्यमें कहा है कि "पृथ्वी किसी सोये हुए शिशुकी नाई शान्त और चुपचाप है। नभमण्डलका गम्भीर हृदय भी शान्त और स्थिर है। परन्तु हे समुद्र! क्या तू ही अकेला अशान्त पहरा दे रहा है और सम्पूर्ण शान्तिको अपनी सुथकियोंसे भर रहा है?"

वायुके प्रचण्ड वेगके समय झील तो ऐसी प्रतीत होती है कि मानों एक सुन्दर जलदेवीको कोई दुष्ट पिशाच या राक्षस सता रहा है, परन्तु जब समुद्रमें प्रचण्ड वातवेग आता है, तब वह प्रकृतिका एक विशाल भयावह दिखाव हो जाता है। रस्किन महोदयने अपनी एक पुस्तकमें समुद्रके वेगका बड़ा सुन्दर चित्र खींचा है :—

"समुद्रपर तीन चार दिन और रात्रितक अविश्रान्त वायु-वेगका जो प्रभाव पड़ता है उसको कुछ ही लोगोंने देखा होगा। जिन्होंने इस प्रकारके दृश्यको नहीं देखा है वे समुद्रकी लहरोंके विस्तार और शक्तिहीकी कल्पना करनेमें असमर्थ नहीं हैं बल्कि समुद्र और वायुके बीचकी सीमाका जो सम्पूर्ण विनाश हो जाता है, वह तो उनकी समझमें बिना स्वयं देखे आही नहीं सकता। लगातार चचलताके कारण उस समय जल पिट-पिटकर मक्खनकी झागके सदृश ही नहीं हो जाता है, किन्तु उसकी फैनके तल्के तल बनकर लहरोंपर

रस्सियें और मालाएं-सी टंग जाती हैं। वे ऐसी प्रतीत होती हैं जैसे श्वेत झालरें और बन्दनवार कल्लोलोंपर लटक रही हैं। इन्हींको वायुवेग टुकडे-टुकडे करके नहीं बल्कि ज्यों-की-त्यों ऊपर उठा लेता है, मानों वायु स्वयं हिम-जैसी सफेद हो जाती है। और फिर समुद्रतलपर भी वही श्वेत झागपूर्ण विशाल लहरें इधर-उधर लपकती हैं। जब वे बहुत ऊंची उठ आती हैं तब वायुवेगसे वे तोड दी जाती हैं। इसके अतिरिक्त जब अधिक वर्षासे वायुका जलकण निचुड जाता है, उस समय तो झागदार लहरें वायुद्वारा और भी अधिकतर पकड ली जाती हैं। फिर तो वायुमण्डल विभक्त सूक्ष्म जलकणोंहीसे नहीं बल्कि उबलते हुए कुहरेसे भी आच्छादित हो जाता है। उसी समय मेघमण्डल समुद्रके तलतक नीचे उतर आते हैं और लहरसे लहरतक चिथडों और टुकडोंमें विभक्त होकर इधर-उधर चक्कर काटते और उडते हैं। फिर कल्लोलोंके प्राबल्य, वेग, प्रवाह और पागलपनका विचार करना चाहिये जो इस विशाल गड्बडमें पर्वत-शिखरों और गम्भीर खड्डोंकी नाईं उठती और गिरती हैं। तब यही ज्ञान पड़ेगा कि समुद्र और वायुमण्डलमें कुछ भी अन्तर नहीं है। उस समय न आकाशवृत्त न जलतल और न वातावरणके मध्यका अन्य कोई चिह्न दिखलाई देता है। समस्त आकाश जल-फेन और सब समुद्र मेघमें परिणत हो जाते हैं। उस समय ऐसा दखाई देता है मानों दर्शकके नेत्रमें मोतियाबिन्दुका जाला

छा गया है।" ओफ! प्रकृतिका क्या ही अद्भुत खेल है! हजारों वर्षोंसे मनुष्यने अपने अग्निबोटों, अर्णवपोतोंको अत्यन्त चातुर्य और कौशलसे बड़ा सुसज्जित और सुदृढ़ बनाया और अब भी बनाता चला जाता है, परन्तु जब महासागर भीषण और प्रचण्ड रूप धारण करता है तब वे तृणवत् झुक जाते और विदीर्ण हो जाते हैं!

समुद्रके जीव

समुद्र अगणित प्रकारके जीव-जन्तुओंसे भरा पड़ा है। यहाँके तथा विदेशोंके पुराणोंमें वर्णित कल्पनातीत महाकाय जन्तुओंको जाने दीजिये। जो यहाँ अब भी पाये जाते हैं वे भी कुछ कम विशाल और अद्भुत नहीं हैं। न्यूफाउन्डलैण्डका कटल मत्स्य यद्यपि शरीरमें तो इतना स्थूल नहीं है, परन्तु उसकी एक भुजाके सिरेसे दूसरी भुजाके सिरेतककी लम्बाई ६० फीट तककी है। ह्वेल ७० फीटतक लम्बी होती है। इनमें ...ल जिसको कैचेलोट भी कहते हैं और जो एक ही ऐसा ...है, जो समस्त महासागरमें भटकता रहता है और इतना ही ...होता है। इसके दाँत बड़े मजबूत होते हैं। जब इसपर ... जाता है और इसके चोट लग जाती है तब यह ... आक्रमण करता है और इसके सहचर भी ... लिये आगे बढ़नेमें नहीं हिचकते। एक बार ... आक्रमण किया ... नामक मत्स्य-

रस्सियें और मालाएं-सी टंग जाती हैं। वे ऐसी प्रतीत होती हैं जैसे श्वेत झालरें और वन्दनवारें कल्लोलोंपर लटक रही हैं। इन्हींको वायुवेग टुकड़े-टुकड़े करके नहीं बल्कि ज्यों-की त्यों ऊपर उठा लेता है,मानों वायु स्वय हिम-जैसी सफेद हो जाती है। और फिर समुद्रतलपर भी वही श्वेत झागपूर्ण विशाल लहरें इधर-उधर लपकती हैं। जब वे बहुत ऊंची उठ आती हैं तब वायुवेगसे वे तोड़ दी जाती हैं। इसके अतिरिक्त जब अधिक वर्षासे वायुका जलकण निचुड़ जाता है, उस समय तो झागदार लहरें वायुद्वारा और भी अधिकतर पकड़ ली जाती हैं। फिर तो वायुमण्डल विभक्त सूक्ष्म जलकणोंहीसे नहीं बल्कि उबलते हुए कुहरेसे भी आच्छादित हो जाता है। उसी समय मेघमण्डल समुद्रके तलतक नीचे उतर आते हैं और लहरसे लहरतक चिथड़ों और टुकड़ोंमें विभक्त होकर इधर-उधर चक्कर काटते और उड़ते हैं। फिर कल्लोलोंके प्राबल्य, वेग, प्रवाह और पागलपनका विचार करना चाहिये जो इस विशाल गड़बड़में पर्वत शिखरों और गम्भीर खड्डोंकी नाईं उठती और गिरती हैं। तब यही जान पड़ेगा कि समुद्र और वायुमण्डलमें कुछ भी अन्तर नहीं है। उस समय न आकाशवृत्त न जलतल और न वातावरणके मध्यका अन्य कोई चिह्न दिखलाई देता है। समस्त आकाश जल फेन और सब समुद्र मेघमें परिणत हो जाते हैं। उस समय ऐसा दखाई देता है मानों दर्शकके नेत्रमें मोतियाबिन्दुका जाला

छा गया है।" ओफ! प्रकृतिका क्या ही अद्भुत खेल है! हजारों वर्षोंसे मनुष्यने अपने अग्निबोटों, अर्णवपोतोंको अत्यन्त चातुर्य्य और कौशलसे बड़ा सुसज्जित और सुदृढ़ बनाया और अब भी बनाता चला जाता है, परन्तु जब महासागर भीषण और प्रचण्ड रूप धारण करता है तब वे तृणवत् लुढ़क जाते और विदीर्ण हो जाते हैं!

समुद्रके जीव

समुद्र अगणित प्रकारके जीव-जन्तुओंसे भरा पड़ा है। यहाके तथा विदेशोंके पुराणोंमें वर्णित कल्पनातीत महाकाय जन्तुओंको जाने दीजिये। जो यहा अब भी पाये जाते हैं वे भी कुछ कम विशाल और अद्भुत नहीं हैं। न्यूफाउन्डलेण्डका कटल मत्स्य यद्यपि शरीरमें तो इतना स्थूल नहीं है, परन्तु उसकी एक भुजाके सिरेसे दूसरी भुजाके सिरेतककी लम्बाई ६० फीट तककी है। ह्वेल ७० फीटतक लम्बी होती है। स्पर्म ह्वेल जिसको कैचेलोट भी कहते हैं और जो एक ही ऐसा जन्तु है,जो समस्त महासागरमें भटकता रहता है और इतना ही विशाल होता है। इसके दांत बड़े मजबूत होते हैं। जब इसपर आक्रमण किया जाता है और इसके चोट लग जाती है तब यह स्वय जहाजोंपर आक्रमण करता है और इसके सहचर भी इसकी रक्षा करनेके लिये आगे बढ़नेमें नहीं हिचकते। एक बार एक (नर) कैचलोटने एक अमेरीकन जहाजपर आक्रमण किया और उसे डुबा दिया था। विशाल रोरकाल नामक मत्स्य-

विशेष उससे भी अधिक भयानक होता है। अत्योक्तिके साथ कहा जाता है कि वह १२० फीट लम्बा होता है। परन्तु ८० या ६० फीटतक तो वह साक्षात् देखनेमें आता है।

पुरातन कालमें ह्वेल मत्स्य इंगलैण्डकी तट-सीमाओंके पास-तक आ जाते थे, परन्तु अब नौकाओंकी अधिकतर संख्याके कारण वे शनैः शनैः उत्तरकी ओर भगा दिये गये हैं और वे अब अधिक हैं भी नहीं। अंग्रेजी मल्लाह उनका पीछा बहुत दूर-दूर किया करते थे और इसी कारण वे दूरस्थ समुद्रों और द्वीपोंका पता पा गये। परन्तु यह भी एक विचारनेकी बात है कि क्या कहीं अत्यन्त दूर भी उनको स्वतन्त्रता और सुखपूर्वक क्रीडा करने और वंश बढ़ानेका कार्य्य करनेके लिये अवसर नहीं दिया जायगा? क्या मनुष्यके चरित्रपर और विशेषतः विलायती मनुष्यके चरित्रपर यह एक कलंक नहीं है कि वह इन विशाल जन्तुओंकी—धन कमानेकी लालसासे—हत्या किये ही चला जायगा? क्या वह इनके मृतशरीरोंके व्यापार करनेसे कभी हाथ न उठायेगा? योरपका लालच तो इतना भारी है कि जबतक एक भी ऐसा लाभदायक जन्तु पाया जाता रहेगा, वह अवश्यमेव शिकार किया जायगा। उसके हेतु कभी दया न होगी। वाहरे स्वार्थ!!

उपर्युक्त तथा अन्य जल-जन्तुओंके लिये आहारकी भी बड़ी प्रचुर मात्रामें आवश्यकता है, परन्तु उसकी कोई न्यूनता नहीं है। स्कोरस्बाई नामक एक अंग्रेज कहते हैं कि उन्होंने समुद्रमें

मीलोंतक भदूसा मछलीके एक प्रभेदकी असख्य मछलिया इतनी घनी देखी हैं कि जिनके कारण वहा उनके भूरे और हरे रगसे स्वय समुद्र वैसाही दिखने लगा है। उन्होंने हिसाव लगाया है कि एक घनमील (एक मील चौडा, लम्बा और गहरा) समुद्रमें ऐसी मछलियोंकी सख्या २३८८८०००००००००००० से कम न होगी। जहाजमें बैठे हुए उन्होंने मीलोंतक इन असख्य जीवोंसे समुद्रका रग वदला हुआ देखा है। इस प्रकारके दृश्यका अनुभव केवल स्कोरसबाई महाशयहीने नहीं वल्कि वहुतसे महासागर अनुसन्धानकोंने किया है। यों तो समस्त समुद्रहीमें-कहीं कम तो कहीं वहुत-जन्तु भरे पडे हैं, परन्तु इसके तटोंके पास प्राणी और उद्भिज वहुत अधिक परिमाणमें पाये जाते हैं। मरुत्-भक्षी (वायुचर) जन्तु—चाहे वे स्तनपायी हों और चाहे वे अण्डोंसे उत्पन्न होनेवाले हों-शुष्क भूमिसे अधिक दूर अथाह जलमे जीवित नहीं रह सकते, क्योंकि उनको वहा अनायास वायु नहीं मिलती। सील जातिकी मछलिया वैसे समुद्रमें वहुत दूरतक चली जाती हैं, परन्तु वे वहुधा तटोंके समीप ही रहती हैं। केवल ह्वेल ही कुछ ऐसी वनाई गई हैं जो विस्तृत महासागरको अपना घर वनाये रखती हैं। पक्षियोंमें एल्वेट्रास सवसे अधिक विचरनेकी शक्ति रखता है। वह उडता उडता भी निद्रा ले लेता है। कई पिलेजिक जन्तु जैसे जैली, मोलुस्क, कटल, झींगा, क्रस्टेसिया इत्यादि मछलिया वडे स्वच्छ श्वेत रगकी होती हैं, उनके अग और रुधिरतकने अपना लाल रग छोड दिया है, वल्कि कइयोंके

कई मछलियां भी या तो चान्दी जैसी उज्ज्वल, गुलाबी, या लाल और काली होती हैं। उनके दीप्त अङ्ग जब चमकते होंगे, तब वे बहुत दर्शनीय दिखाई देती होंगी।

यद्यपि अभीतक इन जन्तुओंके अङ्गोंकी बनावट और कर्तव्योंके विषयमें मनुष्यको बहुत कुछ सीखना है, परन्तु कइयोंके अङ्गोंके कर्तव्य तो सम्भवत अनायास ही पहचाने जा सकते हैं। उदाहरणार्थ,फोटिश थाइस (Photich Thys) मछली जलकी अथाह तिमिराछन्न गुफामें तैरती हुई जब अपने प्रज्वलित अङ्गोंके फटकारनेसे प्रकाश धारा छोड़ती है, तब उसको आसपासके आहार-योग्य चराचर पदार्थ दीख पड़ते हैं और उसी समय यदि उसको प्राणभय होता है तो वह अपने प्रकाशको बुझा देती है। यह देखा गया है कि ऐसी मछलियोंका सबसे बड़ा उज्ज्वल अङ्ग ठीक नेत्रके नीचे होता है मानों उसके पास प्रकाश डालनेवाली लालटेन है। कइयोंके पृष्ठ-भागकी दुम अधिकतर प्रज्वलित होती है ताकि उसको जब भय हो तब वह अपने पृष्ठ-भागके प्रकाशको फैलाकर आक्रमण करनेवाले जन्तुको चुंधिया दे या भयभीत कर दे। कइयोंका ऐसा प्रकाश ललचाने और आकृष्ट करनेके प्रयोजनमें आता है। इंगलैण्डके तटोंके पास रहनेवाली एङ्गलर मछलीके मस्तकपर तीन लम्बे, लचीले और लाल रेशे या धागेसे होते हैं और उनके चारों ओर सेवालकी सी झालर होती है। यह मछली अपने आपको पेंदेकी बालुका या सेवालमें छिपा लेती है और अपने सिरके लम्बे

रेशोंको मुखके सामने लटका लेती है। कई छोटी मछलियां इन धागों या रेशोंको कीड़े-मकोड़े समझकर बेखटके उनके पास आ जाती और स्वयं शिकार बन जाती हैं। एक ही जातिके जन्तुओंके कई प्रभेद बहुत गहराईके नीचेतक रहते हैं, परन्तु उनके स्वभाव बहुत समान होते हैं। नीचेके अन्धेरेमें केवल एक लाल रेशा दिख नहीं सकता, अतः व्यर्थ होता है। इसीलिये उस रेशेके सिरेपर एक चमकनेवाला अङ्ग बन गया है जो दीपकका-सा प्रकाश उत्पन्न करके अन्य कीड़ोंको आकृष्ट कर लेता है। वे प्रकाशके लालचसे पास आकर बलि पड़ जाते हैं।

समुद्रकी अधिक गहराईमें मछलियां बहुत कम होती हैं। वहां और जन्तु जो सामुद्रिक अर्चिन, सामुद्रिक स्लग और स्टारफिश कहलाते हैं, बहुत होते हैं। एक बार एचीनस जातिके २०००० जन्तु एक ही जालमें फांसकर बाहर निकाले गये थे। सर्प मूंगे और हाईड्रोजुआ भी वहां बहुत कम मिलते हैं, परन्तु स्फाञ्ज बहुतायतसे मिलते और बड़े सुन्दर होते हैं। और भी कई प्रकारके सुन्दर और विचित्र जन्तु वहां पाये जाते हैं। परन्तु बहुत गहराईके नीचे अभीतक कोई उद्भिज नहीं पाया गया है। उद्भिज केवल ६०० फीटतक ही पाये गये हैं।

समुद्रके पेंदेमें भूतलकी नाई पर्वत और मैदान दोनों ही हैं। इसका पेंदा समतल नहीं होता।



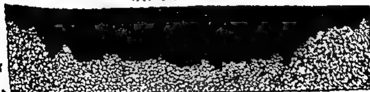
कई मछलियां भी या तो चान्दी-जैसी उज्ज्वल, गुलाबी, या लाल और काली होती हैं। उनके दीप्त अङ्ग जब चमकते होंगे, तब वे बहुत दर्शनीय दिखाई देती होंगी।

यद्यपि अभीतक इन जन्तुओंके अङ्गोंकी बनावट और कर्तव्योंके विषयमें मनुष्यको बहुत कुछ सीखना है, परन्तु कइयोंके अङ्गोंके कर्तव्य तो सम्भवतः अनायास ही पहचाने जा सकते हैं। उदाहरणार्थ,फोटिश थाइस (Photich Thys) मछली जल की अथाह तिमिराछन्न गुफामें तैरती हुई जब अपने प्रज्वलित अङ्गोंके फटकारनेसे प्रकाश धारा छोड़ती है, तब उसको आस-पासके आहार-योग्य चराचर पदार्थ दीख पड़ते हैं और उसी समय यदि उसको प्राणभय होता है तो वह अपने प्रकाशको बुझा देती है। यह देखा गया है कि ऐसी मछलियोंका सबसे बड़ा उज्ज्वल अङ्ग ठीक नेत्रके नीचे होता है मानों उसके पास प्रकाश डालनेवाली लालटेन है। कइयोंके पृष्ठ-भागकी दुम अधिकतर प्रज्वलित होती है ताकि उसको जब भय हो तब वह अपने पृष्ठ-भागके प्रकाशको फैलाकर आक्रमण करनेवाले जन्तु-को चुंधिया दे या भयभीत कर दे। कइयोंका ऐसा प्रकाश ललचाने और आकृष्ट करनेके प्रयोजनमें आता है। इंगलैण्डके तटोंके पास रहनेवाली एङ्गलर मछलीके मस्तकपर तीन लम्बे, लचीले और लाल रेशे या धागेसे होते हैं और उनके चारों ओर सवालकी सी झालर होती है। यह मछली अपने आपको पंदेकी बालुका या सेंवालमें छिपा लेती है और अपने सिर

रेशोंको मुखके सामने लटका लेती है। कई छोटी मछलिया इन धागों या रेशोंको कीडे-मकोडे समझकर वेखटके उनके पास आ जाती और स्वयं शिकार बन जाती हैं। एक ही जातिके जन्तुओंके कई प्रभेद बहुत गहराईके नीचेतक रहते हैं, परन्तु उनके स्वभाव बहुत समान होते हैं। नीचेके अन्धेरेमें केवल एक लाल रेशा दिख नहीं सकता, अत व्यर्थ होता है। इसीलिये उस रेशेके सिरेपर एक चमकनेवाला अङ्ग बन गया है जो दीपकका सा प्रकाश उत्पन्न करके अन्य कीडोंको आकृष्ट कर लेता है। वे प्रकाशके लालचसे पास आकर बलि पड जाते हैं।

समुद्रकी अधिक गहराईमें मछलिया बहुत कम होती हैं। वहा और जन्तु जो सामुद्रिक अर्चिन, सामुद्रिक स्लग और स्टारफिश कहलाते हैं, बहुत होते हैं। एक बार पचीनस जातिके २०००० जन्तु एक ही जालमें फासकर बाहर निकाले गये थे। सब मूंगे और हाईड्रोजुआ भी वहां बहुत कम मिलते हैं, परन्तु स्पाञ्ज बहुतायतसे मिलते और बडे सुन्दर होते हैं। और भी कई प्रकारके सुन्दर और विचित्र जन्तु वहा पाये जाते हैं। परन्तु बहुत गहराईके नीचे जमीनक कोई उद्भिज नहीं पाया गया है। उद्भिज केवल ६०० फीटतक ही पाये गये हैं।

समुद्रके पेंदेमें भूतलकी नाई पर्वत और मैदान दोनों ही हैं। इसका पदा समतल नहीं होता।



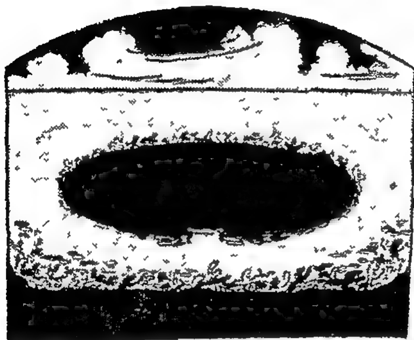
(३) जो मूंगा-जन्तुओंकी चट्टानोंसे बने हैं।

मूंगा-द्वीपोंके विषयमें वैथरील एम० ए० अपने भूगोलमें इस प्रकार लिखते हैं —

महासागरके गरम हिस्सोंमें टापुओंके चारों ओर मूंगेकी भीत है। मूंगेका कीडा जिसको प्रवाल भी कहते हैं समुद्रके पानीसे चूना निकालकर इन भीतोंको बनाता है। पहले यह भीत तटके पास ही बनाई जाती है, पर कीडा पानीकी सतहके बराबर पहुचकर अपना काम बन्द कर देता है और समुद्रकी ओरका साफ पानी अपने कामके लिये पसन्द करता है। थलके पासके कीडे सड गल जाते हैं और भीत और समुद्रतटके बीचमें एक झील सी बन जाती है जिसको लेगून कहते हैं। बाहरसे लहरे आकर प्रवालको तोडती रहती हैं और इन टुकडोंके सरकनेसे भीत बनानेके लिये एक ढालू समतल बन जाता है और लेगूनके चारों ओरकी दीवार बहुत चौडी होती जाती है।

इनसे भी विचित्र यह है कि कई जगह मूंगेके घेरे हैं और बीचमें कोई टापू नहीं है जिनको अटोल (atoll) कहते हैं। समुद्रमें पानीके नीचे यदि कोई पहाडकी चोटी हुई तो इसपर छोटे-छोटे मृत जल-जन्तुओंकी हड्डियां और सीपकी ढेरियां जमा होती जाती हैं और उन्नत होते-होते पानीसे १२० फीट नीचे तक आ जाती हैं। तब प्रवाल जन्तु इसपर पानीके बराबरतक एक ऊंची चौकीसी बना लेता है। भीतरके कीडे मर जाते हैं, मूंगा गल जाता है और खारे पानीसे भरा हुआ एक

प्राकृतिक सौन्दर्य



समुद्रमें अटोलका दृश्य ।

कटोरासा रह जाता है जिसकी बाड़ यह मूंगेकी भीत है। यह दिन-दिन बढ़ती जाती है। नारियल बहते हुए भीततक पहुचते हैं और चिड़िया पौधोंके बीज लाकर गिरा देती हैं। इनके उगनेसे दूरसे देखनेवालेको ऐसा जान पड़ता है मानों किसी दानवने समुद्रमें ताड़ों और झाड़ियोंकी माला बनाकर डाल दी है।

जैसा कि तृतीय अध्यायमें कहा जा चुका है, मूगा जन्तुओंने अगणितकालमें बहुतसे स्थलोंकी रचना कर दी है। मूंगा-द्वीप हिन्द और पैसीफिक महासागरमें बहुत हैं। कइयोंकी तो एक अगूठी या परिधिसी बन गई है। इस परिधिचक्रमें पीत, हरित, स्वच्छ और छिछला जल होता है और उसके बाहर चारों ओर समुद्रका गहरा नीला जल होता है। ये टापू जल-तलसे साधारण ऊंचे ही होते हैं। इनके तट श्वेत मिट्टीके होते हैं और जलतलसे केवल कुछ फीट ही उन्नत होते हैं। ऐसे द्वीप भारतके सन्निकट लोकद्वीप, मालद्वीप, अन्डमन, रामेश्वरम्, मनार, निकोबार इत्यादि हैं। गङ्गाके त्रिभुजाकारके पास दो छोटे दलदली टापू सागर और डायमन्ड नामके हैं। बम्बई और सालसीट भी नन्हें द्वीप ही हैं। हिन्द महासागरमें छोटे बड़े ऐसे असख्य द्वीप हैं।

पहले ऐसा समझा जाता था कि ये टापू महासागरके अन्त-गत ज्वालामुखी पर्वतोंके शिखर हैं, जिनपर मूगोंकी विस्तृत वृद्धि कालान्तरमे हो गई है। परन्तु चट्टान बनानेवाले मूगे १५० गजकी गहराईसे नीचेके जलमें नहीं रहते। इसलिये इनकी

उत्पत्ति ज्वालामुखी पर्वतोंसे नहीं मानी जा सकती। अकेला लोकद्वीप ही नन्हें-नन्हें लाखों टापुओंका बना हुआ है। इस दशामें यह कैसे माना जा सकता है कि ज्वालामुखी पर्वतके वहां समान ऊंचाईके लाखों मुख थे। इसमें सन्देह नहीं कि समुद्रके कम गहराईके स्थलोमें मूंगेकी चट्टानोंका एक चक्र-सा बना हुआ है। इसी कारण वे गोलाकार ज्वालापर्वतके मुखके समान दिखलाई देते हैं। परन्तु वास्तवमें ऐसी व्यवस्था नहीं है। यह समझमें नहीं आता कि यदि वे ज्वालामुखी पर्वतोंके मुखही हैं तो वे समुद्रके इतने नीचे पेंदेसे इतने ऊंचे कैसे उठ आये, क्योंकि मूंगे-जन्तु इतनी गहराईमें रह ही नहीं सकते। ऐसा प्रतीत होता है कि समुद्रतलमें जो आरम्भहीसे उन्नत चट्टानें थीं, उन्हींपर मूंगोंने शनै शनैः द्वीपोंकी रचना कर डाली।

डारविनने बताया है कि मूंगोंके चक्राकार नीचेकी समान चट्टानकी चक्राकार श्रेणीपर स्थित हैं और वहां जो छिछले जलकी झीलें हैं वेही वास्तवमें उन द्वीपोंका सर्वोन्नत भूतल थीं। उन्होंने कहा है कि वैनीकोरो लेगून झीलके तो बीचमें टापू है, परन्तु इसके विपरीत किसी-किसी टापूके चारों ओर झील है, जैसे टेहाटीका द्वीप। इस टापूके चारों ओर छिछले पानीकी झील है और वह महासागरके जलसे मूंगोंकी श्रेणीसे पृथक् हो रही है। यदि माना जाय कि टेहाटीका टापू धीरे धीरे जलमें निमग्न हो जाय तो यह लगभग वैनीकोरोका आकार ग्रहण करता जायगा। परन्तु यदि वैनीकोरो शनै शनै डूबने लगे तो बीचका टापू भी अदृष्ट हो

जायगा, परन्तु यदि उसपर मूंगे वृद्धिङ्गत होते जायगे तो उसकी जल-निमग्नता इतनी नहीं होगी। ऐसे परिवर्त्तनसे जितना भाग जलमें डूबता जायगा उतना ही मूगों द्वारा और बनता जायगा। इस प्रकारके मूगाचक्रको अलङ्कार भाषामें एक पुष्प माला बताना चाहिये जिसको प्रकृति माताके हाथोंने एक डूबे हुए द्वीपकी कब्रपर—समाधिस्थानपर—चढाया है।

डारविन महोदय कहते हैं—"इन झील-द्वीपोंने बहुत ध्यान आकृष्ट किया है। जब मनुष्य मूगा-चट्टानके चक्रको जिसका व्यास बहुत लम्बा होता है और जिसमें इधर-उधर एक हरा-भरा श्वेत किनारोंका टापू होता है—देखता है, तब उसको बड़ा कुतूहल होता है। इसके बाहरी तटोंपर महासागरकी फेनदार विशाल लहरें थपेड़े मारती हैं और इसके अन्दर एक शान्त जल-विस्तार प्रतिबिम्बके कारण उज्ज्वल और पीत हरित दिखाई देता है। किसी उद्भिज और प्राणी शास्त्रके अनुभवी विद्वानको तो यह दृश्य और भी अद्भुत प्रतीत होता है; क्योंकि यद्यपि ये मूगे कोमल और लसदार नन्हे-नन्हे शरीर होते हैं, परन्तु इन्हींकी बनी हुई दृढ चट्टान बाहरहीकी ओर बढ़ती जाती है, जहां उसपर सदैव समुद्रकी बड़ी बड़ी लहरें टकराती रहती हैं।" निस्सन्देह यह एक बड़ी ही विचित्र बात है कि इतने लसलसे और कोमल तथा सूक्ष्म जन्तुओंके मृत शरीरोंकी इतनी कठोर चट्टान या भीत बन जाती है।

मूगेके तलोंका सौन्दर्य्य इतना महत्वपूर्ण है कि यह

लिखनेमें नहीं आ सकता। प्रोफेसर वाल कहते हैं—"कई प्रकारके मूंगे थे, जो जीवित दशामें भूरे, बादामी, गुलाबी और छिटके दार रङ्गके थे। स्पाञ्ज जो पाषाण जैसे कठोर दीखते थे, बहुत विस्तृत और दूरतक पड़े हुए थे। इनकी अवलियोंमें होकर सुनहरी और नीली मछलियां इधर उधर चक्कर काटती थीं। बीच-बीचमें रेतके खण्डोंपर कई प्रकारके कीड़े मकोड़े धीरे धीरे रगते हुए दिखाई देते थे।"

पयर क्रोमबाई नामक वैज्ञानिक मूंगा चट्टानका एक बड़ा सुन्दर वर्णन करते हैं—"जब हम बाहरी तटके पास जहां लहरें गरज रही थीं पहुंचे, तब गहरे जरद और नीले रङ्गके जीवित मूंगोंके सुन्दर पुञ्ज-के-पुञ्ज हमें निकलते हुए दिखलाई दिये। परन्तु जब हम अन्दर चले गये तो समस्त तल जीवित मूंगोंकी शाखाओंका एक ही समूह बना दृष्टिगत हुआ।" ऐसे ही कई एक चित्ताकर्षक चित्र वैज्ञानिकोंने खींचे हैं।

समुद्रके नीरसे घिरे हुए इन द्वीपोंके वृक्ष इत्यादि भी बड़े सुन्दर होते हैं। हल्के हरे पत्तों और लाल पुष्पोंके गुच्छोंसे लदे हुए मूंगेके वृक्ष, सीधे और उन्नत नारियलके पेड़, फर्नके झाड़, श्वेत और गुलाबी पुष्पोंके वैरिंगटोनियांके पौधे और कनवालबूलसकी कई जातिकी लताएं—वहांपर बहुधा पाई जाती हैं। समुद्रोंका जल खारा होता है। हम अलङ्कृत भाषामें कह सकते हैं कि यदि इन महासागरोंका जल खारा नहीं होता तो इनके गर्वका क्या पार रहता। कदाचित् उस दशामें ये हमारे

भूमिस्थलोंको डुबा ही देते। समुद्रके पानीका स्वाद खारा है, क्योंकि उसमें रुपयेमें दो पैसेके बराबर लवण घुला हुआ रहता है। कई देशोंमें यह नमक तालाबोंमें सुखाकर निकाला भी जाता है।

यहांपर यह बता देना भी ठीक होगा कि समुद्रका तापमान उसकी गहराईके अनुसार घटता जाता है, यहांतक कि बहुत गहराईके नीचे जल हिम जैसा ठण्डा रहता है। समुद्रके अन्तर्गत उष्ण जल धाराएं भी होती हैं। जिस उष्ण जलधाराका वर्णन पहले आ चुका है, वह अमरीकाकी मेक्सीकोकी खाडीसे निकलती है। ऐसी धाराओंमें सबसे प्रधान और वर्णनीय यही है। महासागरोंमे जब मानसून वायु उठता है तब कई धाराएं भी प्रवाहित हो जाती हैं। उदाहरणार्थ, गर्मीकी ऋतुमें जब मानसून वायुका सचलन होता है तब भारतके दोनों तटों और ब्रह्माके तटकी ओर एक समुद्री जलवेग बालूये मिट्टीको लिए हुए दौडता है। भारतकी पश्चिमी तट-सीमापर यह प्रवाहित मिट्टी बन्दरगाहोंके द्वारोंपर सेतु बना देती है। यही कारण है कि काम्बे और कच्छकी खाडियां और सिन्धु नदीका मुहाना छिछले और कम गहरे होते चले जाते हैं। पूर्वकी तट-सीमापर भी यही क्रिया होती है। इसके पास पास बहुत दूरतक छिछला पानी रहता है। मद्रासका बन्दर सदैव इस मिट्टी बहानेवाली जलधाराके भयमें रहता है। हुगलीकी खाडीकी मिट्टी कभी कभी हटानी पडती है, नहीं तो वहां नौकाएं न आ सकें।

लिखनेमें नहीं आ सकता। प्रोफेसर बाल कहते हैं—"कई प्रकारके मूंगे थे, जो जीवित दशामें भूरे, बादामी, गुलाबी और छिवकेदार रङ्गके थे। स्पाञ्ज जो पाषाण जैसे कठोर दीखते थे, बहुत विस्तृत और दूरतक पड़े हुए थे। ·इनकी अवलियोंमें होकर सुनहरी और नीली मछलियां इधर उधर चक्कर काटती थीं। बीच-बीचमें रेतके खण्डोंपर कई प्रकारके कीड़े-मकोड़े धीरे-धीरे रगते हुए दिखाई देते थे।"

एथर कोमयाई नामक वैज्ञानिक मूंगा चट्टानका एक बड़ा सुन्दर वर्णन करते हैं —"जब हम बाहरी तटके पास जहां लहरें गरज रही थी पहुचे, तब गहरे जरद और नीले रङ्गके जीवित मूगोंके सुन्दर पुञ्ज-के-पुञ्ज हमें निकलते हुए दिखलाई दिये। परन्तु जब हम अन्दर चले गये तो समस्त तल जीवित मूंगोंकी शाखाओंका एक ही समूह बना दृष्टिगत हुआ।" ऐसे ही कई एक चित्ताकर्षक चित्र वैज्ञानिकोंने खींचे हैं।

समुद्रके नीरसे घिरे हुए इन द्वीपोंके वृक्ष इत्यादि भी बड़े सुन्दर होते हैं। हल्के हरे पत्तों और लाल पुष्पोंके गुच्छोंसे लदे हुए मूंगेके वृक्ष, सीधे और उन्नत नारियलके पेड़, फर्नके झाड़, श्वेत और गुलाबी पुष्पोंके वैरिंगटोनियाके पौधे और कनवा ल्वूलसकी कई जातिकी लताएं—वहांपर बहुधा पाई जाती हैं। समुद्रोंका जल खारा होता है। हम अलङ्कृत भाषामें कह सकते हैं कि यदि इन महासागरोंका जल खारा नहीं होता तो इनके गर्वका क्या पार रहता। कदाचित् उस दशामें ये हमारे

भूमिस्थलोंको डुबा ही देते। समुद्रके पानीका स्वाद खारा है, क्योंकि उसमें रुपयेमें दो पैसेके बराबर लवण घुला हुआ रहता है। कई देशोंमें यह नमक तालाबोंमें सुखाकर निकाला भी जाता है।

यहांपर यह बता देना भी ठीक होगा कि समुद्रका तापक्रम उसकी गहराईके अनुसार घटता जाता है, यहांतक कि बहुत गहराईके नीचे जल हिम जैसा ठण्डा रहता है। समुद्रके अन्तर्गत उष्ण जल धाराएं भी होती हैं। जिस उष्ण जल-धाराका वर्णन पहले आ चुका है, वह अमरीकाकी मेक्सीकोकी खाड़ीसे निकलती है। ऐसी धाराओंमें सबसे प्रधान और वर्णनीय यही है। महासागरोंमें जब मानसून वायु उठता है तब कई धाराएं भी प्रवाहित हो जाती हैं। उदाहरणार्थ, गर्मीकी ऋतुमें जब मानसून वायुका सञ्चलन होता है तब भारतके दोनों तटों और ब्रह्माके तटकी ओर एक समुद्री जलवेग बालूये मिट्टीको लिए हुए दौड़ता है। भारतकी पश्चिमी तट सीमापर यह प्रवाहित मिट्टी बन्दरगाहोंके द्वारोंपर सेतु बना देती है। यही कारण है कि बम्बे और कच्छकी खाड़िया और सिन्धु नदीका मुहाना छिछले और कम गहरे होते चले जाते हैं। पूर्वकी तट-सीमापर भी यही क्रिया होती है। इसके पास पास बहुत दूरतक छिछला पानी रहता है। मद्रासका बन्दर सदैव इस मिट्टी बहानेवाली जलधाराके भयमें रहता है। हुगलीकी खाड़ीकी मिट्टी कभी कभी हटानी पड़ती है, नहीं तो वहां नौकाएं न आ सकें।

तारकोंके अस्त-व्यस्त मण्डल और बीच-बी
नील नभ,—ऐसी व्यवस्थाएं दक्षिणी
प्रतिभा-सम्पन्न रचना प्रदान करती हैं। उ
जो ज्योतिष, वनस्पति, प्राणी और भौति
अपरिचित है—उपर्युक्त दृश्योंकी शोभाका
पडता है जितना कि किसी सुन्दर
देखनेसे पडता है। वहाके विचित्र
ऐसा मनुष्य भी जो वनस्पति-शास्त्रका वे
ही बता सकता है कि यह देश उष्णकटि
ज्योतिष-शास्त्रका कुछ भी ज्ञान नही रख
आकाशको देखकर झट बता सकता है कि
द्वीप नहीं है। ... भूमध्य रेखाके देशोंमें
विचित्र रूप धारण किये हुए है।"

फारबैस महोदय लिखते हैं कि—"पूर्वी
आ जावा इत्यादि) में सायंकालके ऐसे मन
एक बार देखे जानेपर जीवन पर्य्यन्त स्मर
सुनहरे समुद्रके ऊपर —जो दक्षिण-पश्चिमक
जहा सूर्य्य अस्ताचलको प्राप्त हुआ—झोबीं
उन्नत मीनार गहरे बैंजनी रङ्गके दीखते थे
चक्रपर भूरे और कोमल बादलोंकी धाराएं
उनके ऊपर आकाशमें जरदी लिये हुए नीली
बीचमें नारंजियां बनी थीं और उनके ऊपर

था। जैसे जैसे सूर्य नीचे उतरता गया, आकाश एक अद्भुत सुवर्णपट बनता गया और उसमें भूरे बादल लीन होनेके पूर्व विचित्र आकार बनाकर इधर-उधर घूमने लगे ”

ध्रुव

उत्तर और दक्षिण ध्रुवोंने भी मानव मस्तिष्कपर सदैवसे एक विशिष्ट जादू डाल रखा है। अद्यावधि कई अत्यन्त साहसी लोग ध्रुवयात्रा करनेको जा चुके हैं, परन्तु किसीको पूरी सफलता न मिली। पेरीसाहब उत्तर ध्रुवकी ओर ८८°६´ अक्षांशतक पहुच सके थे। जबतक ध्रुवके पास कोई न पहुंचे, तबतक स्पष्टतया ज्ञात कैसे हो सकता है कि वहा क्या है। परन्तु कई लोग समझते हैं कि अन्तमें वहां कदाचित् खुले पानीका विस्तार हो, यद्यपि ऐसी सम्भावना प्रतीत नहीं होती।

जब कभी दक्षिण ध्रुवकी ओर जहाज गये हैं, वे या तो अन्टारकटिक महाद्वीपके तटोंके पास पहुच गये और या अन्तमें ४०० से ५०० फीट उन्नत हिमकी दीवारको प्राप्त हुए हैं। वहा हिम ही-हिम है जो पिघलता भी नहीं है। जहातक दृष्टि पहुंच सकती है, बर्फके अतिरिक्त कुछ नहीं दीखता। यह हिम धीरे धीरे मोटा होता हुआ ठोस चट्टान बन जाता है और अन्तमें यह काफी ढालू होकर हिम पर्वत बन जाता और फिर फिसलकर आगे बढ़ने लगता है। दक्षिणी-समुद्रमें बहते हुए जो विशाल हिम पर्वत होते हैं, वे भी इसी व्यवस्थाको प्रमाणित करते हैं। दक्षिणान्तमें जो बर्फ जमती है उसकी धीरे धीरे चट्टानें बन जाती

चट्टानकी ऐसी अट्टालिकामें बैठे हुए थे जहां भयङ्कर खण्डर चारों ओर घिरे हुए थे—हमारे लिये एक अध्यात्मका अद्भुत मानसिक चित्र बना रहे थे।"

स्पिट्जबर्गनका एक हिमपर्वत जब वह समुद्रतटके समीप पहुंचता है तब ११ मील चौड़ा है। उसके अग्रभागकी समुद्रकी ओरकी ऊंचाई लगभग ४०० फीटकी है। यह पर्वतके शिखरकी ओर बहुत दूरतक फैला हुआ रहता है। इसका ऊपरी तल चिकने और स्वच्छ पालेका एक झुका हुआ क्षेत्र है जिसकी चमक और सुन्दरता उस निर्जन तटपर एक असाधारण सङ्केत-धारी मेंढ है। उसके उन्नत पार्श्वोंसे हिम-खण्ड समय-समयपर झड-झडकर गिरा करते हैं। मनुष्यके नेत्रोंको वे ऐसे पुखराज खण्डसे प्रतीत होते हैं जो मानों नीलाम्बरसे झडकर गिरे हैं।

वहांके क्षेत्रोंका हिम अपेक्षत चिपटा होता है यद्यपि इसमें भी ५० फीट ऊंचे ढेर जम जाते हैं। इन्हीं हिमपर्वतोंसे वे तैरती हुई हिम-चट्टानें जिनके सौन्दर्य और अद्भुतताकी आरकटिक महासागरके यात्री शोभा और कीर्त्तिका गान करते नहीं थकते हैं—बनती हैं।

हे प्रभो! तेरी क्या क्या कुतूहल-पूर्ण लीलाएं हैं—तेरे कैसे कैसे विचित्र स्वरूप हैं—तुझे निराकार बतलाया जाय या साकार—सचमुच तू वर्णनातीत है॥

दसवां अध्याय



(क)

वायुमण्डल

ब्रह्माण्डमें वायु भी एक अद्वितीय विचित्र, वस्तु है। यह निराकार भी है और साकार भी। निराकार इस कारण है कि साधारणतः न इसका कोई आकार देखनेमें आता और न इसमें गुरुत्व प्रतीत होता है, परन्तु वैज्ञानिकोंने इसको तौल भी लिया है। जब इसका वेग बढ़ता है तब यह जल अथवा बारीक धूलिके साथ चलती दिखती भी है। ऐसी दशामें यह अवश्यमेव साकार है।

यह सर्वव्यापक है। जलमें, थलमें आकाशमें वायु सर्वत्र है। साधारणतः जबतक इसका वेग नहीं बढ़ता, यह हमें दीखती नहीं। परन्तु यदि यह नहीं है तो हम सूंघते क्या हैं? किसी बन्द कमरेमें बैठे हुए हम वायुको नहीं मालूम करते। परन्तु वहां भी यह वर्तमान है। वहां भी हम इसको नासिका द्वारा निगल रहे हैं। वहां जब हम एक छोटीसी पंखी हाथमें लेकर झलते हैं तो उसी क्षण हम वायुको प्राप्त कर लेते हैं। यह कहावत सच है कि वायुके समान कोई भी पदार्थ न पैना है और न भोंटा है। कहीं भी तनिकसा अवकाश होना चाहिये, वहीं वायुका सचार हो जाता है और जहां कुछ ठोसपना हो,

चट्टानकी ऐसी अट्टालिकामें बैठे हुए थे जहां भयङ्क चारों ओर घिरे हुए थे—हमारे लिये एक अध्यात्म मानसिक चित्र बना रहे थे।"

स्पिट्जवर्गनका एक हिमपर्वत जब वह समुद्रत पहुंचता है तब ११ मील चौड़ा है। उसके अग्रभागक ओरकी ऊंचाई लगभग ४०० फीटकी है। यह पर्वत ओर बहुत दूरतक फैला हुआ रहता है। इसका चिकने और स्वच्छ पालेका एक झुका हुआ क्षेत्र दमक और सुन्दरता उस निर्जन तटपर एक असाध कारी मेंढ़ है। उसके उन्नत पार्श्वोंसे हिम-खण्ड झड़-झड़कर गिरा करते हैं। मनुष्यके नेत्रोंको वे खण्डसे प्रतीत होते हैं जो मानों नीलाम्बरसे झड़

वहाके क्षेत्रोंका हिम अपेक्षत: विपद्म होता भी ५० फीट ऊंचे ढेर जम जाते हैं। इन्हीं हिमप हुई हिम चट्टानें जिनके सौन्दर्य और अद्भुतत महासागरके यात्री शोभा और कीर्त्तिका गान प हैं—बनती हैं।

हे प्रभो! तेरी क्या क्या कुतूहल कैसे कैसे विचित्र स्वरूप हैं—तुझे नि साकार—सचमुच तू वर्णनातीत है॥

है; परन्तु योरपके विज्ञान शास्त्रमें यह तत्व नहीं समझी गई है, किन्तु मिश्रण मानी गई है। मरुत्को हिन्दुओंने तत्व माना सो भी अनुचित नहीं किया, क्योंकि चाहे वह मितत्व ही है, परन्तु उसके बिना सृष्टि नहीं रह सकती। सृष्टि पञ्चभूतात्मक मानी गई है। उन पाचोंमेंसे वायु एक तत्व है। इसके बिना प्राणी और वनस्पति जीवित नहीं रह सकते। यह अत्यन्त आवश्यक है, इसीलिये इसको तत्व माना है। वरना यह यथार्थमें वैज्ञानिक दृष्टिसे तत्व नहीं है क्योंकि यह कई गैसोंका एक अद्भुत मिश्रण है। वायुमें आक्सीजन, हाईड्रोजन,नाईट्रोजन और कारबन गैस हैं। वायुमण्डल इन्हींसे भरा पडा है।

गैस वायुमें एक अत्यन्त अगोचर और सूक्ष्म द्रव्य है। इसीके भिन्न रूपोंके सयोगसे जल, वायु, तेजाव इत्यादि पदार्थ बने हुए हैं। हाईड्रोजन, आक्सीजन, नाईट्रोजन और कार्बन गैसोंके अणु प्रसरणशील हैं। वे निरन्तर गतिमें रहते और एक सीधमें चलकर एक दूसरेसे टकराते हैं तथा जिस बरतनमें गैस रहे उसकी दीवारोंपर दवाव डालते हैं। अधिक दवाव और सरदीसे गैस द्रवीभूत हो जाते हैं। पर भिन्न भिन्न गैसोंके लिये भिन्न भिन्न मात्राके दवाव और शीतकी आवश्यकता होती है। गैसोंकी जैसा कि ऊपर कहा जा चुका है,बडी भारी विशेषता यह है कि वे जितना खाली (शून्य) स्थान पाते हैं उतनेभरमें फैलकर भरना चाहते हैं अर्थात् उनका कोई परिमित तल या विस्तार नहीं होता। बोतलमें यदि हम कुछ जल डालेंगे तो

वह नीचे पेंदेमें परिमित स्थानमें ही रहेगा, परन्तु यदि उसी बोतलमें हम किसी गैसको भर दें तो वह समस्त बोतलमें व्याप्त हो जायगा।

गैसोंके गुण और कर्तव्य—आक्सिजन गैस रूप-रस गन्ध रहित वायु-भेद है और वायुमण्डल-गत वायुसे कुछ भारी होता तथा जलमें घुल जाता है। यह जलमें ८६ प्रति सैकड़ा होता है। इसी कारण जलमें अन्दर रहनेवाले प्राणी इसका श्वास लेकर जीवित रहते हैं। धातुमें लगकर यह मोरचा उत्पन्न करता है। लोहेपर जब जल रहता है तो उसपर मोरचा पड जाता है, पीला जङ्ग उपड़ता है। इसका यही कारण है कि जलमें जो आक्सीजन होता है वह लोहेपर जलके साथ पहुंचकर काट कर देता है। जितने आक्साइड पदार्थ होते हैं उन सबमें यह गैस होता है। यह रसायन-क्रिया द्वारा उनसे पुन पृथक् किया जा सकता है। यदि पारा इतना गरम किया जाय कि उसपर एक लाल तह चढ़ जाय और फिर वह लाल पदार्थ (हिंगलू) और भी तपाया जाय तो आक्सीजन और पारद धातुके अश पृथक्-पृथक् हो जायगे। प्राणियोंके जीवनके लिये यह गैस आवश्यक है इसीलिये इसको प्राणद-वायु भी कहते हैं। इसको अम्लज और अम्लजन भी कहते है। ओजोन गैस इसीका त्रिगुणात्मक प्रभेद है। यह गैस वनस्पतियोंद्वारा बाहर निकाला जाता है और प्राणियों द्वारा अन्दर लिया जाता है। इस वायु-प्रभेद विना अग्नि प्रदीप्त नहीं हो सकती। कोयला, गन्धक इत्यादि

पदार्थों पर यह यों प्रभाव नहीं करता, परन्तु जब वे तपा दिये जाते हैं तब आक्सीजन उनमें मिल जाता है और उनको जला देता है। कई रसायनिक क्रियाओंके द्वारा यह वायुसे पृथक् किया जाकर बोतल इत्यादि बरतनमें सचित किया जा सकता है।

वायुका दूसरा गेस नाईट्रोजन है। एक बोतलमें दीपक जलाया जाय। वह तभीतक जलता रहेगा जबतक उस बोतलमें आक्सिजन रहेगा। जब वह समाप्त हो जायगा तब दीपक बुझ जायगा क्योंकि आक्सिजनके समाप्त होनेपर उस बोतलमें एक अन्य गेस रह जायगा जो जलानेका कार्य्य नहीं कर सकेगा। इसी अवशिष्ट गेसका नाम नाईट्रोजन है। यह गेस बहुत सुस्त और कम करनेवाला वायुभेद है। यह अग्निमें नहीं जलता और उसके जलनेमें सहायता भी नहीं करता। यह जन्तुओंको भी सहायता नहीं पहुचाता। यदि आक्सिजन-रहित वायुके बरतनमे एक चूहा रख दिया जाय तो वह नाईट्रोजनमें तुरन्त मर जायगा। वायुमें इसके विद्यमान रहनेसे उसका आक्सिजन शक्तिहीन रहता है वरना वह अकेला बहुत अग्नि जला दे। इसके मिश्रणसे बहुतसे द्रव्य बनते हैं जो नाईट्रेट कहलाते हैं, जैसे सिलवर नाईट्रेट, पोटासियम नाईट्रेट इत्यादि। नाइट्रिक एसिड इसका तेजाब है। यह गेस वायुमेंसे रसायनिक क्रियाओंके द्वारा पृथक् किया जा सकता है। यद्यपि वायुमण्डलके अधिकांश भाग आक्सिजन और नाईट्रोजन हैं, परन्तु उसमें केवल येही दो नहीं हैं। उसमें अन्य गेस भी हैं। वर्षा, ओले और पालेकी

वह नीचे पेंदेमें परिमित स्थानमें ही रहेगा, परन्तु यदि व बोतलमें हम किसी गैसको भर दें तो वह समस्त बोतलमें व्या हो जायगा।

गैसोंके गुण और कर्तव्य—आक्सिजन गैस रूप रस ग रहित वायु-भेद है और वायुमण्डल-गत वायुसे कुछ भा होता तथा जलमें घुल जाता है। यह जलमें ८६ प्रति सैक होता है। इसी कारण जलमें अन्दर रहनेवाले प्राणी इस श्वास लेकर जीवित रहते हैं। धातुमें लगकर यह मोरच उत्पन्न करता है। लोहेपर जब जल रहता है तो उसपर मोरचा पड जाता है, पीला जङ्ग उपडता है। इसका यही कारण है कि जलमें जो आक्सीजन होता है वह लोहेपर जलके साथ पहुंचक काट कर देता है। जितने आक्साइड पदार्थ होते हैं उन सब यह गैस होता है। यह रसायन-क्रिया द्वारा उनसे पुन. पृथक् किया जा सकता है। यदि पारा इतना गरम किया जाय कि उसपर एक लाल तह चढ़ जाय और फिर वह लाल पदार्थ (हिंगलू) और भी तपाया जाय तो आक्सीजन और पारद धातुके अंश पृथक्-पृथक् हो जायगे। प्राणियोंके जीवनके लिये यह गैस आवश्यक है इसीलिये इसको प्राणद-वायु भी कहते हैं। इसको अम्लज और अम्लजन भी कहते है। ओजोन गैस इसीका त्रिगुणात्मक प्रभेद है। यह गैस वनस्पतियोंद्वारा बाहर निकाला जाता है और प्राणियों द्वारा अन्दर लिया जाता है। इस वायु-प्रभेद विना अग्नि प्रदीप्त नहीं हो सकती। कोयला, गन्धक इत्यादि

पदार्थो पर यह यों प्रभाव नहीं करता, परन्तु जब वे तपा दिये जाते हैं तब आक्सीजन उनमें मिल जाता है और उनको जला देता है। कई रसायनिक क्रियाओंके द्वारा यह वायुसे पृथक् किया जाकर बोतल इत्यादि बरतनमें सञ्चित किया जा सकता है।

वायुका दूसरा गैस नाईट्रोजन है। एक बोतलमें दीपक जलाया जाय। वह तभीतक जलता रहेगा जबतक उस बोतलमें आक्सिजन रहेगा। जब वह समाप्त हो जायगा तब दीपक बुझ जायगा क्योंकि आक्सिजनके समाप्त होनेपर उस बोतलमें एक अन्य गैस रह जायगा तो जलानेका कार्य्य नहीं कर सकेगा। इसी अवशिष्ट गैसका नाम नाईट्रोजन है। यह गैस बहुत सुस्त और कम करनेवाला वायुभेद है। यह अग्निमें नहीं जलता और उसके जलनेमें सहायता भी नहीं करता। यह जन्तुओंको भी सहायता नहीं पहुचाता। यदि आक्सिजन-रहित वायुके बरतनमें एक चूहा रख दिया जाय तो वह नाईट्रोजनमें तुरन्त मर जायगा। वायुमें इसके विद्यमान रहनेसे उसका आक्सिजन शक्तिहीन रहता है वरना वह अकेला बहुत अग्नि जला दे। इसके मिश्रणसे बहुतसे द्रव्य बनते हैं जो नाईट्रेट कहलाते हैं, जैसे सिल्वर नाईट्रेट, पोटासियम नाईट्रेट इत्यादि। नाइट्रिक एसिड इसका तेजाब है। यह गैस वायुमेंसे रसायनिक क्रियाओंके द्वारा पृथक् किया जा सकता है। यद्यपि वायुमण्डलके अधिकांश भाग आक्सिजन और नाईट्रोजन हैं, परन्तु उसमें केवल येही दो नहीं हैं। उसमें अन्य गैस भी हैं। वर्षा, ओले और पालेकी

जो प्राकृतिक क्रियायें वायुमण्डलमें होती हैं इससे स्पष्टत ज्ञात होता है कि उसमें जलवाष्प भी है।

वायुमण्डलका तीसरा गैस हाईड्रोजन है। इसमें रङ्ग, स्वाद और गन्ध नही होते। यह मिश्रित वायुसे हलका होता है। इसीलिये यह आकाशमें उड़नेवाले बैलूनों और व्योम-यानोंमें भरा जाता है। यह सब द्रव्योंमें हलका है, इसीलिये इसका परमाणुविक तौल १ रक्खा गया है। यह स्वय जलने-वाला द्रव्य है, परन्तु यह अन्य पदार्थोंको नहीं जलाता। इसके मिश्रणसे बहुत पदार्थ बनते हैं, जिनको हाईड्रेट कहते हैं। हाईड्रोक्लोरिक एसिडमें यह क्लोरीन गैसके साथ मिला हुआ रहता है। जल इसी हाईड्रोजन और आक्सिजन गैसोंका एक प्रकारका मिश्रण है। अर्थात् जब हाईड्रोजनके दो आक्सिजनके एक परमाणुसे मिलते हैं तब जलका बनता है। जलमें हाईड्रोजन $\frac{1}{?}$ और मिले रहते हैं। यह भी अन्य गैसोंकी नाईं सकता है।

चौथा गैस

कहते हैं

हो जाता है तो

भारी होता है। इस

बोतलमें यदि दीपक

इस गैसका स्वच्छ

है। जिन मकानोंमें बहुत मनुष्य रहते हैं वहा यह अधिकाशमें पाया जाता है। प्राणियोंके लिये यह हानिकारक है, परन्तु उद्भिजोंके लिये यह बड़ा उपयोगी है। प्राणियों और उद्भिजोंमें वायुमण्डलके प्रति एक ऐसा विचित्र सम्बन्ध है कि जिससे प्रमाणित होता है कि प्राणोके लिये जो कुछ हानिकारक और व्यर्थ है उसको प्रकृति उद्भिजोंके लिये उपयोगी बनाती और उद्भिजके लिये जो व्यर्थ और अलाभदायक है उसको प्राणीके लिये उपयोगी बनाती है। प्राणी श्वासवायुमें आक्सिजन निगलते और कारबन डायक्साइड पुन: बाहर फेंकते हैं और इसके विपरीत उद्भिज कारबन डायक्साइड अन्दर खींचते और आक्सिजनको बाहर निकालते हैं। ये कारबनको तो वहीं रख लेते हैं और आक्सिजनको बाहर फेंक देते हैं। इसका यह अर्थ नहीं है कि वनस्पतिको आक्सिजनकी नितान्त आवश्यकता ही नहीं है। परन्तु उनके लिये आक्सिजन यथेष्ट मात्रामें सूर्य-प्रकाशसे मिल जाता है। इस प्रकार वायुमण्डलमें आक्सिजन और कारबोनिक एसिड गैस प्राणी और उद्भिज द्वारा आते जाते रहते हैं।

इन गैसोंके अतिरिक्त वायुमण्डलमें ओज़ोन, नाइट्रिक एसिड, अमोनिया, आरगन, हीलियम, निअन, क्रिपटन, जेनन और जलवाष्प न्यूनाधिकाशमें रहते हैं। जैसे सूक्ष्म जन्तुओंके विषयमें तृतीय अध्यायमें कहा जा चुका है, कई अत्यन्त सूक्ष्म जीवपरमाणु (विशूचिका, क्षयरोग, इन्फ्लुएञ्जा इत्यादिके) भी वायुमण्डलमें

जो प्राकृतिक क्रियायें वायुमण्डलमें होती ह
होता है कि उसमें जलवाष्प भी है।

वायुमण्डलका तीसरा गैस हाईड्रोज
स्वाद और गन्ध नहीं होते। यह मिश्रित
है। इसीलिये यह आकाशमें उड़नेवाले वै
यानोंमें भरा जाता है। यह सब द्रव्योंमें हल
इसका परमाणुविक तौल १ रक्खा गया है।
वाला द्रव्य है, परन्तु यह अन्य पदार्थोंको नहीं
मिश्रणसे बहुत पदार्थ बनते हैं, जिनको हाई
हाईड्रोक्लोरिक एसिडमें यह क्लोरीन गैसके साथ मि
है। जल इसी हाईड्रोजन और आक्सिजन गैसोंके
प्रकारका मिश्रण है। अर्थात् जब हाईड्रोजनके
आक्सिजनके एक परमाणुसे मिलते हैं तब जल
बनता है। जलमें हाईड्रोजन ⅟ और आक्सिजन
मिले रहते हैं। यह भी अन्य गैसोंकी नाई पृथक्
सकता है।

वायुमण्डलका चौथा गैस कारबोनिक एसिड
इसको कारबन डायोक्साइड भी कहते हैं। जब आ
दीपकके जलनेमें समाप्त हो जाता है तो कारबोनिक ए
बन जाता है। यह भारी होता है। इस गैससे अग्नि नहीं
इस गैसकी बोतलमें यदि दीपक रख दिया जाय
जायगा। इस गैसका स्वच्छ वायुमण्डलमें ₁₀₀... भा

है। जिन मकानोंमें बहुत मनुष्य रहते हैं वहां यह अधिकांशमे पाया जाता है। प्राणियोंके लिये यह हानिकारक है, परन्तु उद्भिजोंके लिये यह बड़ा उपयोगी है। प्राणियों और उद्भिजोंमें वायुमण्डलके प्रति एक ऐसा विचित्र सम्बन्ध है कि जिससे प्रमाणित होता है कि प्राणीके लिये जो कुछ हानिकारक और व्यर्थ है उसको प्रकृति उद्भिजोंके लिये उपयोगी बनाती और उद्भिजके लिये जो व्यर्थ और अआरामदायक है उसको प्राणीके लिये उपयोगी बनाती है। प्राणी श्वासवायुमें आक्सिजन निगलते और कारबन डायक्साइड पुन बाहर फेंकते हैं और इसके विपरीत उद्भिज कारबन डायक्साइड अन्दर खींचते और आक्सिजनको बाहर निकालते हैं। वे कारबनको तो वहीं रख लेते हैं और आक्सिजनको बाहर फेंक देते हैं। इसका यह अर्थ नहीं है कि वनस्पतिको आक्सिजनकी नितान्त आवश्यकता ही नहीं है। परन्तु उनके लिये आक्सिजन यथेष्ट मात्रामें सूर्य-प्रकाशसे मिल जाता है। इस प्रकार वायुमण्डलमें आक्सिजन और कारबोनिक एसिड गैस प्राणी और उद्भिज द्वारा आते जाते रहते हैं।

इन गैसोंके अतिरिक्त वायुमण्डलमें ओज़ोन, नाइट्रिक एसिड, अमोनिया, आरगन, हीलियम, निउन, क्रिपटन, जैनन और जलवाष्प न्यूनाधिकांशमें रहते हैं। जैसे सूक्ष्म जन्तुओंके विषयमें तृतीय अध्यायमें कहा जा चुका है, कई अत्यन्त सूक्ष्म औपरमाणु (विशूचिका, क्षयरोग, इन्फ्लुएञ्जा इत्यादिके) भी वायुमण्डलमें

विद्यमान हैं। क्षीर क्षेत्रोंपर, लवण झीलोंपर क्लोरीन गैस भी फैला रहता है। बालू या मिट्टीके परमाणु भी भूमिपरसे वायु-वेगके कारण उठकर वातावरणमें संयुक्त रहते हैं।

यदि आकाशसे गिरे हुए वर्षा-जलको हम 'ऊपरका ऊपर किसी साफ बरतनमें ले लें और फिर रसायनिक क्रियाओंके द्वारा उसका ध्यानपूर्वक पृथक्-करण करें तो हमें ये सब द्रव्य उसमें कुछ-न-कुछ अंशोंमें मिल जायंगे।

सारांशमें वायुमण्डलमें निम्नलिखित द्रव्य रहते हैं'—

आक्सिजन	२०.६५
नाईट्रोजन	७७.११
आरगन इत्यादि	०.८ (लगभग)
कारबन डायोक्साइड	०.०३ "
ओजून	बहुत सूक्ष्म परिमाणमें
जलवाष्प	१.४ (औसत)
अमोनिया	बहुत सूक्ष्म परिमाणमें
नाइट्रिक एसिड	" " "
	१००.००

वायुमण्डलमें शीतकालकी अपेक्षा जब हमें वायु ठण्डी और गीली प्रतीत होती है,, ग्रीष्मकालमें जलार्द्रता (वाष्प) की मात्रा अधिकतर होती है तथापि उस समय वायु बहुत शुष्क एवं शान्त होती है। इसका कारण यह है कि जलका वाष्प-दबाव

तापक्रमकी वृद्धिके साथ-साथ बढ़ता है। इसलिये जितने जलकी मात्रा किसी परिमित वायुमण्डलको आर्द्र करके उसमेंसे शीतकालमें वर्षा या ओस टपका दे, उससे कहीं अधिकतर मात्रा ग्रीष्मकालमें उतने ही वायुमण्डलको आर्द्र करनेके लिये आवश्यक होती है।

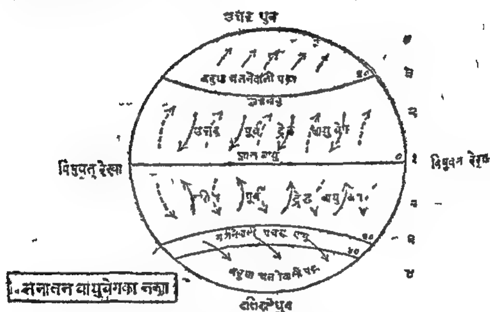
वायुका यह भी एक बड़ा विचित्र गुण है कि जैसी गन्धमें होकर यह निकलती है वैसी ही गन्ध यह स्वयं धारण कर लेती है। वाटिकाओं, उद्यानों और हरे-भरे जंगलोंमेंसे आई हुई पवन पुष्पोंकी सुगन्धसे लदी हुई रहती है। वही वायु किसी दुर्गन्धमें होकर निकलती है तो कितनी बदबूदार हो जाती है।

वायुवेग—वायुके वेग कितने विचित्र प्रकारके होते हैं। इसकी गति बड़ी विचित्र है। कभी यह शान्त है, कभी मन्द मन्द चलती है और कभी प्रचण्डतासे चलती है। परन्तु इसकी चञ्चल गतियां बिना कारण नहीं होतीं। वे सब तापक्रमपर अवलम्बित रहती हैं।

वायुवेगका नाम वह जिस दिशासे आता है उसीसे पड़ जाता है। जैसा कि हम कहते हैं "आज तो पुर्वा चलती है" (अर्थात् पूर्वसे वायुवेग आ रहा है) "आज पछा चल रही है" (अर्थात् पश्चिम दिशासे पवनवेग आ रहा है)। यह तो स्पष्ट ही है कि जब पवन महाद्वीपके तटकी ओरसे चलती है तब प्रायः तर हो जाती है और जब तटसे जलकी ओर चलती है तो उसमें शुष्कता प्रतीत होती है। परन्तु ऐसे विचित्र वायुवेग क्यों होते

हैं, यह एक बडा विनोदपूर्ण विषय है,—प्रकृतिका बडा मनोहर परन्तु नियमयुक्त खेल है।

नीचे दिये हुए नक्शेसे वायुवेगोंकी दिशाओंका पता अच्छी तरह चल जायगा। इस नक्शेमें वायुकी गति तीरोंके चिन्हसे दिखाई गयी है।



सनातन वायुवेगका नक्शा

विषुवत् या भूमध्यरेखाके दोनों ओर वायुवेगोंका क्रम समान है। दोनों ही ओरका क्रम इस प्रकार है—शान्त, उत्तर या दक्षिण-पूर्वकी ट्रेडवायु शान्त और पछ्वा।

विषुवतके निकट बडी उष्णता है। वायु तर और शान्त रहती है। कभी-कभी मूसलधार पानी बरसता है। ट्रेडपवन बहुत स्थिर चलती है और शान्त पवनकी ओर तिरछी चलती

है। इससे समुद्रका जल वाष्प बनता है। 'ट्रेड' एक पुराना शब्द है, इसका अर्थ स्थिर है। जब बिना यन्त्रके जहाज केवल पवन द्वारा चलते थे तो इस पवनसे उनकी गति बड़ी स्थिर रहा करती थी। इसीलिये इसका नाम 'ट्रेड-पवन' पड़ गया। ३०° उत्तर और ३०° दक्षिण अक्षांशका शान्त खण्ड शुष्क है। यहां आकाश निर्मल रहता है। पछुवा या पछां वायु 'ट्रेड-पवन' की नाई स्थिर नहीं है और ४०° और ५०° तक उत्तर अक्षांशके बीचमें चक्कर लगाती है। दक्षिण गोलार्द्धमें पछां बड़े वेगसे चलती है और इसीलिये ४०° से ५०° अक्षांशके प्रान्तको मल्लाह लोग 'गरजनेवाली चालीसा पवन' कहते हैं। ध्रुवोंके पासकी पवनका वृत्तान्त बहुत कम ज्ञात है। परन्तु वायुवेगका उपर्युक्त क्रम क्यों है? हमें यह भी तो जानना चाहिये। विषुवत् (भूमध्य) रेखाके समीप जल और थल सूर्यके तापसे बहुत गरम हैं। जो वायु वहां है वह अत्यन्त उष्ण होकर ऊपर चढ़ती है और ऊपर ही ऊपर उत्तर और दक्षिणको चली जाती है। इस कारणसे उत्तर और दक्षिण भागों (कटिबन्धों) में वायु अधिक हो जाती है और भूतलके पास नीचेकी पवनको दबाकर बहुत उष्ण प्रान्तकी ओर पहुंचा देती है। इस निम्नस्थित वायुको "ट्रेड-पवन" कहते हैं। इस 'ट्रेड पवन' के ऊपर वायु ध्रुवोंकी ओर जाती रहती है। इसको "विपरीत ट्रेड पवन' कहते हैं क्योंकि इसका रुख "ट्रेड-पवन" से उलटा होता है। "विपरीत ट्रेड पवन" "ट्रेड पवन"के उत्तर और दक्षिण शान्त प्रान्तोंमें नीचे उतरती

है। कुछ पुन विषुवत रेखाकी ओर चली जाती है और कुछ ध्रुवोंकी ओर बहकर पछुआ बन जाती है।

पृथ्वी पश्चिमसे पूर्वकी ओर घूमती है। जलवायु विषुवत् रेखाके पास पहुंचती है तो ऐसे स्थानको जाती है जो बहुत तेज चल रहा है। यह उस स्थानके साथ पूर्वकी ओर (पृथ्वीकी गतिसे) नहीं चल सकती और उत्तर गोलार्द्धमें अपने वास्तविक रुखके दाहिने ओर और दक्षिण गोलार्द्धमें बाईं ओर पीछे रह जाती है। इस रीतिसे उत्तर गोलार्द्धमें उत्तरीय वायु "उत्तर-पूर्व ट्रेड-पवन" बन जाती और दक्षिण गोलार्द्ध में "दक्षिण-पूर्व ट्रेड पवन" बन जाती है। ध्रुवोंको ओर जानेवाली वायु सदा ऐसे स्थानको जा रही है जो धीरे चलता है और इसीलिये पृथ्वीकी गतिके आगे बढ़ जाती है। यह भी उत्तर गोलार्द्धमें अपने वास्तविक रुखके दाहिने ओर तथा दक्षिण गोलार्द्धमें वाम ओर झुक जाती है। यह वायुक्रम नियम फेरेल महोदयका ढूढा और जाचा हुआ है और इसलिये उन्हींके नामसे फेरेल नियम (Ferrel's Law) कहलाता है।

यदि थलके महाद्वीप न होते तो वायुके रुख जैसे नक्शोंमें बताये गये हैं वैसे ही सदैव रहते। परन्तु स्थल भाग सन्निकटके समुद्रकी अपेक्षा ग्रीष्ममें अधिकतर उष्ण और शीतमें अधिकतर ठण्डे हो जाते हैं। इसी कारण वायुके विशाल और प्रचण्ड बगूले उठकर ग्रीष्ममें थलकी ओर जलसे और शीत कालमें जलकी ओर थलसे आते हैं। इस वायुवेगका सर्वोच्च

उदाहरण एशिया महाद्वीपके दक्षिण पूर्वमें (भारतके चारोंओर) देख पड़ता है जहा ग्रीष्मकी मौसमी वायु (Summer monsoon) थलकी ओर, जाडेकी मौसमी वायु (Winter monsoon) जलकी ओर जाती है। यह वायुसघटन उष्णदेशोंके समुद्र-तटोंपर थोडा थोडा अहोरात्र हुआ करता है। भारतदेशमें वर्षा इसीके कारण होती है। दिनको थलकी गरमीसे ऊपरकी वायु तप जाती है। वह फैलकर ऊपर उठती है और ऊपर ही ऊपर समुद्रकी ओर चली जाती है। धरतीपर वायुका दबाव कम होता है और समुद्रपर बढ जाता है। समुद्रतलकी वायु थलकी ओर चली जाती है। इसे समुद्र वायु (Seas breeze) कहते हैं। रात्रिके समय वायुक्रिया इसके ठीक विपरीत होती है। जलतलके ऊपरकी वायु उष्ण रहती है क्योंकि पानीसे गरमी धीरे-धीरे निकलती है और वायु ऊपर ही ऊपर थलकी ओर चली जाती है। और थलके ऊपरकी ठण्डी वायु धरतीके बराबर-बराबर जलकी ओर आ जाती है। यह थलवायु (land breeze) कहलाती है। जब जल और थल दोनोंके ऊपरकी वायुका तापक्रम (Temperature) एक रहता है तब वायु शान्त रहती है। ऐसा प्रात काल और सन्ध्या समय हुआ करता है। इन्हीं वायु–गतियोंका विशाल स्वरूप मानसून (Monsoon) वर्षा-पवन है।

वास्तवमें वर्षा पवनका सघटन एक ही सिद्धान्तपर अवलम्बित है। वह सिद्धान्त यह है कि वायुमें बोझ या दबाव

होता है। जिस स्थानमें वायुका दबाव अधिक होता है, वहासे वह चलकर वहा पहुचती रहती है जहा दबाव कम होता है। इसी गतिका नाम पवनवेग है। अब जैसा जैसा स्थानीय दबाव होगा वैसी वैसी ही वायुवेगकी गति होगी। वायुके दबावमें परिवर्त्तन डालनेवाला कारण उष्णता है। जब वायु तपती है, तब फैलती है और उसका दबाव कम हो जाता है। वायुका दबाव बैरोमीटर (Barometer) नामक यन्त्रसे जाँचा जाता है। उत्तर भारतमें मार्च, एप्रिल और मईमें खूब गरमी पड़ती है। इसलिये सन्तप्त वायुका एक विशाल तह जो भूमिपर रहता है और भी गरम होकर विस्तृत होता और ऊपर चढ़ता है। अतः इसका दबाव घट जाता है। उधर समुद्रमें विषुवत् रेखाके दक्षिणमें दबावका प्राबल्य होता है। इसलिये वायुका वेग दक्षिण महासागरकी ओरसे धीरे-धीरे भारतकी ओर आरम्भ होता है। जब यह वायुवेग सहस्रों मीलतक जलके ऊपर होकर बहता है तो अवश्य ही इसमें खूब आर्द्रता (नमी) आ जाती है। यह आर्द्र पवन वेग दक्षिण-पश्चिमका ग्रीष्म वर्षा-वायुवेग (Summer monsoon) कहलाता है। वायुमण्डलका एक दूसरा नियम स्मरण रखनेके योग्य यह है कि जलार्द्रता—नमीका परिमाण जो वायु सूक्ष्म स्वरूपमें अर्थात् वाष्पस्वरूपमें रख सकती है वह वायुके तापक्रमपर अवलम्बित है। यह नियम पहले भी बताया जा चुका है। जितनी वायु अधिक उष्ण होगी उतना ही अधिकतर वाष्प उसमें रह सकेगा, और इसके विरुद्ध यदि

वाष्पपूर्ण वायु ठण्डी होगी तो इसमेंका कुछ वाष्प जमकर वर्षा या ओसमें परिणत हो जायगा। साधारण वायुमें भी नमीका परिमाण रहता ही है जो दृष्टिगोचर नहीं होता। यदि किसी बरतनमें बर्फ भर दी जाय तो हम देखेंगे कि बरतनके बाहरी भागपर ओसके कण दिखलाई देंगे। अर्थात् बरतनके अन्दरकी बर्फने बाहरकी वायुको ठण्डा कर दिया, इसलिये उसमेंकी नमी बरतनके बाहरी भागपर ओस बनकर निकल आई। वायु अधिकतर ठण्डी होनेके कारण आर्द्रताको नहीं समा सकी और उसको बरतनपर जल बिन्दु बनकर गिरना पड़ा। बस, ठीक यही क्रिया जब विशाल रूपमें होती है तब वर्षा हो जाती है। शीत-प्रधान देशोंकी अपेक्षा भारत-जैसे उष्ण प्रधान देशोंमें इसीलिये वर्षा अधिकतर होती है, क्योंकि गरम वायु अधिकतर जलार्द्रता धारण कर सकती है।

जब किसी थलपर जलार्द्रताको लिये हुए वायुवेग आता है, वह थल (जैसा कि भारत) उस वायुकी अपेक्षा अधिकतर गरम होता है, तब वह उस वायुको और भी गरम बना देता है और इसलिये वह अधिकतर नमीको अपनेमें समा लेती है। थल सम्पूर्णत तो उष्ण होता है परन्तु उसके पर्वतोंके उन्नत शिखर ऊंचाईके कारण शीतल होते हैं। इसलिये जब मानसून वायुवेग उन पर्वत-शिखरोंको पार करनेके लिये चढ़ता जाता है तब ठण्डा हो जाता है और उसमेंका वाष्प जम जानेके कारण वर्षाके रूपमें गिरने लगता है। बस, यही क्रिया भारतमें होती

है, जिससे वर्षा सघटित होती है। हिमालय पर्वत और ब्रह्मदेशके पर्वतसे बङ्गालकी खाडीसे आया हुआ मानसून वायु वेग टकराता है इसीलिये आसाम, बङ्गाल और ब्रह्मके कई भागोंमें बहुत वृष्टि होती है। आसाममे चेरापूंजी स्थानमें ४८० इंच वर्षा होती है। इसके समान भारतमें कहीं भी वृष्टि नहीं होती।

दूसरा मानसून ग्रीष्म-ऋतुमें अरब समुद्रसे उठता है। यह पश्चिमी घाटोंसे समकोण बनाकर टकराता है और फिर उसको इनपर हठात् चढना पडता है। यह जून, जुलाई, अगस्त और सितम्बरमें आता है, इसलिये उन घाटों तथा सन्निकटके प्रान्तोंमें १०० इंच वर्षा हो जाती है। इस मानसूनके समयमें पश्चिमकी ओरके समुद्रमें बड़ा प्रचण्ड तूफान रहता है, परन्तु इस मानसूनकी अधिकतर वृष्टि वहींपर समाप्त हो जाती है। रही-सही दक्षिण पठारके प्रान्तमे भी हो जाती है। सतपुरा और विन्ध्याचल पर्वतोंके कारण आगे मध्यभारतमें भी इसी मानसूनसे वर्षा हो जाती है, परन्तु और आगे काम्बे और कराचीके मध्यस्थलमे पर्वत नहीं हैं बल्कि एक चपटा और उष्ण क्षेत्र है जो हिमालयकी तराईतक पहुचा हुआ है। इसलिये अरबके समुद्रका मानसून इस चपटे क्षेत्रपर होकर बहता हुआ (पर्वत न होनेके कारण वह रुकता नहीं) बिना वर्षा किये हुए हिमाचलकी ढालतक जा पहुचता है और वहा वर्षा करने लगता है। यही कारण है कि सिन्ध और राजपूतानाके मन्दभाग्यवाले प्रदेश कभी-कभी तो योंके योंही और कभी कभी अल्प वर्षासे सन्तुष्ट

रहते हैं। परन्तु इस प्रदेशमें जहां थोड़े-बहुत पर्वत हैं जैसे अरावलि इत्यादि, वहां अच्छी वृष्टि हो जाती है। आबूमें ६० इंचकी औसत है। बलूचिस्तान बहुत शुष्क रहता है, क्योंकि सुलेमान पर्वतके पश्चिमका प्रदेश मानसून वायु वेगके मार्गसे बाहर होनेके कारण लगभग वर्षा-शून्य है।

एक मानसून और भी उठता है जिसको जाड़ेका या उत्तर-पूर्वका मानसून कहते हैं। पहला मानसून जूनसे सितम्बर-तक चलता है। सितम्बरके अन्ततक उत्तर भारत और ब्रह्मामें वायुका दबाव उठ पड़ता है। उसका परिणाम यह होता है कि जलार्द्रताको लिये हुए वायु-वेगकी दक्षिण-पश्चिमकी धारा जो अबतक बङ्गालकी खाड़ीमें चलती रहती है, वायुके अधिक दबाववाले देशोंमें (बङ्गाल और ब्रह्मामें) नहीं घुस सकती, इसलिये वह कम दबावके प्रदेशका चक्कर काटकर भारतके दक्षिणी खण्डपर टूट पड़ती है। इस खण्डपर यह उत्तर-पूर्वकी दिशासे आती है और इसीलिये उत्तर पूर्व मानसूनके नामसे प्रख्यात है। वास्तवमें यह वायुवेगधारा बङ्गालकी खाड़ीकी है इसलिये इसका "जाड़ेका मानसून" नाम अधिकतर उपयुक्त है। इस मानसूनसे मद्रास प्रान्तके उत्तर दक्षिणमें वर्षा होती है। यह भाग्यवान् प्रदेश है क्योंकि वर्षाकालमें यहां पर्याप्त वृष्टि नहीं होती।

मानसूनके कालमें बड़े प्रचण्ड तूफान भारतपर आ जाते हैं, जिनसे कई भागोंमें खण्ड वृष्टि हो जाती है। जुलाई, अगस्त और सितम्बरमें बङ्गालकी खाड़ीसे बहुधा ऐसे तूफान आ जाते

और पश्चिम या उत्तर पश्चिम दिशाको ग्रहण करके सतपुडा और अरावलि पर्वतश्रेणियोंतक पहुच जाते हैं। अक्टूबर, नवम्बर और दिसम्बरमें ये तूफान बङ्गालकी खाड़ीके दक्षिणमें उत्पन्न होते हैं और बहुत दूरतक भारतभूमिपर उद्दण्डता मचाते हैं। इनसे कभी-कभी दक्षिणमें वर्षाकी भरमार हो जाती है। मार्च, एप्रिल और मईमें बंगालप्रान्तपर छोटे-छोटे तूफान भी फूट पड़ते हैं।

उत्तर-भारतमें शीतकालमें खण्डवृष्टि हो जाती है। इसका कारण यह है कि हिमालयका प्रचुर हिम और ईरानी पठारकी उत्तर-पश्चिमी वायुके शीतवेग भारतके उत्तर पश्चिमके प्रान्तोंके वायुमण्डलको आर्द्र कर देते हैं और इसलिये हिमालयके निम्न-स्थित प्रदेश, पञ्जाबके क्षेत्रों और आगरा-अवधके संयुक्त-प्रान्तोंमें जाड़ेमें वर्षा हो जाती है। बेचारा राजपूताना वर्षाके विषयमें बड़ा भाग्यहीन है। न यहा अच्छे और उन्नत पर्वत हैं जो मानसूनको रोक लें और न यह समुद्रके तटके समीप है कि तूफानहीसे वर्षा हो जाय। इसको तो दोनों ओरके मानसूनोंसे रही सही वृष्टि जैसे भिक्षुकोंको अवशिष्ट पकान्न डाला जाय, उस प्रकार मिलती है। हे भगवन्! हमारे यहा भी कोई नवीन हिमालय उत्पन्न कर दे!!

पाठक! देखा आपने वायुमण्डल कैसा सुन्दर और अद्भुत है और वायुके वेग सन्तप्त और शीतल होकर क्या-क्या विचित्र क्रीडाएं करते हैं!

(ख)

ऋतुएं

"गच्छतीति जगत्"। जो चला करे वही जगत् है। पृथ्वी घूमती रहती है। इसके सब स्थावर और जङ्गम पदार्थ परिवर्तित होते रहते हैं। आज जिसका जन्म हुआ वह दस वर्षमें बालक, बीस वर्षमें युवक, चालीस वर्षमें अधेड़ और साठमें शीश हिलाता हुआ श्वेत बालोंका बुड्ढा हो जाता है। आज बीज बोया गया। तीन चार दिनमें अङ्कुर निकलेगा। बढ़ता बढ़ता शनै शनै वही बीज पौधा या वृक्ष हो जायगा। पत्तियोंके ढेर-के-ढेर लग जायगे। पुष्पोंके बाहुल्यसे उसका स्वरूप परिवर्त्तित हो जायगा। फलोंके बोझसे वह एक दिन लद जायगा। इसी प्रकार प्रकृति बदलती रहती है। और जो ऐसा होता है, वह बहुत अच्छा है। यदि यह परिवर्त्तन न होता तो विश्वमें विनोद ही नहीं रहता। काल भी कितने स्वरूप बदलता है। (अर्थात् हमें बदला हुआ प्रतीत होता है।) आज ठण्ड है, शीतल वायुवेग चल रहा है। कल सन्तप्त वायु झुलसाने लगेगी। परसों बादल मडला कर वृष्टि कर डालेंगे। यह ऋतुओंका परिवर्त्तन भी उसी परिवर्त्तनके सिद्धान्तानुसार होता रहता है। यदि ऐसा नहीं होता तो एक ही ऋतु आपत्ति स्वरूप हो जाती। एक ऋतुमें कुछ पुष्प खिले हुए हैं और दूसरीमें कुछ और ही पुष्प खिल उठते हैं। कभी गरमी पड़ती है, कभी वर्षा होती है, कभी शीतकी प्रचुरता है। इसी प्रकार ऋतुएं नाना प्रकारकी हैं। परन्तु ये यों अनाप-

अनाप संघटित नहीं होतीं। ये सब कारणसे संघटित होती हैं। कोई देश अत्यन्त उष्ण है, कोई न्यून उष्ण है, कोई खूब ठण्डा और कोई कम ठण्डा है। इन सबके कारण हैं। प्रकृतिका कोई भी कार्य्य विना कारण नहीं होता। ऋतुओंकी कैसी सुन्दरता और अद्भुतता है! यहांपर हम इसी विषयपर कुछ कहना चाहते हैं।

पहले इसका ध्यान रखना चाहिये कि ऋतु और दैनिक मौसममें बड़ा अन्तर है। किसी देशकी एक विशिष्ट ऋतु ठण्डी हो, परन्तु उसका एक विशिष्ट दिन बादलोंके घिर जानेसे कुछ उष्ण हो सकता है। भारतकी ग्रीष्म-ऋतुके ज्येष्ठ मासमें कुछ वर्षा होकर वायु चल जाय तो वह शीतल दिन हो जायगा, परन्तु ऋतु वही ग्रीष्मकी रहेगी। "आज गरमी है, कल हवा चली थी।" ऐसी बात हम किसी विशिष्ट दिनके तापक्रम या वायु-क्रमके लिये कह सकते हैं, पर उस ऋतुके लिये नहीं कह सकते। व्यक्तिगत मौसम (ताप और वायुक्रम) दिनदिन बदलते रहते हैं, परन्तु ऋतुएं नियमित समयसे बदलती हैं। पृथ्वीके नाना देशोंकी भी ऋतुएं नाना प्रकारकी हैं। अत इस विषयमें हमें तीन प्रकारके विचार करने हैं —

(१) एक विशिष्ट देशकी ऋतु, जैसे भारतकी ग्रीष्म ऋतु, इङ्गलैण्डकी शीत।

(२) एक देशकी सामयिक ऋतुएं, जैसे भारतकी ग्रीष्म, वर्षा आदि ऋतुएं।

(३) किसी देशके किसी भागका किसी व्यक्तिगत दिनका तापक्रम या वायु-क्रम।

तीसरे प्रकारका परिवर्त्तन तो स्थानीय कारणोंसे होता है। जैसे फाल्गुणमें कड़ी धूप पड़ने लग गई, गरमी चढ़ गई, पर कुछ बादल बनकर जिस स्थानपर बरस गये,वहां कुछ शीतलता आ गई। आजका दिन मानों कलके दिनकी अपेक्षा ठण्डा हो गया, फिर दो दिनके पश्चात् गरमी बढ़ गई। ऐसे परिवर्त्तन तो स्थानीय कारणोंसे होते हैं और व्यक्तिगत हैं।

परन्तु देशोंकी विशिष्ट ऋतुओंका विषय गम्भीर है। और संसारकी नियमित ऋतुओंका विषय और भी गम्भीर है।

(क) ऋतुओंका पहला कारण तो यह है कि पृथ्वी अपनी धुरीपर घूमकर रातदिन बनाती और सूर्य्यके चारों ओर भी घूमती है। पृथ्वीकी धुरी अपनी कक्षाके धरातल (Plain of the orbit) पर झुकी हुई है और इसका उत्तर-ध्रुव वर्षभर ध्रुव-तारेकी सीधमें रहता है। इसका परिणाम यह है कि एक ऋतुमें यह सूर्यकी ओर झुकी रहती और दूसरी ऋतुमें उससे हटी रहती है। जब उत्तर-ध्रुव सूर्यकी ओर झुका रहता है तब उत्तर गोलार्द्धमें गरमी और दक्षिण गोलार्द्धमें जाड़ा रहता है। उत्तर गोलार्द्धमें सूर्यकी किरणें उत्तर ध्रुवपर तो पड़ती ही हैं, परन्तु वे कुछ आगे भी निकल जाती हैं और ध्रुवके सन्निकट कुछ स्थानतक इस ऋतुमें रात नहीं होती। दक्षिण गोलार्द्धमें इससे उल्टी क्रिया होती है। २१ जूनको धुरी सूर्यकी ओर झुक-कर सबसे बड़ा कोण बनाती है। इस समय सूर्य कर्कायणवृत्त (Tropic of Cancer) पर चमकता है और उत्तर गोलार्द्धमें

अनाप संघटित नहीं होतीं। ये सब कारणसे संघटित होती हैं। कोई देश अत्यन्त उष्ण है, कोई न्यून उष्ण है, कोई खूब ठण्डा और कोई कम ठण्डा है। इन सबके कारण हैं। प्रकृतिका कोई भी कार्य्य विना कारण नहीं होता। ऋतुओंकी कैसी सुन्दरता और अद्भुतता है! यहांपर हम इसी विषयपर कुछ कहना चाहते हैं।

पहले इसका ध्यान रखना चाहिये कि ऋतु और दैनिक मौसममें बड़ा अन्तर है। किसी देशकी एक विशिष्ट ऋतु ठण्डी हो, परन्तु उसका एक विशिष्ट दिन बादलोंके घिर जानेसे कुछ उष्ण हो सकता है। भारतकी ग्रीष्म-ऋतुके ज्येष्ठ मासमें कुछ वर्षा होकर वायु चल जाय तो वह शीतल दिन हो जायगा, परन्तु ऋतु वही ग्रीष्मकी रहेगी। "आज गरमी है, कल हवा चली थी।" ऐसी बात हम किसी विशिष्ट दिनके तापक्रम या वायु-क्रमके लिये कह सकते हैं, पर उस ऋतुके लिये नहीं कह सकते। व्यक्तिगत मौसम (ताप और वायुक्रम) दिनदिन बदलते रहते हैं, परन्तु ऋतुएं नियमित समयसे बदलती हैं। पृथ्वीके नाना देशोंकी भी ऋतुएं नाना प्रकारकी हैं। अत इस विषयमें हमें तीन प्रकारके विचार करने हैं —

(१) एक विशिष्ट देशकी ऋतु, जैसे भारतकी ग्रीष्म ऋतु, इङ्गलैण्डकी शीत।

(२) एक देशकी सामयिक ऋतुएं, जैसे भारतकी ग्रीष्म, वर्षा आदि ऋतुएं।

(३) किसी देशके किसी भागका किसी व्यक्तिगत दिनका तापक्रम या वायु-क्रम।

तीसरे प्रकारका परिवर्तन तो स्थानीय कारणोंसे होता है। जैसे फाल्गुनमें कडी धूप पडने लग गई, गरमी बढ गई, पर कुछ बादल घनकर जिस स्थानपर बरस गये, वहां कुछ शीतलता आ गई। आजका दिन मानों कलके दिनकी अपेक्षा ठण्डा हो गया, फिर दो दिनके पश्चात् गरमी बढ गई। ऐसे परिवर्तन तो स्थानीय कारणोंसे होते हैं और व्यक्तिगत हैं।

परन्तु देशोंकी विशिष्ट ऋतुओंका विषय गम्भीर है। और संसारकी नियमित ऋतुओंका विषय और भी गम्भीर है।

(क) ऋतुओंका पहला कारण तो यह है कि पृथ्वी अपनी धुरीपर घूमकर रातदिन बनाती और सूर्य्यके चारों ओर भी घूमती है। पृथ्वीकी धुरी अपनी कक्षाके धरातल (Plain of the orbit) पर झुकी हुई है और इसका उत्तर-ध्रुव वर्षभर ध्रुव-तारेकी सीधमें रहता है। इसका परिणाम यह है कि एक ऋतुमें यह सूर्यकी ओर झुकी रहती और दूसरी ऋतुमें उससे हटी रहती है। जब उत्तर-ध्रुव सूर्यकी ओर झुका रहता है तब उत्तर गोलार्द्धमें गरमी और दक्षिण गोलार्द्धमें जाडा रहता है। उत्तर गोलार्द्धमें सूर्यकी किरणें उत्तर ध्रुवपर तो पडती ही हैं, परन्तु वे कुछ आगे भी निकल जाती हैं और ध्रुवके सन्निकट कुछ स्थानतक इस ऋतुमें रात नहीं होती। दक्षिण गोलार्द्धमें इससे उल्टी क्रिया होती है। २१ जूनको धुरी सूर्यकी ओर झुककर सबसे बडा कोण बनाती है। इस समय सूर्य कर्कायणवृत्त (Tropic of Cancer) पर चमकता है और उत्तर गोलार्द्धमें

शनाए संघटित नहीं होतीं। ये सब कारणसे संघटित होती हैं। कोई देश अत्यन्त उष्ण है, कोई न्यून उष्ण है, कोई खूब ठण्डा और कोई कम ठण्डा है। इन सबके कारण हैं। प्रकृतिका कोई भी कार्य्य बिना कारण नहीं होता। ऋतुओंकी कैसी सुन्दरता और अद्भुतता है! यहापर हम इसी विषयपर कुछ कहना चाहते हैं।

पहले इसका ध्यान रखना चाहिये कि ऋतु और दैनिक मौसममें बड़ा अन्तर है। किसी देशकी एक विशिष्ट ऋतु ठण्डी हो, परन्तु उसका एक विशिष्ट दिन बादलोंके घिर जानेसे कुछ उष्ण हो सकता है। भारतकी ग्रीष्म-ऋतुके ज्येष्ठ मासमें कुछ वर्षा होकर वायु चल जाय तो वह शीतल दिन हो जायगा, परन्तु ऋतु वही ग्रीष्मकी रहेगी। "आज गरमी है, कल हवा चली थी।" ऐसी बात हम किसी विशिष्ट दिनके तापक्रम या वायु-क्रमके लिये कह सकते हैं, पर उस ऋतुके लिये नहीं कह सकते। व्यक्तिगत मौसम (ताप और वायुक्रम) दिनदिन बदलते रहते हैं, परन्तु ऋतुएं नियमित समयसे बदलती हैं। पृथ्वीके नाना देशोंकी भी ऋतुएं नाना प्रकारकी हैं। अतः इस विषयमें हमें तीन प्रकारके विचार करने हैं —

(१) एक विशिष्ट देशकी ऋतु, जैसे भारतकी ग्रीष्म ऋतु, इङ्गलैण्डकी शीत।

(२) एक देशकी सामयिक ऋतुएं, जैसे भारतकी ग्रीष्म, वर्षा आदि ऋतुएं।

(३) किसी देशके किसी भागका किसी व्यक्तिगत दिनका तापक्रम या वायु क्रम।

हिमालयश्रेणी भारतकी ऋतुके लिये एक और भी बढ़िया सेवा करती है, अर्थात् बङ्गालकी खाडीसे उठे हुए दक्षिणी वायु वेगोंको भी यह रोक देती और उनके जलवाष्पको पकड़कर भारतहीमें वर्षा करा देती है, उसको बाहर तिब्बत चीन इत्यादिमें नहीं जाने देती। निस्सन्देह फरवरी, मार्च और अप्रेलमें गङ्गाके पश्चिमी क्षेत्रोंके आस-पास बिलोचिस्तान और अफगानिस्तानके निम्नस्थित पठारोंसे आनेवाले उत्तर-पश्चिम वायुवेग ठण्ड और खुश्की उत्पन्न कर देते हैं। राजपूताना भी इनका आखेट बन जाता है (विशेषत फाल्गुनके मासमें)। जब ये वायुवेग समाप्त होते हैं तो वर्षा लानेवाली दक्षिण-पूर्वकी वायु चलने लग जाती है।

(५) थलकी बनावट—किसी देश या उसके किसी खण्डकी ऋतु उसकी भूमिकी बनावटपर भी बहुत कुछ अवलम्बित रहती है, क्योंकि मिट्टी गरम और ठण्डी होनेमें जलसे विपरीत है, इसलिये जहाकी मिट्टी नम होती है वहा तरी रहती है और जहा शुष्क रेत होती है वहा शुष्कता होती है। इसी कारण सिन्धु नदीके नीचेकी घाटीके भागोंमें सूर्यके तापसे वहाका जङ्गली बालू खूब गरम हो जाता है, परन्तु रात्रिके समय वह ठण्डा भी खूब हो जाता है। गरमीमें यहासे गरम वायुवेग पूर्वकी ओर चलते और धूलिकी आँधिया चलाते हैं। पञ्जाबके कुछ प्रान्तों, राजपूताना और आगराके आसपासतक बैशाख ज्येष्ठमें काली पीली रेतीली आधिया बहुत चलती हैं। जहा पथरीली या काली-कठोर मिट्टी होती है वहा ये रेतीले वायुवेग नहीं उठते।

शीघ्र गरम नहीं होने देता। यही कारण है कि मध्यस्थित नागपुर, आगरा, जयपुर, जोधपुर इत्यादि गरमीमें कलकत्ता, मद्रास इत्यादि समुद्रतटस्थित स्थानोंकी अपेक्षा अधिकतर गरम होते और शीतकालमें अधिकतर ठण्डे होते हैं। मईके महीनेमें बङ्गाल अधिक उष्ण नहीं होता और शीतमें अधिक ठण्डा नहीं होता।

(४) पर्वतश्रेणियोंकी दिशा—एक देशकी ऋतुपर उसपर चलनेवाले वायुवेगोंकी दिशाका भी बड़ा प्रभाव पड़ता है। उत्तर गोलार्द्धमे यदि वायुवेग उत्तरसे आते हैं तो नियमत: वे ठण्डे होंगे और दक्षिणसे आते हैं तो गरम होंगे। यदि वायुवेग थलकी ओरसे आते हैं तो वे निश्चय ही शुष्क होंगे और जलकी ओरसे आते हैं तो ठण्डे होंगे। भारतमें पवनवेग बड़ा कार्य्य करते हैं, जैसा कि पूर्वमें बताया जा चुका है। यह प्रायद्वीप (Paninsula) है, समुद्रमें बहुत दूरतक घुसा हुआ है, इसलिये इसपर दक्षिणसे आनेवाले वायुवेग ठण्डे और जलार्द्र होते हैं, परन्तु पर्वतश्रेणियां इन वायुवेगोंमें बड़ी बाधा डालती हैं, या तो वायुवेगोंको वे घुमाव दे देती, या बिलकुल रोक देती या जलार्द्र बादलोंके वाष्पको पकड़ लेती हैं। भारतमें उत्तरकी ओरसे बहुत कम वायुवेग आते हैं, क्योंकि बहुधा उन्नतस्थल [तिब्बतके पठार] से निम्नस्थलको वायुवेग नहीं होते और फिर हिमालयश्रेणी उनमें रुकावट डालनेको है ही। इसी कारण जो तिब्बतमें ठण्डी और सूखी वायु चलती है उससे भारत सुरक्षित रहता है।

हिमालयश्रेणी भारतकी ऋतुके लिये एक और भी बढ़िया सेवा करती है, अर्थात् बङ्गालकी खाडीसे उठे हुए दक्षिणी वायु वेगोंको भी यह रोक देती और उनके जलवाष्पको पकड़कर भारतहीमें वर्षा करा देती है,उसको बाहर तिब्बत चीन इत्यादिमें नहीं जाने देती। निस्सन्देह फरवरी, मार्च और अप्रैलमें गङ्गाके पश्चिमी क्षेत्रोंके आस-पास बिलोचिस्तान और अफगानिस्तानके निम्नस्थित पठारोंसे आनेवाले उत्तर-पश्चिम वायुवेग ठण्ड और खुश्की उत्पन्न कर देते हैं। राजपूताना भी इनका आखेट बन जाता है (विशेषत फाल्गुनके मासमें)। जब ये वायुवेग समाप्त होते हैं तो वर्षा लानेवाली दक्षिण-पूर्वकी वायु चलने लग जाती है।

(५) थलकी बनावट—किसी देश या उसके किसी खण्डकी ऋतु उसकी भूमिकी बनावटपर भी बहुत कुछ अवलम्बित रहती है, क्योंकि मिट्टी गरम और ठण्डी होनेमें जलसे विपरीत है, इसलिये जहाकी मिट्टी नम होती है वहा तरी रहती है और जहा शुष्क रेत होती है वहा शुष्कता होती है। इसी कारण सिन्धु नदीके नीचेकी घाटीके भागोंमें सूर्यके तापसे वहाका जङ्गली बालू खूब गरम हो जाता है, परन्तु रात्रिके समय वह ठण्डा भी खूब हो जाता है। गरमीमें यहासे गरम वायुवेग पूर्वकी ओर चलते और धूलिकी आँधिया चलाते हैं। पञ्जाबके कुछ प्रान्तों, राजपूताना और आगराके आसपासतक वैशाख ज्येष्ठमें काली पीली रेतीली आंधियां बहुत चलती हैं। जहा पथरीली या काली-कठोर मिट्टी होती है वहा ये रेतीले वायुवेग नहीं उठते।

जलपर एक रजत-मार्ग बना रक्खा था, और तारागण उस स्वच्छ वायुमण्डलमें कुछ ऐसी दमकसे शोभायमान हो रहे थे कि जिसको मैं कभी नहीं भूलूंगा।"

शताब्दियोंसे मनुष्योंने देदीप्यमान तारा-मण्डलकी वारम्बार और नाना प्रकारकी प्रशंसा की है। परन्तु न तो व्यक्तिगत मनुष्यकी चमत्कृत बुद्धिने और न कवियोंकी ललित कल्पनाने उस नभोमण्डलकी सत्यतर और विशालतर शोभाको पूर्णतया वर्णित किया है। इस वर्णनके हेतु हम ज्योतिषशास्त्रके अत्यन्त आभारी हैं। ज्योतिष-विज्ञानके ऋणको हम यथोचित नहीं चुका सकते। पुराकालमें जिन कृत्रिम यन्त्रोंसे पृथ्वी, सूर्य्य और तारागण-की गतियां इत्यादि बताई जाती थीं, यद्यपि वे बहुत भद्दे और अपूर्ण थे, परन्तु ज्योतिष-शास्त्रके गवेषणकी पवित्र नींव तो उन्होंने ही डाली थी। इस शास्त्रको पूर्ण बनानेमें पाश्चात्य देशोंके कोपरनीकस और न्यूटनने बड़ा प्रशंसनीय उद्योग किया था। भारतके पुराकालीन ज्योतिषियोंका काम भी कुछ कम श्लाघनीय नहीं है।

आकाशमें पहले हम बादल देखते हैं और उनके ऊपर सूर्य्य, चन्द्रमा तथा तारागणको देखते हैं। बादलोंके भी कितने विचित्र, रङ्ग विरङ्गे और सुन्दर आकार बन जाते हैं। मनुष्य अपनी कल्पनाशक्तिके द्वारा बादलोंमें पर्वत शिखरों और श्रेणियों, कन्दराओं और चट्टानों, महरावों और चक्रों, पशुओं और पक्षियोंके आकार देखते हैं। कभी एक बादलका नन्हासा खण्ड पक्षि-

सदृश दिखता है, कभी वह हाथीसा दिखाई देता है, इत्यादि। परन्तु ये सब वास्तविक आकार नहीं हैं, ये केवल आकस्मिक वाष्पाकार हैं और हमारी कल्पनाके खेल हैं। फिर बादल भाप हीके तो बने हुए हैं और वाष्प भूमिके जलका बना हुआ है, इसलिये बादलोंको हम पृथ्वीहीके खण्ड मानते हैं और उनको आकाशका अङ्ग नहीं मान सकते। उनको छोडकर हम आकाशके वास्तविक आकारों—सूर्य्य चन्द्रमा इत्यादि—की जांचकर उनके सौन्दर्य्य और अद्भुततासे अपने मनको प्रसन्न करेंगे।

चन्द्रमा

पहलेपहल हम चन्द्रमाको ही लेते हैं। सब नक्षत्रोंमें चन्द्रमा हमारी पृथ्वीके निकटतम है और इसी कारण यद्यपि वह इतना बडा नहीं है तब भी सूर्य्यके पश्चात् हमें यही विशाल दिखाई देता है। वास्तवमें शशि आकाशके दिखनेवाले नक्षत्रोंमें बहुत लघु-आकारका है जैसे पृथ्वी सूर्य्यकी परि क्रमा करती है और एक परिक्रमाका समय एक वर्ष बन जाता है, वैसे ही चन्द्रमा पृथ्वीकी परिक्रमा करता है। इसकी एक परिक्रमासे एक मास बनता है। हमारी पृथ्वी स्वयं अपनी धुरीपर लट्टूकी नाई घूमकर एक दिन बनाती है। जो भाग सूर्यकी ओर होता है वह दिन है, और जो उससे उन्मुख होता है, वह प्रकाशविहीनताके कारण रात है। परन्तु चन्द्रमा अपनी धुरीपर घूमनेमें एक मास लगाता है, इसलिये वह हमको थोडा बहुत दिखता रहता है। चन्द्रमामें निजका प्रकाश नहीं है। वह सूर्यके प्रकाशसे चमकता है। इसी

होते हैं। वे अब सर्वथा ठंढे पड़े हुए जान पड़ते हैं। चन्द्रलोकके किसी भी पर्वतमें परिवर्तन होनेका हमारे ज्योतिषियोंके पास पूरा प्रमाण नहीं है।

चन्द्रमा पृथ्वीसे बहुत लघु होनेके कारण पृथ्वीकी अपेक्षा शीघ्रतर ठण्ढा हो गया था और इसके पर्वत लाखों वर्ष पूर्वके अवश्य होंगे। हमारी पृथ्वीके पर्वतोंकी अपेक्षा—जैसा कि हम उनको अब पाते हैं—वहाके पर्वत बहुत पुराने हैं। तोभी चन्द्र लोकके नक्शेको देखकर उसकी ऊबड़-खाबड़ भूमि और दृश्यावलीको देखकर हम चकित हुए बिना नहीं रह सकते। वहांपर समतलता न होनेका कारण वहा जल और वायुका न होना है; क्योंकि जल और वायुका प्रभाव उन्नत दुर्गों, विशाल भवनों और गम्भीर मन्दिरोंपर जो पड़ता है वह तो साधारण बात है, बल्कि हमारे पर्वत भी तो इन दो महाशक्तियोंके रगड़पट्टीके प्रभावसे नही बचे हैं। जैसा कि पर्वतोंके वर्णनमें बताया जा चुका है, तूफान और प्रचण्ड वेग ही नहीं, किन्तु साधारण वर्षा झड़ी, हिमपात, साधारण वायुका संचालन इत्यादि भी पर्वत-उन्नतताको धीरे धीरे काटते-छाटते और रगड़ते-घिसते हैं। परन्तु चन्द्रलोकमें जल और वायु दोनों ही नहीं है। इसीलिये वहांके पर्वत अब भी वैसे ही अखण्ड खड़े हैं जैसे वे लाखों वर्ष पहले खड़े थे।

यद्यपि चन्द्रलोक और भूलोकके क्षीण और समाप्त ज्वालामुखी पर्वतोंमें तो हम फिर भी थोड़ी बहुत समानता पाते

है, परन्तु चन्द्रलोकके तलपर कुछ ऐसी भी विचित्र क्रियायें सङ्घटित होती हैं जिनके सदृश हमारी पृथ्वीपर कोई क्रिया नहीं होती। उदाहरणार्थ, चन्द्रलोकके टाईको (Tycho) नामक ज्वालामुखीसे–जो १७००० फीट उन्नत और ५० मील विस्तृत है–कुछ ऐसी किरणें फैलती हैं जो सैकडों बल्कि कहीं कहीं दो तीन हजार मीलतक क्षेत्रों और पर्वतोंपर पहुचती हैं। इन किरणोंका वास्तविक रूप और कारण ज्योतिषियोंकी समझमें अबतक नहीं आया है।

सूर्य्य

चन्द्रमाकी अपेक्षा सूर्य्य पृथ्वीसे ४०० गुना अधिकतर दूरस्थ है। यह अत्यन्त उष्ण और अत्यन्त प्रज्वलित गोला है। पृथ्वीसे यह ३००००० गुना भारी और १०००००० गुना बडा है। इसका व्यास ८६५००० मील है और यह अपनी धुरीपर २५ या २६ दिनमें घूमता है। यह पृथ्वीसे ६६५०००००० मील दूर है। इतना विशाल होनेपर भी यह एक साधारण ग्रह (नक्षत्र) है और सबसे बड़ा भी नहीं है। सूर्यतल भीषण तूफानोंका स्थान है। इससे भीषण और विशाल ज्वालायें, जो अधिकाशमें हाइड्रोजन गैसकी होती हैं,निकलती रहती हैं। ज्योतिषके आचार्य्य श्रीमान् यगने सूर्य्यकी एक ज्वालाको प्रथम बार देखते समय ४०००० मील उन्नत जाना है। यह ज्वाला यकायक प्रज्वलित हो गई। आध ही घटेमें यह ४०००० मील दूर और ऊंची निकल पडी। एक घटेतक यह फिर ऊंची से ऊंची उठती रही और

अन्तमें ३५०००० मीलकी उन्नतताको प्राप्त करके यह धीमी हो गई। तदनन्तर दो घटोंके पश्चात् यह सम्पूर्णतः मिट गई। यह निस्सन्देह एक असाधारण ज्वाला थी। परन्तु सूर्यसे १००१०० उन्नत ज्वालाये तो सदैव ही निकला करती हैं और विस्तृत होनेकी गति एक सेकेन्डमें १०० मीलकी होती है।

साधारणतः कहा जाता है कि सूर्य्यमें धब्बे हैं। मान लिया जाय कि एक खासा धुधला गोल ढेला या समूह उसके बाहरके चारों ओरके अधिकतर प्रज्वलित गैसोंमें होकर इधर-उधरके कुछ रन्ध्रोंद्वारा दीखता है। ऐसा दशामें उसका बीच बीचमें गैसोंके रन्ध्रों द्वारा धुन्धलापन दीखेगा। वे सब स्थान धब्बे-से ही प्रतीत होंगे। सूर्य्यलोकके चारों ओर भी अत्यन्त प्रज्वलित गैसोंकी ज्वालाओंके अन्तर स्थलों या रन्ध्रोंमें होकर उसके तल के जो भाग दिखाई देते हैं वे धुन्धले धब्बेसे प्रतीत होते हैं। यह विषय अभी सम्पूर्णत स्पष्ट नहीं हुआ है। उन धब्बोंका वास्तविक रूप अभी विवादास्पद विषय है।

जब सम्पूर्ण सूर्य्य-ग्रहण होता है तब सूर्य्यके चौतरफ एक हाला या प्रकाश-मण्डल दिखलाई दिया करता है। यह प्रकाश-मण्डल प्रज्वलित सूत्रों, रश्मियों और प्रकाशकी चादरोंका बना हुआ है, जो चारों ओर फैलते रहते हैं, परन्तु इसका भी अभी ठीक ठीक निर्णय नहीं हुआ है।

सूर्यके विषयमें एक विकट प्रश्न और है जिसका अभी पूर्णत निश्चय नहीं हुआ है। वह यह है कि जैसा कि भूगर्भशास्त्र

हमें बतलाता है सूर्यलोक लाखों वर्षोंसे—अगणित कालसे—एक समान परिमाणमें उष्णता और प्रकाश देता रहा है। यह क्रिया कैसे और क्योंकर होती रही है? जैसा कि अग्नि जलनेकी क्रियासे हमलोग परिचित हैं वैसी क्रिया तो वहां कदापि नहीं हुई होगी, क्योंकि यदि सूर्यकी गरमी अग्नि जलनेहीके कारण हुई होती तब तो वह गणितके हिसाबसे केवल ६००० वर्षोंहीमें प्रदीप्त होकर बुझ जाती। ऐसी भी कई लोगोंने सम्मतिया दी हैं कि जो तारे वर्षाकी नाईं खूब घने टूटटूटकर सूर्यपर पड़ते रहते हैं वे उसकी व्यतीत गरमीको पुन भर देते हैं। कदाचित् किसी सीमातक ऐसा होना सत्य भी हो, परन्तु मुख्य कारण यही है कि स्वय सूर्यका दबाव अथवा जमाव शनै शनै होता जाता है। गणितज्ञोंने गणना की है कि एक वर्षमें सूर्यमण्डलमें उससे जितनी अग्नि बाहर निकलती है उससे २२० फीटका दबाव उत्पन्न होता है। और जब सूर्यका आधुनिक व्यास ८६-०००० मील लगभग है तब इसके अन्तर्गत गरमीके भण्डारका भी क्या पार होगा? सूर्यहीसे हमे प्रकाश और उष्णता मिलती हैं। वह ग्रहमण्डलका प्रधान केन्द्र ही नहीं है, बल्कि हम मनुष्यों-के जीवनोंका स्वामी है। सूर्य ही समुद्रोंके जलको वाष्प बनाकर उसको आकाशसे वर्षाके रूपमे छोड़ता है, जिससे नदिया भरती और उद्भिज हरे रहते हैं। इसीसे वायुवेग सञ्चलित होते हैं जो हमारे वायुमण्डलको स्वच्छ बनाते और जहाजोंको समुद्रोंपर चलाते हैं, हमारी गाड़िया, रेलगाड़ियां और बहुतसे

इञ्जन-यन्त्र इत्यादि, जिनमें कोयला काममें आता है—सब सूर्य्य भगवान्हीसे चलाये जाते हैं, क्योंकि यह कोयला किसी कालमें सूर्यहीसे बना था और अबतक हमारे काममें आनेके लिये खानोंमें सुरक्षित पड़ा हुआ था। पशु, पक्षी, मनुष्य, कीड़े-मकोड़े सब प्राणी सूर्यकी गरमीसे जीते और चलते-फिरते हैं। पक्षियोंके गान, पुष्पोंके रङ्ग और फलोंका परिपक्वण सब भास्कर भगवान्की कृपासे सम्पादित होते हैं। प्रकृतिके सौन्दर्य्योंके लिये, अपने आहार और पानके निमित्त, अपने वस्त्रोंके वास्ते और अन्तमें अपने प्रकाश, जीवन और अस्तित्वके लिये भी हम सूर्यदेवहीके आभारी हैं।

यह एक गम्भीर और जटिल प्रश्न है कि सूर्य्य किस वस्तुका बना हुआ है? कोम्टे महोदयने कहा था कि सूर्यकी रचनाको जान लेना गणितका एक न हल हो सकनेवाला प्रश्न है। (अर्थात् मनुष्य उसको बनावटको नहीं जान सकता) सूर्यको जान लेना कोम्टे महोदयके कथनानुसार निस्सन्देह एक आशारहित कार्य्य था। परन्तु गत सौ-सवासौ वर्षों में इस असम्भव गवेषणको सम्भव करनेकी व्यवस्था हो चुकी है और सूर्यकी रचना जाननेका गवेषण आरम्भ हो गया है। उन्नीसवीं शताब्दीके आरम्भमें वो-लैस्टन नामक ज्योतिषीने प्रकट किया कि एक छेदित घनक्षेत्र (Prism) से जो कई रङ्गोंकी प्रज्वलित धार छूटती है, जिसको स्पैक्ट्रम * कहते हैं। उसके ऊपर आर-पार धुन्धली रेखाय होती

* स्पैक्ट्रम उस रूपको कहते हैं जो नेत्र बन्द करने या फेरनेके पीछे भी धुन्धलासा दीख पड़ता है।

हैं। इन्हीं धुन्धली रेखाओंका आविष्कार फ्राउनहोफर महाशयने किया है और इसलिये वे फ्राउनहोफर रेखायें कहलाती हैं।

प्रकाश विषयका दूसरा आविष्कार व्हीटस्टोन महाशयने किया है। उन्होंने प्रमाणित कर दिखलाया कि प्रदीप्त वाष्पोंसे स्पैकट्रम बनता है वह प्रज्वलित रेखाओंका बना हुआ है, जो प्रत्येक वस्तुके लिये भिन्न प्रकारका होता है। और इसलिये वह पृथक्करण क्रियाके काममें लाया जा सकता है। इस क्रियासे कई नवीन पदार्थ जाने गये हैं। ये प्रज्वलित रेखायें तुलना करनेपर स्पैकट्रमकी धुंधली रेखाओंके समान पाई गई हैं। किरशोफ और बनसन महाशयोंने इस प्रकारको ज्योतिष शास्त्रोंमें गवेषण करनेके लिये प्रथम बार काममें लिया था। उन्होंने अपने यन्त्रको इस प्रकार लगाया कि उसके अर्द्धभागपर तो सूर्यका प्रकाश पड़ता रहा और अवशिष्ट अर्द्धभागपर वह प्रदीप्त गैस पड़ता रहा, जिसका वे अनुसन्धान कर रहे थे। जब सोडियम धातुका वाष्प इस प्रकार जाचा गया तो उन्होंने जाना कि सोडेकी ज्वालामें जो प्रदीप्त रेखा निकली, वह सूर्यके स्पैकट्रमकी एक रेखासे बिलकुल मिलती थी। इससे एक परिणाम स्पष्टत निकल आया कि सूर्यमें सोडियम धातु है। जिस क्षण यह विचार उन आविष्कारकोंके मस्तिष्कोंमें आया वह क्षण निस्सन्देह उनके जीवनमें बहुत महत्वपूर्ण हुआ होगा। यह आविष्कार और इसके परिणाम मानवबुद्धिके अत्यन्त प्रज्वलित विजय-स्थल हैं। एक प्रकारकी रेखाओंका पता नहीं चला कि वे किस पदार्थकी थीं,

इञ्जन-यन्त्र इत्यादि, जिनमें कोयला काममे आता है—सब सूर्य्य भगवान्हीसे चलाये जाते हैं, क्योंकि यह कोयला किसी कालमें सूर्यहीसे बना था और अबतक हमारे काममें आनेके लिये खानोंमें सुरक्षित पडा हुआ था। पशु, पक्षी, मनुष्य, कीडे मकोड़े सब प्राणी सूर्यकी गरमीसे जीते और चलते-फिरते हैं। पक्षियोंके गान, पुष्पोंके रङ्ग और फलोंका परिपक्वण सब भास्कर भगवान्की कृपासे सम्पादित होते हैं। प्रकृतिके सौन्दर्य्योंके लिये, अपने आहार और पानके निमित्त, अपने वस्त्रोंके वास्ते और अन्तमें अपने प्रकाश, जीवन और अस्तित्वके लिये भी हम सूर्यदेवहीके आभारी हैं।

यह एक गम्भीर और जटिल प्रश्न है कि सूर्य्य किस वस्तुका बना हुआ है? कोम्टे महोदयने कहा था कि सूर्यकी रचनाको जान लेना गणितका एक न हल हो सकनेवाला प्रश्न है। (अर्थात् मनुष्य उसको बनावटको नहीं जान सकता) सूर्यको जान लेना कोम्टे महोदयके कथनानुसार निस्सन्देह एक आशारहित कार्य्य था। परन्तु गत सौ-सवासौ वर्षों में इस असम्भव गवेषणको सम्भव करनेकी व्यवस्था हो चुकी है और सूर्यकी रचना जाननेका गवेषण आरम्भ हो गया है। उन्नीसवीं शताब्दीके आरम्भमें वो-लैस्टन नामक ज्योतिषीने प्रकट किया कि एक छेदित घनक्षेत्र (Prism) से जो कई रङ्गोंकी प्रज्वलित धार छूटती है, जिसको स्पैक्ट्रम * कहते हैं। उसके ऊपर आर-पार धुन्धली रेखाय होती

* स्पैक्ट्रम उस रूपको कहते हैं जो नेत्र बन्द करने या फेरनेके पीछे भी धुन्धलासा दीख पड़ता है।

हैं। इन्हीं धुन्धली रेखाओंका आविष्कार फ्राउनहोफर महाशयने किया है और इसलिये वे फ्राउनहोफर रेखायें कहलाती हैं।

प्रकाश विषयका दूसरा आविष्कार व्हीटस्टोन महाशयने किया है। उन्होंने प्रमाणित कर दिखलाया कि प्रदीप्त वाष्पोंसे स्पैकट्रम बनता है वह प्रज्वलित रेखाओंका बना हुआ है, जो प्रत्येक वस्तुके लिये भिन्न प्रकारका होता है। और इसलिये वह पृथक्करण क्रियाके काममें लाया जा सकता है। इस क्रियासे कई नवीन पदार्थ जाने गये हैं। ये प्रज्वलित रेखायें तुलना करनेपर स्पैकट्रमकी धु धली रेखाओंके समान पाई गई हैं। किरशोफ और बनसन महाशयोंने इस प्रकारको ज्योतिष शास्त्रोंमें गवेषण करनेके लिये प्रथम बार काममें लिया था। उन्होंने अपने यन्त्रको इस प्रकार लगाया कि उसके अर्द्धभागपर तो सूर्यका प्रकाश पड़ता रहा और अवशिष्ट अर्द्धभागपर वह प्रदीप्त गैस पड़ता रहा, जिसका वे अनुसन्धान कर रहे थे। जब सोडियम धातुका वाष्प इस प्रकार जांचा गया तो उन्होंने जाना कि सोडेकी ज्वालामें जो प्रदीप्त रेखा निकली, वह सूर्यके स्पैकट्रमकी एक रेखासे बिलकुल मिलती थी। इससे एक परिणाम स्पष्टत निकल आया कि सूर्यमें सोडियम धातु है। जिस क्षण यह विचार उन आविष्कारकोंके मस्तिष्कोंमें आया वह क्षण निस्सन्देह उनके जीवनमें बहुत महत्त्वपूर्ण हुआ होगा। यह आविष्कार और इसके परिणाम मानवबुद्धिके अत्यन्त प्रज्वलित विजय-स्थल हैं। एक प्रकारकी रेखाओंका पता नहीं चला कि वे किस पदार्थकी थीं,

और जब इसकी ज्योति पराकाष्ठाको पहुच जाती है उस समय यह अन्य नक्षत्रोंकी अपेक्षा ५० गुना अधिक चमकने लगता है। परन्तु सब नक्षत्रोंकी नाईं यह सूर्यके प्रतिबिम्बित प्रकाशहीसे चमकता है, इसलिये इसकी द्युतिका भी चन्द्रमाकी नाईं घटाव-बढ़ाव होता रहता है, यद्यपि उसके समस्त आकार खाली नेत्रसे (बिना दूर्बीनकी सहायतासे) नहीं देखे जा सकते। इ
द्वारा ही सूर्यकी दूरी और परिमाण नापे गये हैं।

पृथ्वी

पृथ्वीका वर्णन तो गत अध्यायोंमें बहुत
है। यहांपर केवल उसकी गतिका उल्लेख
पृथ्वी अपनी धुरीपर २४ घटोंमें एक बार
बन्धों (Tropics) के पास उसकी
इसलिये वहा रहनेवाला मनुष्य इस
१००० मील अर्थात् एक मिनटमें १६
जैसे कुम्हारके चाकपर बैठी हुई
चाक फिर रहा है, उसी प्रकार
चलता। खाली पृथ्वी
अपनी-अपनी धुरियोंपर
धुरीपर तो घूम ही
एक परिक्रमा अलग
५८०००००००
हम ६०००० मील प्रति घण्टा

रहे हैं। तोपका गोला भी तो इतना तेज नहीं चलता। पृथ्वी उससे भी लगभग १०० गुनी अधिकतर तेज चलती है। हममेंसे कितने कम लोग जानते और मालूम करते हैं कि हम आकाशमें होकर कितनी शीघ्रतासे चल रहे हैं।

मङ्गल

हमारे साधारण नेत्रोंसे मङ्गल एक लाल रङ्गका महत् ग्रह दिखलाई देता है। इसके दो उपग्रह हैं,जिनके नाम Phobos और Deimos हैं। यह ग्रह भी पृथ्वीसे लगभग दुगुना है और यद्यपि यह पृथ्वीसे बहुत दूर है, तथापि कभी कभी यह इसके ३५०००-००० मील निकटतक आ जाता है। इसके निकट आनेके कारण ज्योतिषियोंने इसकी स्थूल बनावटका कुछ अनुसन्धान कर लिया है। सम्भवत इसमें जल है और इसके दोनों ध्रुव श्वेत हैं, मानों वे हिमसे आच्छादित हैं। इसमें कुछ समानान्तर रेखाओंकी श्रेणिया हैं जिनके वास्तविक अस्तित्वका अभीतक ठीक पता नहीं मिल सका है।

कुछ अन्य छोटे ग्रह

सूर्यसे प्रत्येक ग्रहकी दूरी एक नियमके अनुसार है। यदि हम ०,३,६,१२, २४, ४८ और ९६ अङ्कोंको लें (जिनमें पहलेका दूसरा अङ्क दुगुना है, जैसे तीनका दुगुना छ और छ का दुगुना बारह इत्यादि) और इन प्रत्येकमें ४ का अङ्क जोड दें तो हमें ये अङ्क मिलते हैं —

और जब इसकी ज्योति पराकाष्ठाको पहुंच जाती है उस समय यह अन्य नक्षत्रोंकी अपेक्षा ५० गुना अधिक चमकने लगता है। परन्तु सब नक्षत्रोंकी नाईं यह सूर्यके प्रतिबिम्बित प्रकाशहीसे चमकता है, इसलिये इसकी द्युतिका भी चन्द्रमाकी नाईं घटाव-बढ़ाव होता रहता है, यद्यपि उसके समस्त आकार खाली नेत्रसे (बिना दूर्बीनकी सहायतासे) नहीं देखे जा सकते। शुक्र द्वारा ही सूर्यकी दूरी और परिमाण नापे गये हैं।

पृथ्वी

पृथ्वीका वर्णन तो गत अध्यायोंमें बहुत कुछ आही चुका है। यहापर केवल उसकी गतिका उल्लेख किया जाता है। पृथ्वी अपनी धुरीपर २४ घंटोंमें एक बार फिर जाती है। कटिबन्धों (Tropics) के पास उसकी परिधि २४००० मील है। इसलिये वहा रहनेवाला मनुष्य इस गणनानुसार एक घण्टेमें १००० मील अर्थात् एक मिनटमें १६ मील चलता है। परन्तु जैसे कुम्हारके चाकपर बैठी हुई चींटीको पता नहीं चलता कि चाक फिर रहा है, उसी प्रकार मनुष्यको भी पृथ्वीके घूमनेका पता नहीं चलता। खाली पृथ्वी ही नहीं, किन्तु सब ही ग्रह आकाशमें अपनी-अपनी धुरियोंपर हरदम घूम रहे हैं। पृथ्वी अपनी धुरीपर तो घूम ही रही है, साथ ही वह एक वर्षमें सूर्यकी एक परिक्रमा अलग करती है। सूर्यकी परिक्रमाका परिधिपथ ५८०००००००० मील है। मानों इस गणनासे हम ६०००० मील प्रति घण्टा या १००० मील प्रति मिनट चल

रहे हैं। तोपका गोला भी तो इतना तेज नहीं चलता। पृथ्वी उससे भी लगभग १०० गुनी अधिकतर तेज चलती है। हममेंसे कितने कम लोग जानते और मालूम करते हैं कि हम आकाशमें होकर कितनी शीघ्रतासे चल रहे हैं!

मङ्गल

हमारे साधारण नेत्रोंसे मङ्गल एक लाल रङ्गका महत् ग्रह दिखलाई देता है। इसके दो उपग्रह हैं,जिनके नाम Phobos और Deimos हैं। यह ग्रह भी पृथ्वीसे लगभग दुगुना है और यद्यपि यह पृथ्वीसे बहुत दूर है, तथापि कभी कभी यह इसके ३५०००-००० मील निकटतक आ जाता है। इसके निकट आनेके कारण ज्योतिषियोंने इसकी स्थूल बनावटका कुछ अनुसन्धान कर लिया है। सम्भवत इसमें जल है और इसके दोनों ध्रुव श्वेत हैं, मानों वे हिमसे आच्छादित हैं। इसमें कुछ समानान्तर रेखाओंकी श्रेणियां हैं जिनके वास्तविक अस्तित्वका अभीतक ठीक पता नहीं मिल सका है।

कुछ अन्य छोटे ग्रह

सूर्यसे प्रत्येक ग्रहकी दूरी एक नियमके अनुसार है। यदि हम ०,३,६,१२, २४, ४८ और ९६ अङ्कोंको लें (जिनमें पहलेका दूसरा अङ्क दुगुना है, जैसे तीनका दुगुना छ और छ का दुगुना बारह इत्यादि) और इन प्रत्येकमें ४ का अङ्क जोड दे तो हमें ये अङ्क मिलते हैं —

श्रेणियां तीन हैं। बिलकुल अन्दरवाली श्रेणी बहुत फीकी और सूक्ष्म है और बाहरवाली बीचमें एक अन्धेरी रेखा द्वारा दो श्रेणियोंमें विभक्त है। ये चक्राकार यथार्थमें इस ग्रहकी परिक्रमा करनेवाले नन्हें आकारों (तारागणों) के विशाल झुण्ड हैं। इन्हींके कारण शनिश्चरकी शोभा ग्रह-मण्डलमें अद्वितीय है।

अरुण

बहुत कालतक शनिश्चर सूर्यमण्डलका सबसे बाहरवाला और अन्तिम ग्रह माना गया था। परन्तु सन् १७८१ के १३ मार्चको जब विलियम हरश्चल नामक ज्योतिषी मिथुन तारागणको देख रहे थे तब उन्हें अकस्मात् एक ग्रह दिखलाई दिया जो एक अलग चक्राकार जान पड़ा और जिसके सामने स्थिर नक्षत्र दूरबीन द्वारा देखनेपर भी प्रकाशकी केवल नोकें प्रतीत होते थे। पहले तो उन्होंने यही विचारा कि वह नक्षत्र कदाचित् कोई दुमदार या चोटीदार तारा होगा। परन्तु जब उन्होंने उसको अधिक सावधानीसे जांचा तो उनको पता चला कि वह एक नवीन ग्रह था। यद्यपि विलियम हरश्चलको यह प्रथम बार दृष्टिगत हुआ,परन्तु यह कइयोंको सूक्ष्मत: पूर्वमें भी दिखाई पड़ा था। भारतके ज्योतिषियोंने इसको बहुत पहले जाच लिया था। इसका व्यास लगभग ३१७०० मील है। इसके ४ उपग्रह भी जाने जा चुके हैं। इनकी गतिमें एक विशेषता पाई गई है। और ग्रह और उनके उपग्रह लगभग एक ही धरातलमें घूमते हैं, परन्तु अरुणके उपग्रह एक ऐसे

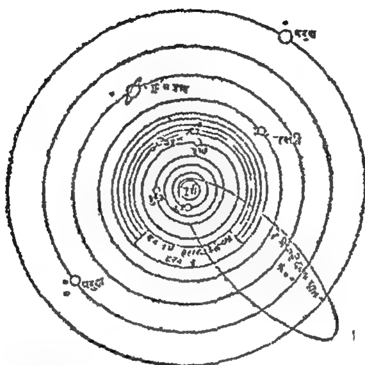
धरातलमें घूमते हैं जो आपसमें समकोण बनाता है। इसका कारण वहाका कुछ स्थानीय प्रभाव होगा।

वरुण

अरुणके अनुसन्धान और उसके विषयके अध्ययनसे जाना गया कि वह एक ऐसे पथपर चलता है जिसपर सूर्य और अन्य ज्ञात ग्रहोंका प्रभाव नहीं पडता। इससे सन्देह होता था कि यह अनोखी मार्ग-गति किसी अन्य अज्ञात ग्रहनक्षत्रके अस्तित्वके कारण हो। ऐसे विशेष मार्गपर चलनेवाले नक्षत्रके स्थानको ढूढ लेना निस्सन्देह एक कठिन और गहन कार्य्य प्रतीत होता था। परन्तु इगलैण्डके एडम्स और फ्रासके ली वरीयर ज्योतिषियोंने लगभग एक ही समयमें उसको खोज निकाला। वह वरुण नक्षत्र है। जहातक पता चला है वह ३५००० मील व्यासका है। उसकी सूर्यसे औसत दूरी २८८०-०००००० मीलकी है।

इन ग्रहोंका सूर्यके साथ जो सम्बन्ध है उसको स्पष्टतर करनेके लिये यहा एक नक्शा दिया जाता है। इसके ध्यान-पूर्वक अवलोकनसे यह विषय और भी सुगम हो जायगा।

ज्योतिषमें यह एक बडा विशाल गम्भीर और विचित्र प्रश्न उठता है कि ये ग्रह आखिर बने हुये किस वस्तुके हैं और उनकी रचना हुई तो क्योंकर हुई। कान्ट, हरशल, और लैपलेस इत्यादि पाश्चात्य ज्योतिष धुरन्धरोंने एक सिद्धान्तकी कल्पना की, जिसको वहाके ज्तोतिष शास्त्रमें "नेब्यूलर हाईपोथेसिस"



सूर्यमण्डल

कहते हैं। यह कल्पना इस प्रकार की गई है। जो आकाशका स्थान इस समय सूर्य-मण्डलके ग्रहोंने घेर रक्खा है वह युगानु-युगपूर्व अत्यन्त उष्णता और पतलेपनका अण्डाकार था। वह उष्णता शनै शनै आकाशमें फैलती गई, उसका गैस ठण्डा पड़कर एक केन्द्रके पास सिकुड़ता गया—जो अन्तमें सूर्य बन गया। केन्द्रिक शक्तिकी क्रियाके कारण वह सिकुड़ा हुआ गैस दोनों ओरके ध्रुवोंके पास चिपटा हो गया और उसका आकार गोल सा हो गया। कुछ कालतक केन्द्रिक शक्तिकी क्रिया और सिकुड़नेकी क्रिया दोनों बराबर होनेके कारण व्यवस्था

वैसी-की-वैसी ही रही। परन्तु अन्तमें ऐसा समय आ गया कि केन्द्रिक शक्ति-क्रियाकी विजय हुई और उस गोलेके चारों ओरका एक घेरा या वृत्त उससे छुटकर बाहरी आकाशमें निकल गया। इसी प्रकार अगणित कालमें एकके पश्चात् दूसरा घेरा निकलता गया और वे घेरे शनै शनै ग्रहो और उपग्रहोंमें परिणत होते गये। इस क्रियाका जीता-जागता उदाहरण शनिश्चर ग्रहके चारों ओर जो विचित्र और अति सुन्दर चक्र या घेरे लगे हुए हैं—वे अब भी देते हैं। शनिके ये घेरे भी कालान्तरमें उससे छुटकर पृथक् उपग्रह बन जाते दिखते हैं। इस कल्पनाके अनुसार हमारी पृथ्वी भी कभी-न कभी सूर्यहीसे छुटकर बनी थी और कभी-न-कभी पुन सूर्यहीमें मिल जायगी। खगोलाचार्य प्लेटूने इस क्रियाका एक बडा उपयोगी नमूना बताया है। पानी और स्पिरिट (मद्यसार) के मिश्रणमें यदि तेलकी एक गोल बून्द घुमाई जाय (पानी, स्पिरिट और तेलको समान घनता होनी चाहिये) तो वह शनै शनै उस मिश्रणमें लय हो जायगी।

उपर्युक्त प्रचलित परन्तु सरल कल्पनात्मक सिद्धान्त हमे ग्रहों और उपग्रहोंके स्थान, विस्तार, प्रगति इत्यादिके विषयमें और कई बातें बताता है। उदाहरणार्थ, इसी कल्पनात्मक सिद्धान्तद्वारा हमें ज्ञात हुआ है कि ग्रह एक नियमित रेखा और दिशामें चला करते हैं। वे सूर्यकी प्रदक्षिणा करते तथा स्वयं अपनी धुरियोंपर घूमते रहते हैं। इन बातोंकी इन सभी ग्रहोंमें जो समानताएं हैं वे आकस्मिक और अनियमित प्रकारकी

नहीं हो सकतीं। वे सिद्धान्त और नियममें बधी हुई हैं। दूसरी बात उदाहरणार्थ यह है कि प्रत्येक ग्रहकी गरमी उसीके विस्तारके अनुसार होती है। एक अल्प गोलाकार अवश्य ही किसी बड़े गोलाकारकी अपेक्षा शीघ्रतर ठण्डा होगा। चन्द्रमा शीतल और कठोर है। पृथ्वी ऊपरी तलपर ठोस है, परन्तु गर्भमें बहुत उष्ण है। वृहस्पति और शनि जो बहुत बड़े हैं, अपनी आरम्भिक उष्णताको अब भी रक्खे हुए हैं और इसलिये पृथ्वी-के समान ठोस नहीं हैं। ज्योतिषी लोग तो सूर्य्यके लिये भी कहते हैं कि वह अब भी सिकुड़ रहा है और इसी कारण उसका तापक्रम ज्यों-का त्यों बना हुआ है।

यद्यपि "नेब्यूलर कल्पनात्मक सिद्धान्त" अभीतक पूर्णतया प्रमाणित नहीं हो सका है और इसमें कठिनाइया भी बहुत हैं, तथापि इसकी सम्भवता तो अवश्यमेव बहुत बढ गई है और प्रधान बातोंमें तो खगोल शास्त्रियोंने इसको खूब मान लिया है।

यह प्रश्न भी बहुत उठा करता है कि इन ग्रहोंमें भी क्या हम जैसे मनुष्य या अन्य प्राणी निवास कर रहे हैं? इस विषयमें कई कल्पनाए हो चुकी हैं, कई विनोदपूर्ण लेख निकल चुके हैं, परन्तु इसका पूरा पता अभीतक नहीं चला है। इस प्रश्नका अभीतक उत्तर देना असम्भव है। भगवान् जाने, आकाशके अगणित ताराओंमें किसी-न-किसीमें जीवजन्तु बसते होंगे, परन्तु कम-से-कम कई ग्रहोंके लिये तो हम निश्चयात्मक रूपसे कह सकते हैं कि उनकी रचना ही ऐसी है कि वहा प्राणी

जीवित नहीं रह सकते। सूर्य्य तो इतना उष्ण और प्रज्वलित है कि जिसमें कोई प्राणी एक क्षण भी जीवित नहीं रह सकता। बुध भी बहुत गरम है। वहां भी जन्तु नहीं रह सकते। कई ग्रह जैसे अरुण-वरुण इत्यादि अभीतक वाष्पाकार ही बने हुए हैं। उनमें प्राणी टिक-ही कैसे सकते हैं। चन्द्र-लोकमें न वायु और न जल है। निस्सन्देह मङ्गल हमारी पृथ्वी-की रचनासे मिलता-जुलता है। ईश्वर जाने वहां प्राणी भी रहते होंगे। इसी मङ्गलग्रहतक यात्रा करने और वहांके निवा-सियोंसे बातचीत करनेकी कई विचित्र कल्पनाएं लोग कर चुके हैं, परन्तु हमें अभीतक उनपर विश्वास नहीं हो सकता।

धूमकेतु अर्थात् पुच्छलतारे

सूर्य, चन्द्र अथवा तारागणकी अद्भुतता और सौन्दर्य्यसे हमारी अपेक्षा हमारे पूर्वजोंके हृदयोंमें अधिकतर भक्तिभाव और साथ साथ प्रचुरतर भय रहता था। इसीलिये उनकी आराधना की जाने लगी और फलित ज्योतिषकी परिपाटी इसी कारण संसार-के सभी भागोंमें थोड़े-बहुत अंशमें शनै शनै फैल गयी। अस्तु, फिर भी हम इन ग्रहों और नक्षत्रोंको सदैव देखते हैं, इसलिये उनसे सुपरिचित हो गये हैं और फलित ज्योतिषद्वारा तो चाहे उनके प्रभावसे हमलोगोंमेंसे वे जो उनमें विश्वास रखते हैं, भले ही भयभीत हों, परन्तु साधारणतः हम सबको उनसे भय नहीं लगता। परन्तु धूमकेतु तारे आकाशमें सदैव नहीं दिखते और उनकी रचना और विस्तार भी असामान्य और विचित्र होते

नहीं हो सकतीं। वे सिद्धान्त और नियममें बधी हुई हैं। दूसरी बात उदाहरणार्थ यह है कि प्रत्येक ग्रहकी गरमी उसीके विस्तारके अनुसार होती है। एक अल्प गोलाकार अवश्य ही किसी बड़े गोलाकारकी अपेक्षा शीघ्रतर ठण्डा होगा। चन्द्रमा शीतल और कठोर है। पृथ्वी ऊपरी तलपर ठोस है, परन्तु गर्भमें बहुत उष्ण है। बृहस्पति और शनि जो बहुत बड़े हैं, अपनी आरम्भिक उष्णताको अब भी रक्खे हुए हैं और इसलिये पृथ्वी के समान ठोस नहीं हैं। ज्योतिषी लोग तो सूर्य्यके लिये भी कहते हैं कि वह अब भी सिकुड़ रहा है और इसी कारण उसका तापक्रम ज्यों-का त्यों बना हुआ है।

यद्यपि "नेब्यूलर कल्पनात्मक सिद्धान्त" अभीतक पूर्णतया प्रमाणित नहीं हो सका है और इसमें कठिनाइयां भी बहुत हैं, तथापि इसकी सम्भवता तो अवश्यमेव बहुत बढ़ गई है और प्रधान बातोंमें तो खगोल शास्त्रियोंने इसको खूब मान लिया है।

यह प्रश्न भी बहुत उठा करता है कि इन ग्रहोंमें भी क्या हम जैसे मनुष्य या अन्य प्राणी निवास कर रहे हैं? इस विषयमें कई कल्पनाएं हो चुकी हैं, कई विनोदपूर्ण लेख निकल चुके हैं, परन्तु इसका पूरा पता अभीतक नहीं चला है। इस प्रश्नका अभीतक उत्तर देना असम्भव है। भगवान् जाने, आकाशके अगणित ताराओंमें किसी-न-किसीमें जीवजन्तु बसते होंगे, परन्तु कम-से-कम कई ग्रहोंके लिये तो हम निश्चयात्मक रूपसे कह सकते हैं कि उनकी रचना ही ऐसी है कि वहां प्राणी

जीवित नहीं रह सकते। सूर्य्य तो इतना उष्ण और प्रज्वलित है कि जिसमें कोई प्राणी एक क्षण भी जीवित नहीं रह सकता। बुध भी बहुत गरम है। वहा भी जन्तु नहीं रह सकते। कई ग्रह जैसे अरुण-वरुण इत्यादि अभीतक वाष्पाकार ही बने हुए हैं। उनमें प्राणी टिक-ही कैसे सकते हैं। चन्द्र-लोकमें न वायु और न जल है। निस्सन्देह मङ्गल हमारी पृथ्वी-की रचनासे मिलता-जुलता है। ईश्वर जाने वहा प्राणी भी रहते होंगे। इसी मङ्गलग्रहतक यात्रा करने और वहाके निवा-सियोंसे बातचीत करनेकी कई विचित्र कल्पनाए लोग कर चुके हैं, परन्तु हमें अभीतक उनपर विश्वास नहीं हो सकता।

धूमकेतु अर्थात् पुच्छलतारे

सूर्य, चन्द्र अथवा तारागणकी अद्भुतता और सौन्दर्य्यसे हमारी अपेक्षा हमारे पूवजोंके हृदयोंमें अधिकतर भक्तिभाव और साथ साथ प्रचुरतर भय रहता था। इसीलिये उनकी आराधना की जाने लगी और फलित ज्योतिषकी परिपाटी इसी कारण संसार-के सभी भागोंमें थोड़े बहुत अशमें शनैः शनैः फैल गयी। अस्तु, फिर भी हम इन ग्रहों और नक्षत्रोंको सदैव देखते हैं, इसलिये उनसे सुपरिचित हो गये हैं और फलित ज्योतिषद्वारा तो चाहे उनके प्रभावसे हमलोगोंमेंसे वे जो उनमें विश्वास रखते हैं, भले ही भयभीत हों, परन्तु साधारणतः हम सबको उनसे भय नहीं लगता। परन्तु धूमकेतु तारे आकाशमें सदैव नहीं दिखते और उनकी रचना और विस्तार भी असामान्य और विचित्र होते

जब कोई धूमकेतु पहलेपहल दृष्टिगत होता है तो बहुधा उसके पुच्छ नहीं होती। परन्तु जैसे-जैसे वह सूर्यके निकट-तर पहुचता है, उसके पुच्छ लटकने लगती है। यह सच्ची बात हैं, दृष्टिदोष नहीं है। यह पुच्छ सूर्यसे विमुख दिशामें लगती है। वैसे तो ऐसे सभी तारे सर्वाङ्गसमेत सूर्यकी ओर आकर्षित होते हैं, परन्तु उनके पुच्छ उससे हटे हुए रहते हैं-पुच्छ आकर्षित नहीं होते। इस व्यवस्थाका कारण ज्ञात नहीं हुआ है। जब किसीकी दुम एक बार हट जाती है तो फिर उस केतुमें इतना आकर्षण नहीं होता कि वह उसको पुन जोड ले। कदाचित् यही कारण है कि बहुतसे धूमकेतुओंके दुम नहीं होती। सन् १८५८ का धूमकेतु जब जून मासकी दो तारीखको प्रथम बार दिखाई दिया तब वह एक सूक्ष्म चमकीला धब्बासा प्रतीत हुआ था। तीन मासतक वह ऐसा ही रहा, बल्कि अगस्त मासके अन्ततक खाली आँखसे बडी कठिनतासे दीख पडता था। परन्तु सितम्बरमें वह यकायक बढ गया और अक्टूबरके मध्यमें उसका दुम ४० डिगरीतक विस्तृत हो गई। तदनन्तर वह लुप्त हो गया। इन तारोंका प्रकाश यद्यपि अल्प होता है, परन्तु वह होता इनका व्यक्तिगत प्रकाश है। वे सूर्यके प्रकाशसे नहीं चमकते। रश्मिद्रुम पृथक्करण (Spectrum analysis) से पाया गया है कि उनमें कारबन,हाइड्रोजन,नाइट्रोजन,सोडा और सम्भवत लोहा भी है।

इन केतुओंके विषयकी कई बातें अब भी गुप्त ही हैं—स्पष्ट ज्ञात नहीं हुई हैं। इसलिये ये लगभग अज्ञेय वैचित्र्य हैं। बाल

महोदय कहते हैं कि "धूमकेतु किसी भावी आपत्तिके सङ्केत नहीं हैं। हमें उन्हें आकाशके विनोदपूर्ण और सुन्दर पाहुने या आगन्तुक समझना चाहिये। वे हमें केवल मनोरञ्जन और शिक्षा देनेके लिये आते हैं, न कि हमें डराने और नष्ट करनेके लिये।" यदि यथार्थमें यही व्यवस्था है तब तो हमें चाहिये कि उन विचित्र और सुन्दर तारोंकी शान्तिसे प्रशंसा करें।

टूटनेवाले तारे

यदि हम किसी रातको सावधानीसे आकाशका घड़ी दो घड़ी अवलोकन करें तो हमें कई तारे अपने स्थानोंसे यकायक टूटकर, कुछ दूर गोता लगाकर लुप्त होते दिखाई देंगे। यह व्यवस्था होती है, इसमें सन्देह नहीं, परन्तु इसमें कुछ दृष्टिदोष अवश्य है। जो विशाल और यथार्थ तारे हैं वे तो अत्यन्त दूरपर और महाकाय हैं, परन्तु टूटनेवाले तारे बहुत अल्प होते हैं, कई तो उनमें पाषाण खण्डोंके बराबर ही होते हैं। जबतक वे हमारे निकटके वायुमण्डलमें नहीं आते, तबतक तो वे हमारे नेत्रोंद्वारा दीखते भी नहीं हैं। जब वे इतने नीचे आ जाते हैं तो वायुमण्डलसे रगड़े जाकर चमक जाते और फिर नष्ट हो जाते हैं (क्योंकि संघर्षसे विद्युतकी चमक उत्पन्न हो जाती है)। किसी रातमें ऐसे तारे कम छूटते और किसी रातमें अधिक छूटते हैं। यद्यपि प्रत्येक रात्रिको तारे टूटते हैं और सर्वसाधारण इस क्रियासे सुपरिचित हैं, परन्तु तोभी है यह एक असाधारण व्यवस्था; इसीलिये इनके टूट-

जब कोई धूमकेतु पहलेपहल दृष्टिगत होता है तो बहुधा उसके पुच्छ नहीं होती। परन्तु जैसे-जैसे वह सूर्यके निकट-तर पहुचता है, उसके पुच्छ लटकने लगती है। यह सच्ची बात हैं, दृष्टिदोष नहीं हे। यह पुच्छ सूर्यसे विमुख दिशामें लगती है। वैसे तो ऐसे सभी तारे सर्वाङ्गसमेत सूर्यकी ओर आकर्षित होते हैं, परन्तु उनके पुच्छ उससे हटे हुए रहते हैं–पुच्छ आकर्षित नहीं होते। इस व्यवस्थाका कारण ज्ञात नहीं हुआ है। जब किसीकी दुम एक बार हट जाती है तो फिर उस केतुमें इतना आकर्षण नहीं होता कि वह उसको पुन जोड ले। कदाचित् यही कारण है कि बहुतसे धूमकेतुओंके दुम नहीं होती। सन् १८५८ का धूमकेतु जब जून मासकी दो तारीखको प्रथम बार दिखाई दिया तब वह एक सूक्ष्म चमकीला धब्बासा प्रतीत हुआ था। तीन मासतक वह ऐसा ही रहा, बल्कि अगस्त मासके अन्ततक खाली आँखसे बडी कठिनतासे दीख पडता था। परन्तु सित-म्बरमें वह यकायक बढ गया और अक्टूबरके मध्यमें उसकी दुम ४० डिगरीतक विस्तृत हो गई। तदनन्तर वह लुप्त हो गया। इन तारोंका प्रकाश यद्यपि अल्प होता है, परन्तु वह होता इनका व्यक्तिगत प्रकाश है। वे सूर्यके प्रकाशसे नहीं चमकते। स्पेक्ट्रम पृथक्करण (Spectrum analysis) से पाया गया है कि उनमें कारबन,हाइड्रोजन,नाइट्रोजन,सोडा और सम्भवत लोहा भी ह।

इन केतुओंके विषयकी कई बातें अब भी गुप्त हो हैं—स्पष्ट ज्ञात नहीं हुई हैं। इसलिये ये लगभग अज्ञेय वैचित्र्य हैं। बाल

महोदय कहते हैं कि "धूमकेतु किसी भावी आपत्तिके सङ्केत नहीं हैं। हमें उन्हें आकाशके विनोदपूर्ण और सुन्दर पाहुने या आगन्तुक समझना चाहिये। वे हमें केवल मनोरञ्जन और शिक्षा देनेके लिये आते हैं, न कि हमें डराने और नष्ट करनेके लिये।" यदि यथार्थमें यही व्यवस्था है तब तो हमें चाहिये कि उन विचित्र और सुन्दर तारोंकी शान्तिसे प्रशंसा करें।

टूटनेवाले तारे

यदि हम किसी रातको सावधानीसे आकाशका घड़ी दो घड़ी अवलोकन करें तो हमें कई तारे अपने स्थानोंसे यकायक टूटकर, कुछ दूर गोता लगाकर लुप्त होते दिखाई देंगे। यह व्यवस्था होती है, इसमें सन्देह नहीं, परन्तु इसमें कुछ दृष्टिदोष अवश्य है। जो विशाल और यथार्थ तारे हैं वे तो अत्यन्त दूरवर और महाकाय हैं, परन्तु टूटनेवाले तारे बहुत अल्प होते हैं, कई तो उनमें पाषाण खण्डोंके बराबर ही होते हैं। जबतक वे हमारे निकटके वायुमण्डलमें नहीं आते, तबतक तो वे हमारे आँखोंद्वारा दीखते भी नहीं हैं। जब वे इतने नीचे आ जाते हैं तो वायुमण्डलसे रगड़े जाकर चमक जाते और फिर नष्ट हो जाते हैं (क्योंकि संघर्षसे विद्युतकी चमक उत्पन्न हो जाती है)। किसी रातमें ऐसे तारे कम छूटते और किसी रातमें अधिक छूटते हैं। यद्यपि प्रत्येक रात्रिको तारे टूटते और सर्वसाधारण इस क्रियासे सुपरिचित हैं, परन्तु तो भी है यह एक असाधारण व्यवस्था, ... इनके टूट-

नेसे लोगोंमें भय उत्पन्न होता है । सर्वसाधारणमें यह एक मिथ्या विश्वास फैला हुआ है—भगवान् जाने यह सच्चा हो—कि जब और जहा तारे बहुत टूटते हैं तब और तहा कोई महान् पुरुष मरता है । ६ से ११ अगस्ततक पृथ्वी तारोंके एक गुच्छेमें होकर घूमती है, जिसको योरपमें परसीड (Perseids) कहते हैं । इन दिनोंमे तभी तो यह गुच्छा हमें दिखलाई पडता है । १३ और १४ अक्टूबरको एक और भी विस्तृत समूह दीख पडता है जिसको पाश्चात्य खगोलशास्त्रमें लिओनिड्स (Leonids) कहते हैं । यह समूह ३३ वर्षों में सूर्य्यकी परिक्रमा करता है । इस समूहमें असंख्य तारे हैं । इसका व्यास १००००० मीलसे कम नहीं माना जा सकता और इसकी लम्बाई भी लाखों मील प्रतीत होती है । बहुत करके हमारे हिन्दू-ज्योतिषका यह तारक-मण्डल पूर्वा या उत्तरा फाल्गुनी है । इस मण्डलके कतिपय तारे उसके वृत्तपर इधर-उधर बिखरे हुए रहते हैं । इनमेंसे कइयोंसे पृथ्वीकी प्रतिवर्ष भेट होती है , परन्तु इस समस्त मण्डलमें होकर पृथ्वी एक शताब्दीमें तीन बार निकलती है, और जब २ पृथ्वी इसमें होकर निकलती है, तब-तब ही इसमेंके ला[illegible]
टूट टूटकर पृथ्वीपर गिर जाते हैं । इस मण्डलका
ली व्हेरियरने दिया है, वह मानने योग्य है । यद्यपि
नहीं हो चुका है, परन्तु वह है बडा विनोदपूर्ण।
शय समझते हैं कि यह तारामण्डल सन् १२६
में भ्रमण करता हुआ सूर्य्यमण्डलतक पहुचा

सन्में वह अकस्मात् अरुणग्रहके सन्निकट पहुंच गया। यदि अरुणग्रहका उसपर प्रभाव नहीं पड़ता तो वह सूर्य्यके चारोंओर जा पहुंचता और फिर सदैवके लिये बाहर आ जाता। परन्तु अरुणके आकर्षणके कारण उसका पथ परिवर्त्तित हो गया। और वह सदैव सूर्य्यका परिक्रमण करता रहेगा। धूमकेतुओं और टूटते तारोंमें भी कदाचित् कोई समानता हो, परन्तु यह अभीतक पूर्णत समझी नहीं गई है। यह अनुमान इस कारण होता है कि धूमकेतुओंके मार्गोंमें तारोंके टूटनेकी बहुधा झड़ी लग जाती है। इससे यह परिणाम अनुमानत समझा जाता है कि कदाचित् धूमकेतु टूटनेवाले तारोंहीके बने हुए हों।

कहा जाता है कि प्रत्येक वर्ष लगभग १५००००००० तारे पृथ्वीपर टूट टूटकर गिरते हैं। इनमें उनकी भी गणना सम्मिलित है जो साधारण दूरबीनसे दिखाई देते हैं। जो बहुत बढ़िया दूरबीनोंसे देखे जाते हैं वे इस गणनासे पृथक् हैं। इस अध्यायके आरम्भमें ग्रहों (सूर्य्य, चन्द्र, बुध इत्यादि) की ऐसी ऐसी लम्बाई-चौड़ाई आदि बताई गई हैं जो साधारणत हमारे मस्तिष्कोंको चक्कर खिला देती हैं और कल्पनातीतसी प्रतीत होती हैं—यद्यपि यथार्थ तो वे हैं ही। परन्तु कितने ही अगणित और तारे हैं जिनकी दूरी, विस्तार और लम्बाई सूर्य्य-मण्डलके ग्रहोंसे भी बहुत अधिक है।

प्रथम तो वे इतने बहुतसंख्यक हैं कि उनकी गणना ही ठीक-ठीक नहीं हो सकती। जब हम रात्रिमें आकाशकी ओर

नेसे लोगोंमें भय उत्पन्न होता है। सर्वसाधारणमें यह एक मिथ्या विश्वास फैला हुआ है—भगवान् जाने यह सच्चा हो— कि जब और जहां तारे बहुत टूटते हैं तब और तहा कोई महान् पुरुष मरता है। ६ से ११ अगस्ततक पृथ्वी तारोंके एक गुच्छेमें होकर घूमती है, जिसको योरपमें परसीड (Perseids) कहते हैं। उन दिनोंमे तभो तो यह गुच्छा हमें दिखलाई पड़ता है। १३ और १४ अक्टूबरको एक और भी विस्तृत समूह दीख पड़ता है जिसको पाश्चात्य खगोलशास्त्रमें लिओनिड्स (Leonids) कहते हैं। यह समूह ३३ वर्षो में सूर्य्यकी परिक्रमा करता है। इस समूहमें असख्य तारे हैं। इसका व्यास १००००० मीलसे कम नहीं माना जा सकता और इसकी लम्बाई भी लाखों मील प्रतीत होती है। बहुत करके हमारे हिन्दू-ज्योतिषका यह तारक-मण्डल पूर्वा या उत्तरा फाल्गुनी है। इस मण्डलके कतिपय तारे उसके वृत्तपर इधर-उधर बिखरे हुए रहते हैं। इनमेंसे कइयोंसे पृथ्वीकी प्रतिवर्ष भेट होती है, परन्तु इस समस्त मण्डलमें होकर पृथ्वी एक शताब्दीमें तीन बार निकलती है, और जब २ पृथ्वी इसमें होकर निकलती है, तब-तब ही इसमेंके लाखों तारे टूट टूटकर पृथ्वीपर गिर जाते हैं। इस मण्डलका जो इतिहास ली व्हेरियरने दिया है, वह मानने योग्य है। यद्यपि यह प्रमाणित नहीं हो चुका है, परन्तु वह है बड़ा विनोदपूर्ण। उपर्युक्त महाशय समझते हैं कि यह तारामण्डल सन् १२६ तक तो आकाश में भ्रमण करता हुआ सूर्य्यमण्डलतक पहुचा ही नहीं था। उस

भी भोचक बना देती हैं। सीरियस (Sirius) तारा सूर्य्यसे २० गुना भारी, ५० गुना प्रज्वलित और १०००००० गुना पृथ्वीसे दूर है। और यद्यपि यह हमें स्थिर दीख पड़ता है, परन्तु वास्तवमें यह आकाशमें प्रति मिनट १००० मील घूम रहा है। सप्तर्षि समूहके तीन तारे मरीची, वशिष्ठ और अङ्गिरा सूर्य्यसे ४००, ४८० और १००० गुने अधिकतर चमकदार हैं, स्वाती नक्षत्र सूर्य्यसे ८०० गुना अधिकतर प्रज्वलित है। सहसा ऐसी बातोंमें हमारा विश्वास ही नहीं जमता, ऐसी दशामें सूर्य्य को हम सबसे बड़ा ग्रह कैसे मान सकते हैं ? छोटे-छोटे तारे जो आकाशमें केवल टिमटिमाते दीखते हैं—आकाशगङ्गाके नन्हे नन्हे दिखनेवाले तारे—औसत गणनासे सूर्य्यके प्रकाशसे कम प्रकाश नहीं रखते हैं। जैसा कि अद्यावधि जाना गया है, स्वाती नक्षत्रके समान शीघ्रगामी, प्रकाशपूर्ण और विशाल क्षत्र और कोई है ही नहीं, इसकी गति प्रति सेकण्ड ३०० मीलकी है। यह सूर्य्यसे ८०० गुना अधिकतर प्रज्वलित है और उससे ८० गुना बड़ा है। पृथ्वीसे इसकी दूरी तो इतनी कल्पनातीत है कि इसके प्रकाशको हमतक पहुंचनेमें २०० वर्ष लगते हैं।

आकाशके तारोंकी दूरी साधारण लोगोंको गपोड़े सी प्रतीत होती होगी। उनके विचारसे जब मनुष्य आकाशमें तारोंके पास जा ही नहीं सकता तब वह उनकी दूरीकी जांच कैसे कर सकता है। परन्तु वास्तवमें अनेकानेक यन्त्रों और ज्यामिति त्रिकोण विद्याओंद्वारा उनकी जांच हो चुकी और अब भी हो रही हैं।

देखते हैं तब हमे असंख्य तारे दिखाई देते हैं। यदि बालूके कण गिने जायं तो शायद गिने भी जा सकते हैं, परन्तु अनुसन्धानद्वारा निश्चित हुआ है कि खाली आखसे (अर्थात् विना दूरबीन लगाये) केवल ३००० तारे दीख पडते हैं और दूरबीनद्वारा लगभग १००-०००००० देखे जा सकते हैं। परन्तु फोटोग्राफी (चित्रकला)ने हमें ऐसे-ऐसे तारे दिखा दिये हैं, जिनको दूरबीनने भी हमें कभी नहीं दिखाया था। यदि हम आकाशकी ओर बहुत देरतक देखें तोभी हमें जितने आरम्भहीमें दीख पडते हैं उससे अधिकतर फिर नहीं दीखते। वास्तवमें हमारी प्रथम दृष्टिही अत्यन्त तेज होती है। पहिली बार जितने दिखाई पड जाते हैं, उतने पीछे नहीं दीखते। परन्तु चित्रकलामें इससे विपरीत व्यवस्था होती है, अर्थात् चित्रमण्डित करनेवाले काचके टुकडेपर जो कुछ भी अल्प या बहुत प्रकाश पडता है वह नष्ट नहीं हो सकता। वह सर्वांश-में उस काचपर मण्डित हो जाता है। एक सेकण्डमें जितना प्रभाव पडता है, उससे ३६०० गुना प्रकाश-प्रभाव एक घण्टेमें उसपर पड जाता है। इसलिये चित्रमण्डित काचके प्लेटको कई घण्टोंतक चित्रयन्त्र द्वारा आकाशकी ओर खुला रखनेसे या कई रातों ऐसा करनेसे प्रकाशका प्रभाव मानों उसपर एकत्र हो जाता है और इस प्रकार ऐसे तारोंके चित्र भी जो दूरबीनसे भी नहीं दृष्टिगत होते, उस काचके प्लेटपर मण्डित हो जाते हैं।

इन तारोंकी बहुसख्यता तो आश्चर्योत्पादक है ही, परन्तु इनकी दूरी या लम्बाई इत्यादि तो हमें और

इस क्रियाका भी यहांपर वर्णन करना मैं पाठकोंको अधिकतर झमेलेमें डालना समझता हूं। बस इतना ही समझ लेना चाहिये कि कई नक्षत्र तो हमारी पृथ्वीकी ओर बढ़ रहे हैं और कई इससे दूर हट रहे हैं। ऐसा प्रमाणित हो चुका है कि सीरियस नक्षत्र प्रति सैकन्ड हमसे २० मील दूर जा रहा है। मघा नक्षत्र भी उन्होंमेंसे है, जो पृथ्वीसे दूर हट रहे हैं; परन्तु इनसे विपरीत कई नक्षत्र जैसे अभिजित, स्वाती और पुनर्वसु इत्यादि हमारे निकटतर आ रहे हैं।

कई तारे स्थिर प्रतीत होते हैं और इसीलिये वे अचल नक्षत्र कहलाते भी हैं,परन्तु वास्तवमें वे भी स्थिर नहीं हैं। उनकी गति बडी तेज है। उदाहरणार्थ,यही स्वाती नक्षत्र एक मिनटमें २२५०० मील चलता है। तोभी हमसे इन तारोंकी दूरी बहुत होनेके कारण सहस्र वर्षमें भी आकाशमें तारामण्डल ज्यों का त्यों दीखता है, उसमें कोई अन्तर प्रतीत नहीं होता,यद्यपि यथार्थमें अन्तर बराबर हो रहा है,जिसको कई नक्षत्रोंके विषयमें ज्योतिषाचार्योंने जांचा और जाच रहे हैं। युगानुयुग पूर्व ऐसा भी समय था जब कई तारे नहीं थे और कदाचित् ऐसा समय भविष्यमें फिर आ जाय कि वे न रहें। वास्तवमें प्रत्येक तारेका व्यक्तिगत जीवन या इतिहास है। कई अब इतने उज्ज्वल हैं जितने वे पहिले नहीं थे और कई पूर्वकी अपेक्षा अब धीमे पड गये हैं।

आकाशमें हमें जो प्रज्वलित और धीमे प्रकाशके नक्षत्र दीखते हैं, उनके अतिरिक्त वहां असंख्य तारे और भी हैं जो या

जिनको स्थिर तारे कहते हैं उनकी दूरियां बड़ी असामान्य जांची गई हैं। सप्तर्षि-तारापुञ्जकी दूरी १५०० करोड़ मीलके लगभग जांची गई है।

तारागणकी रचनाके विषयमें भी उसी महत्वपूर्ण स्पेक्ट्रोस्कोप (Spectroscope) यन्त्रद्वारा अनुसन्धान हो गये हैं और यही प्रमाणित हुआ है कि जिन धातुओंसे पृथ्वीकी रचना हुई है उनसे भिन्न कई अन्य धातुओंसे तारागणकी रचना हुई है। किसी भी तारेकी बनावट, चाहे वह कितनीही दूर हो, जबतक उसका प्रकाश पर्याप्तमात्रामें हमतक पहुंच जाय, उपर्युक्त यन्त्रद्वारा जाची जा सकती है। यद्यपि इस अनुसन्धानमें कई बाधायें पड़ती हैं, जिनका उल्लेख करना ज्योतिष और भौतिकशास्त्रका कार्य्य है। रोहिणी नक्षत्रमें हाइड्रोजन, सोडा, मैगनेशिया, लोहा, खड़िया, टिलूरियम, अन्टीमनी, बिस्मथ और पारद धातुओंका विद्यमान होना निश्चित हुआ है। सब तारोंकी बनावट समान नहीं है। इनकी बनावट, तापक्रम और उनके निर्माणकालको लेकर हम उनको कुछ मुख्य भागोंमें विभक्त कर सकते हैं।

स्पेक्ट्रम-पृथक्करण (Spectrum Analysis) से तारोंकी गतिके विषयमें एक अन्य भी व्यवस्था ज्ञात हो जाती है। साधारणत देखनेसे हम यह नहीं जान सकते कि कोई तारा हमारी पृथ्वीकी ओर आ रहा है या इससे दूर जा रहा है, परन्तु स्पेक्ट्रम पृथक्करणसे उनके आने या जानेका भी पता चल गया है।

इस क्रियाका भी यहांपर वर्णन करना मैं पाठकोंको अधिकतर झमेलेमें डालना समझता हूं। बस इतना ही समझ लेना चाहिये कि कई नक्षत्र तो हमारी पृथ्वीकी ओर बढ़ रहे हैं और कई इससे दूर हट रहे हैं। ऐसा प्रमाणित हो चुका है कि सीरियस नक्षत्र प्रति सैकन्ड हमसे २० मील दूर जा रहा है। मघा नक्षत्र भी उन्हींमेंसे है, जो पृथ्वीसे दूर हट रहे हैं, परन्तु इनसे विपरीत कई नक्षत्र जैसे अभिजित, स्वाती और पुनर्वसु इत्यादि हमारे निकटतर आ रहे हैं।

कई तारे स्थिर प्रतीत होते हैं और इसीलिये वे अचल नक्षत्र कहलाते भी हैं, परन्तु वास्तवमें वे भी स्थिर नहीं हैं। उनकी गति बड़ी तेज है। उदाहरणार्थ, यही स्वाती नक्षत्र एक मिनटमें २२००० मील चलता है। तोभी हमसे इन तारोंकी दूरी बहुत होनेके कारण सहस्र वर्षमें भी आकाशमें तारामण्डल ज्यों का त्यों दीखता है, उसमें कोई अन्तर प्रतीत नहीं होता, यद्यपि यथार्थमें अन्तर बराबर हो रहा है, जिसको कई नक्षत्रोंके विषयमें ज्योतिषाचार्योंने जांचा और जांच रहे हैं। युगानुयुग पूर्व ऐसा भी समय था जब कई तारे नहीं थे और कदाचित् ऐसा समय भविष्यमें फिर आ जाय कि वे न रहें। वास्तवमें प्रत्येक तारेका व्यक्तिगत जीवन या इतिहास है। कई अब इतने उज्ज्वल हैं जितने वे पहिले नहीं थे और कई पूर्वकी अपेक्षा अब धीमे पड़ गये हैं।

आकाशमें हमें जो प्रज्वलित और धीमे प्रकाशके नक्षत्र दीखते हैं, उनके अतिरिक्त वहां असंख्य तारे और भी हैं जो या

जिनको स्थिर तारे कहते हैं उनकी दूरियां बड़ी असामान्य जांची गई हैं। सप्तर्षि-तारापुञ्जकी दूरी १५०० करोड़ मीलके लगभग जांची गई है।

तारागणकी रचनाके विषयमें भी उसी महात्त्वपूर्ण स्पैकट्रोस्कोप (Spectroscope) यन्त्रद्वारा अनुसन्धान हो गये हैं और यही प्रमाणित हुआ है कि जिन धातुओंसे पृथ्वीकी रचना हुई है उनसे भिन्न कई अन्य धातुओंसे तारागणकी रचना हुई है। किसी भी तारेकी बनावट, चाहे वह कितनीही दूर हो, जबतक उसका प्रकाश पर्याप्तमात्रामें हमतक पहुंच जाय, उपर्युक्त यन्त्रद्वारा जाची जा सकती है। यद्यपि इस अनुसन्धानमें कई बाधायें पड़ती हैं, जिनका उल्लेख करना ज्योतिष और भौतिकशास्त्रका कार्य्य है। रोहिणी नक्षत्रमें हाइड्रोजन, सोडा, मैगनेशिया, लोहा, खड़िया, टिलूरियम, अन्टीमनी, विस्मथ और पारद धातुओंका विद्यमान होना निश्चित हुआ है। सब तारोंकी बनावट समान नहीं है। इनकी बनावट, तापक्रम और उनके निर्माणकालको लेकर हम उनको कुछ मुख्य भागोंमें विभक्त कर सकते हैं।

स्पैकट्रम पृथक्करण (Spectrum Analysis) से तारोंकी गतिके विषयमें एक अन्य भी व्यवस्था ज्ञात हो जाती है। साधारणत देखनेसे हम यह नहीं जान सकते कि कोई तारा हमारी पृथ्वीकी ओर आ रहा है या इससे दूर जा रहा है, परन्तु स्पैकट्रम पृथक्करणसे उनके आने या जानेका भी पता चल गया है।

इस क्रियाका भी यहांपर वर्णन करना मैं पाठकोंको अधिकतर झमेलेमें डालना समझता हूं। बस इतना ही समझ लेना चाहिये कि कई नक्षत्र तो हमारी पृथ्वीकी ओर बढ़ रहे हैं और कई इससे दूर हट रहे हैं। ऐसा प्रमाणित हो चुका है कि सीरियस नक्षत्र प्रति सैकन्ड हमसे २० मील दूर जा रहा है। मघा नक्षत्र भी उन्हींमेंसे है, जो पृथ्वीसे दूर हट रहे हैं; परन्तु इनके विपरीत कई नक्षत्र जैसे अभिजित, स्वाती और पुनर्वसु इत्यादि हमारे निकटतर आ रहे हैं।

कई तारे स्थिर प्रतीत होते हैं और इसीलिये वे अचल नक्षत्र कहलाते भी हैं, परन्तु वास्तवमें वे भी स्थिर नहीं हैं। उनकी गति बड़ी तेज है। उदाहरणार्थ, यही स्वाती नक्षत्र एक मिनटमें ३२००० मील चलता है। तोभी हमसे इन तारोंकी दूरी बहुत होनेके कारण सहस्र वर्षमें भी आकाशमें तारामण्डल ज्यों का त्यों दीखता है, उसमें कोई अन्तर प्रतीत नहीं होता, यद्यपि यथार्थमें अन्तर बराबर हो रहा है, जिसको कई नक्षत्रोंके विषयमें ज्योतिषाचार्योंने जांचा और जांच रहे हैं। युगानुयुग पूर्व ऐसा भी समय था जब कई तारे नहीं थे और कदाचित् ऐसा समय भविष्यमें फिर आ जाय कि वे न रहें। वास्तवमें प्रत्येक तारेका व्यक्तिगत जीवन या इतिहास है। कई अब इतने उज्ज्वल हैं जितने वे पहिले नहीं थे और कई पूर्वकी अपेक्षा अब धीमे पड़ गये हैं।

आकाशमें हमें जो प्रज्वलित और धीमे प्रकाशके तारे दीखते हैं, उनके अतिरिक्त वहां असंख्य तारे और भी हैं

तो अत्यन्त दूरके या अल्पकान्तिके कारण हमें दिखाई नहीं पड़ते। इनके भी अलावा कई प्रकाशहीन धुंधले नक्षत्र हैं। आरम्भमें वे भी चमकते थे, परन्तु अब कान्तिच्युत हो गये हैं। प्रोसियन नामक तारकमण्डल कुछ धुंधले तारे हैं। मदूसा (Medusa) नक्षत्रपुञ्जमें आलगल नामक एक तारेकी बड़ी विचित्र व्यवस्था है। यह तारा दो दिन तेरह घण्टोंतक बिना परिवर्त्तनके एकसा चमकता रहता है। तदनन्तर साढ़े तीन घण्टोंके पश्चात् वह द्वितीय श्रेणीकी दमकसे चतुर्थ श्रेणीकी चमकपर गिर जाता है। साढ़े तीन घण्टोंके पश्चात् वह पुन अपनी पहली दमक प्राप्त कर लेता है। इन प्रकाश-परिवर्त्तनोंसे ज्योतिषियोंने यह परिणाम निकाला है कि ऐसे नक्षत्रोंके पास कोई अन्धेरा उपनक्षत्र होता है जो नियमित समयोंपर आलगल नक्षत्रके सामने आकर उसके प्रकाशके अशको रोक देता है। व्होगल नामक खगोलशास्त्रीने स्पेकट्रोस्कोप यन्त्र द्वारा प्रमाणित कर दिया है कि अवश्यमेव अलगल नक्षत्र किसी प्रकाशहीन एव अन्धेरे नक्षत्रका परिक्रमण करता है। अत स्पष्ट ही है कि गगनमण्डल केवल दीप्तिमन्त तारागणोंहीसे मण्डित नहीं है, अपितु उसमें ऐसे तारे भी जड़े हुए हैं जिनमें अब प्रकाश लुप्त हो चुका है। किसी पुराकालमें वे तारे भी जो आज ठण्डे और तिमिराच्छन्न हो रहे हैं, सूर्य्यकी नाई उज्ज्वल प्रतिमा धारण किये हुए होंगे। हम्बोल्ट महोदयका कथन है कि लगभग १०००००० वर्षोंके पश्चात् हमारा सूर्य्य भी उसी

दशाको प्राप्त हो जायगा। ऐसे अन्धेरे नक्षत्र दिख तो सकते ही नहीं, उनका अस्तित्व तो केवल कई प्रकारकी गणनाओंहीसे जाना जाता है। इस विषयका एक बड़ा उत्तम उदाहरण है। सीरियस नामक नक्षत्रकी विशिष्ट गतिसे कई ज्योतिषगणिताचार्योंने ऐसा निर्णय किया है कि इसके आसपास अवश्यमेव कोई विशाल और भारी नक्षत्र है और उसके स्थानका भी उन्होंने हिसाबसे पता चला लिया यद्यपि वह नक्षत्र उस समयतक नहीं देखा जा सकता था। परन्तु सन् १८६२ और उसके बादके कुछ वर्षों में ज्योतिषियोंने उसको नवीन और विशाल दूरबीनद्वारा देख ही डाला। इसमें सीरियसकी अपेक्षा १०' - दमक है, परन्तु इसका विस्तार उससे आधा है।

जैसे तारे विस्तार, गुरुत्व और प्रकाशमें भांति भांतिके होते हैं वैसे ही उनके रङ्ग भी नाना प्रकारके होते हैं। इनमें अधिकांश तो श्वेत, परन्तु कई लाल, गुलाबी और आरक्त रङ्गके होते हैं। कुछ हरे, नीले और कासनी रङ्ग भी रखते हैं। हरा या नीला रङ्ग थोड़ेहीमें पाये जानेका कारण शायद यह हो कि हमारा वायुमण्डल हरे और नीले रङ्गोंको विशेषत अपनेमें समा लेता है। यह भी एक विचित्र बात है कि हरा, नीला या कासनी रङ्ग बहुधा युग्म तारोंमेंसे एकका होता है। युग्म तारोंमें जो कुछ बड़ा होता है, वह तो आरक्त नारंजिया या पीला होता है और जो छोटा होता है वह हरा, नीला या कासनी होता है। दूरबीनसे ऐसे युग्म तारोंके रङ्ग बड़े मनोहर प्रतीत होते

हैं। हमारे ज्योतिषशास्त्रोंमें तो सभी नक्षत्रोंके रङ्ग निश्चित किये हैं, जैसे बुधका हरा, मङ्गलका पीला, मुन्धाका श्वेत और बृहस्पतिका लाल होता है।

युग्म नक्षत्र भी बहुसख्यक हैं। कई तो केवल दीखते ही युग्म हैं, परन्तु वास्तवमें युग्म नहीं होते। कई यथार्थमें ऐसे हैं। वे एक दूसरेका परिक्रमण किया करते हैं। कइयोंमें परिक्रमणमें हजारों वर्ष लग जाते हैं, क्योंकि उनमें पारस्परिक दूरी बहुत होती है। वे आपसमें लाखों मील दूरस्थ होते हैं यद्यपि हमें वे पास-पास ही दिखाई देते हैं। ध्रुव नक्षत्र स्वयं युग्म है। उत्तरभाद्रपद नक्षत्र तिलड़ा है—उसमें तीनका मेल है। परन्तु उसमें चौथा कोई अन्धेरा तारा है, नहीं तो तीनका जोड़ा कैसे होता। पुनर्वसुमें दो जोड़े हैं। पुष्य और बहुत करके मृगशिरस्‌में भी तीन-तीन जोड़े अर्थात् छ-छ तारे हैं। कई नक्षत्रोंके गुच्छेके गुच्छे होते हैं। हरक्यूलिसका गुच्छा लगभग हजारसे चार हजार तारकोंका बना हुआ है। शततारक नक्षत्रका यह नाम ही १०० तारोंके कारण पड़ा है। एक नक्षत्रमें हजारों तारक लाल, नीले, पीले, हरे रङ्गोंके हैं, मानों नाना रङ्गोंके रत्नोंसे यह जड़ा हुआ है। आकाश-गङ्गाहीको देखा जाय। उसमें कितने असंख्य तारे हैं। उसका विस्तार कितना लम्बा है! हमारी पृथ्वी और स्वयं सूर्य भी तो इसी आकाश गङ्गामें समाये हुए हैं। सूर्य तो मानों उसका एक अङ्ग है। इन तारासमूहोंकी दूरीका मापना तो दूर रहा, उसका अनुमान भी लगाना असम्भव है।

नेबूली

इन तारोंकी दूरी अद्यावधि मापी नहीं जा सकी है। इनकी दूरीके लिये हम कम-से कम जो दूर सीमा मान ले, वही ठीक है, परन्तु वह कम-से कम भी इतनी दूर है कि जिसको मीलों या कोसोंद्वारा प्रकट करना असम्भव है। इनके प्रकाशकी जो गति है, उसीसे ज्योतिषी लोग इनकी दूरीका अनुमान स्थिर करते हैं। इनका प्रकाश एक सेकण्डमें १८०००० मील चलता है और फिर भी उसको हमारी पृथ्वीतक पहुंचनेमें सैकडों वर्ष लगे हैं। मानों वे तारे जैसे सैकडों वर्ष पहिले थे वैसे हमें अब दिखाई दे रहे हैं। इस व्यवस्थाको देखते हुए उनकी दूरीका कुछ विचार करते हुए हमारा मस्तिष्क चकराने लग जाता है।

इसलिये यह तो सर्वथा असम्भव है कि ऐसे तारोंके झुण्डोंके भिन्न २ नक्षत्रोंके व्यक्तित्वको जान लिया जाय, परन्तु जैसी-जैसी नवीनतर और प्रबलतर दूरबीनें बनती जा रही हैं, वैसे-वैसे ही कई अदृष्ट तारक-पुञ्ज देखनेमें आते जा रहे हैं। जैसा कि ऊपर कहा जा चुका है, चित्रकला (Photography) ने भी इस गवेषणामें ज्योतिषियोंकी बहुत सहायता की और करती जा रही है। स्पैक्ट्रम पृथक्करणने भी प्रकट किया है कि उत्तर भाद्रपद जैसे तारक पुञ्ज जो महती दूरबीनोंसे भी केवल बादलसे धुंधले दिखाई देते हैं, वास्तवमें तारोंका एक विशाल समूह हैं। स्पैक्ट्रम पृथक्करणसे यह भी प्रमाणित हुआ है

कि कई तारक-पुञ्ज बहुत पतले गैसोंके ढेर हैं और कुछ ऐसी स्थितिमें हैं जिसका मनुष्यको कुछ भी अनुभव नहीं है। उनकी आकृतियां बड़ी बड़ी विचित्र हैं। गोल, स्थाली-सदृश, घेरे, श्रृङ्खलाएं, घुमाव, अ्रंश, ग्रन्थियां, किरणें, बौछारें, अण्डाकार, चोटियां, लटकन, लपेट, गोटे-किनारी, मालाएं, पखे, लहरें और बादल जैसे उनके अनेकानेक अद्भुत आकार होते हैं। ह्यूगिन्स महोदयने बताया है कि उनमेंसे कई चमकते हुए गैसके विशाल ढेर हैं। उनका गैस बहुधा हाइड्रोजन और किसी किसीका कदाचित् नाइट्रोजन भी है। उनमें सम्भवत और भी कई धातुएं हैं। उनके रङ्ग भी नाना प्रकारके और अत्यन्त सुन्दर हैं।

नभके नक्षत्रोंकी विशालता और दूरीके जाननेसे तो हमें अकथनीय आश्चर्य होता ही है, परन्तु उनके विषयमें जो समयकी व्यवस्था है, वह तो हमें और भी चक्करा देती है। भूगर्भ शास्त्रकी अपेक्षा खगोलशास्त्रमें समयकी विशालतर व्यवस्था है। खगोलमें हमें इतने पूर्वकालका विचार करना पड़ता है जितना हमें भूगर्भके विषयमें भी नहीं करना पड़ता, क्योंकि पृथ्वीके बहुत पहिले नभमण्डलके बहुतसे ग्रह बन चुके थे। कुछ देरतक हम युगानुयुग पहिलेके उस समयका ध्यान करें जब वह ठोस द्रव्य जिसके द्वारा हमारी पृथ्वीकी रचना हुई थी, केवल एक लगातार, अत्यन्त उष्ण और पतले गैसका भाग था जो सूर्य्यके केन्द्रसे आरम्भ होकर वरुण नक्षत्रके

वृत्ततक पहुंच गया था—जिसका व्यास अनुमानसे ६००००००
००० मील था। जैसे-जैसे शनै शनै वह सिकुड़ता गया,
वरुण नक्षत्र उसमेंसे बनकर पृथक् हो गया। सम्भवत वह
पहले एक घेरा सा बना होगा और फिर गोलाकार बन गया।
कई युगोंके पश्चात् अरुणकी सृष्टि इसी प्रकार हुई। अगणित
कालके उपरान्त शनिश्चर भी इसी रीतिसे निर्मित हुआ।
तदनन्तर युगानुयुगमें बृहस्पति, मङ्गल, पृथ्वी, शुक्र और बुध
बनते गये। जितने कालमें यह विलक्षण रचना हुई वह कल्पना
तीत है। उसका हम क्या अनुमान लगावें। हम कालके
विषयमें बढ़िया और विशाल तन्त्रोंद्वारा चाहें जितनी निर-
पक्षो करें, हमें उसका भेद मिल नहीं सकता। कालके विषयमें
हम न आदिका विचार कर सकते हैं और न अन्तका। उसी
प्रकार हम दूरीका न आदि और न अन्त समझ सकते हैं। चारों
ओर दूरी ही दूरी है। इसका क्या पारावार। विचारी अल्पसी
पृथ्वी सूर्यका परिक्रमण कर रही है और समस्त सूर्यमण्डल
और सूर्य हरक्यूलिज नामक नक्षत्र-मण्डलके एक स्थानकी ओर
अत्यन्त प्रबल गतिसे आ रहे हैं। जो हमें आकाशगङ्गा दिखाई
देती है, उसीके हरक्यूलिज इत्यादि अङ्ग हैं। इससे भी आगे
अत्यन्त विशाल और विस्तृत नक्षत्र हैं जो मानव कल्पनामें आही
नहीं सकते। काल और आकाशका न आदि है और न
अन्त। ये अनादि और अनन्त हैं। इनकी परिभाषा नहीं हो
सकती। ये परब्रह्म हैं।

होनेके कारण भारतके लिये बल्कि समस्त संसारके कल्याणके लिये निम्नलिखित प्रख्यात श्लोकद्वारा शुभ कामना प्रकट करके गगनमण्डलके विषयको और इस पुस्तकको भी समाप्त करता हूः—

> ब्रह्मा मुरारिस्त्रिपुरान्तकारी भानुर्शशिःभूमसुतो बुधश्च।
> गुरुश्च शुक्रः शनि राहु केतुः सर्वे ग्रहाः शातिकरा भवन्तु॥

